कौशल किशोर

विरूद्ध

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

(रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 113/2016)

03 जनवरी, 2023

[एस. अब्दुल नजीर, बी. आर. गवई, ए. एस. बोपन्ना, वी. रामसुब्रमण्यन एवं बी. वी. नागरत्ना, जे. जे.]

भारत का संविधान- अनुच्छेद 19(1)(क) एवं 19 (2)- क्या अनुच्छेद 19 (2) में निर्दिष्ट आधार जिनके संबंध में कानून द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, पूर्ण हैं, या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं-अभिनिर्धारित किया गयाः अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए अनुच्छेद 19 (2) में दिए गए आधार व्यापक हैं - अन्य मौलिक अधिकारों को लागू करने की आड़ में या एक दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्धी दावा करने वाले दो मौलिक अधिकारों की आड़ में, अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले अतिरिक्त प्रतिबंध किसी भी व्यक्ति पर अनुच्छेद 19 (1) (ए) द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर नहीं लगाए जा सकते हैं।

भारत का संविधान-अनुच्छेद 19 एवं 21- क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के

अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा सकता है -(वी. रामसुब्रमण्यन, जे. के अनुसार) (एस. अब्दुल नजीर, बी. आर. गवई एवं ए. एस. बोपन्ना, जे. जे. एवं स्वयं के लिए): अनुच्छेद 19/21 के तहत एक मौलिक अधिकार को राज्य या उसके तंत्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है - अभिनिर्धारित किया गयाः (प्रति बी. वी. नागरत्ना, जे.): सामान्य कानून के दायरे में अधिकार, जो अनुच्छेद 19/21 के तहत मौलिक अधिकारों के समान हो सकते हैं, समानांतर रूप से काम करते हैं - हालांकि, अनुच्छेद 19 एवं 21 के मौलिक अधिकार, संवैधानिक न्यायालयों के समक्ष समानांतर रूप से न्यायसंगत नहीं हो, सिवाय उन अधिकारों के जिन्हें सांविधिक रूप से मान्यता दी गई है एवं प्रवर्तनीय विधि के अनुसार-हालाँकि, वे सामान्य कानून उपचार की मांग के लिए आधार हो सकते हैं- किंतु संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका संवैधानिक न्यायालय के समक्ष अर्थात उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के माध्यम से या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 सहपठित अनुच्छेद 142 के साथ लाई जा सकती है।

भारत का संविधान-अनुच्छेद 21- क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो- अभिनिर्धारित किया गयाः (वी. रामसुब्रमण्यम, जे. के अनुसार) (एस. अब्दुल नजीर, बी. आर. गवई एवं ए. एस. बोपन्ना, जे. जे. एवं स्वयं के लिए): जब भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए खतरा उत्पन्न हो यहां तक कि गैर राज्य

तंत्र के माध्यम से भी तब भी राज्य का कर्तव्य है कि वह अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करे - अभिनिर्धारित (प्रति बी. वी. नागरत्ना, जे.): अनुच्छेद 21 के तहत राज्य पर डाला गया कर्तव्य एक नकारात्मक कर्तव्य है कि किसी व्यक्ति को कानून के अनुसार छोड़कर उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित न किया जाए -राज्य का एक सकारात्मक कर्तव्य है कि वह संविधिक एवं संवैधानिक कानून के अंतर्गत उस पर लगाए गए दायित्वों को पूरा करे, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत मौलिक अधिकार पर आधारित हैं-ऐसे दायित्वों के लिए राज्य द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है जहां एक निजी कर्ता के कार्य किसी अन्य व्यक्ति के प्राण या स्वतंत्रता को खतरा हो सकता है- एक नागरिक के अधिकारों की रक्षा के लिए संवैधानिक और वैधानिक कानून के तहत राज्य को सौंपे गए कर्तव्यों को पूरा करने में विफलता, एक नागरिक को उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव डाल सकती है- जब कोई नागरिक अपने जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित होता है, तो राज्य ने अनुच्छेद 21 के तहत उस पर डाले गए नकारात्मक कर्तव्य का उल्लंघन होगा।

प्रतिपादित मत/सिद्धांत-सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत-क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया कोई बयान, जो राज्य के किसी भी मामले से संबंधित हो या राज्य की सुरक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है - (वी. रामसुब्रमण्यन, जे. के अनुसार) (एस. अब्दुल नजीर, बी. आर. गवई एवं ए. एस.

बोपन्ना, जे. जे. एवं स्वयं के लिए):एक मंत्री द्वारा दिए गए बयान से, भले ही राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा के लिए, सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत का आह्वान करके सरकार का प्रतिनिधि दायित्व नहीं ठहराया जा सकता है-अभिनिर्धारितः (प्रति बी. वी. नागरत्ना, जे.):एक मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य यदि राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा के लिए, हो तो जहां तक इस तरह का बयान सरकार के दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है तो वह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को लागू करके सरकार को परोक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है - यदि ऐसा कथन सरकार के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है, तो मंत्री उसके लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार है ।

अपकृत्य-संवैधानिक अपकृत्य-क्या किसी मंत्री का एक बयान, जो संविधान के भाग तीन के तहत एक नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है और क्या यह 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्रवाई योग्य है - अभिनिर्धारितः (वी. रामसुब्रमण्यन, जे. के अनुसार) (एस. अब्दुल नजीर, बी. आर. गवई एवं ए. एस. बोपन्ना, जे. जे. एवं स्वयं के लिए): किसी मंत्री द्वारा दिया गया मात्र एक बयान, जो संविधान के भाग III के तहत नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है और संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य नहीं हो सकता है - लेकिन अगर ऐसे बयान के परिणामस्वरूप, अधिकारियों द्वारा कोई लोप या कार्य किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है, तो यह संवैधानिक

अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य हो सकता है।-अभिनिर्धारितः (प्रति बी. वी. नागरत्ना, जे.):उन कृत्यों या चूक को परिभाषित करने के लिए एक उचित कानूनी ढांचा आवश्यक है जो संवैधानिक अपकृत्यों, और न्यायिक पूर्व निर्णय के आधार पर उसी तरीके से निराकृत या निवारण किया जाएगा।

संदर्भ का जवाब देते हुए, न्यायालय

वी. मसुब्रमण्यन, जे. (एस. अब्दुल नजीर, बी. आर. गवई एवं ए. एस. बोपन्ना, जे. जे. एवं स्वयं के लिए) (बहुमत की राय)

अभिनिर्धारित: 1. अनुच्छेद 19 के खंड (2) के अंतर्गत प्रतिबंध व्यक्ति, समूहों/लोगों के वर्गों, समाज, न्यायालय, देश एवं राज्य पर सभी संभावित हमलों को आच्छादित करने के लिए पर्याप्त हैं। यही कारण है कि इस न्यायालय ने बार-बार कहा कि कोई भी प्रतिबंध जो अनुच्छेद 19 (2) के भीतर नहीं आता है, वह असंवैधानिक होगा। [पैरा 28] [635-ई-एफ]

2. इस न्यायालय ने बिजोए इमैनुएल बनाम केरल राज्य मामले में इस बात पर जोर दिया कि कार्यपालिका कार्यपालिक या विभागीय निर्देश के रूप में अतिरिक्त प्रतिबंध लगाकर अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकती है। न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि लगाए जाने वाले उचित प्रतिबंध वैधानिक बल वाले "विधि" के माध्यम से होने चाहिए न कि केवल कार्यकारी या विभागीय निर्देश के माध्यम से । कार्यपालिका पर पिछले दरवाजे से घुसपैठ न करने का प्रतिबंध न्यायालयों पर भी समान रूप से लागू होता है। जबकि न्यायालयों को कानून की व्याख्या इस तरह से करने का अधिकार हो

सकता है कि ब्लू प्रिंट में मौजूद अधिकारों के व्यापक अर्थ हों, न्यायालय व्याख्या के साधनों का उपयोग करके अतिरिक्त प्रतिबंध नहीं लगा सकता है। [पैरा 29] [635-एच; 636-ए-बी]

3. चूंकि अनुच्छेद 19 के खंड (2) में निहित प्रतिबंधों का उददेश्य आठ शीर्षों की रक्षा हैः((i) व्यक्ति का -अपनी गरिमा, प्रतिष्ठा, शारीरिक स्वायत्तता एवं संपत्ति के उल्लंघन के विरूद्ध ; (ii) समाज के विभिन्न वर्ग जो विभिन्न धार्मिक मान्यताओं/भावनाओं को स्वीकार करते हैं एवं उनका पालन करते हैं-मान्यताओं एवं भावनाओं को आहत करने के विरूद्ध ; (iii) विभिन्न जातियों, भाषाई पहचान आदि से संबंधित नागरिकों के वर्ग/समूह- उनकी पहचान पर हमले के विरूद्ध ; (iv) महिलायें एवं बच्चों- विशेष अधिकारों के उल्लंघन के विरूद्ध ; (v) राज्य-अपनी सुरक्षा के उल्लंघन के विरूद्ध ; (vi) देश-अपनी संप्रभुता एवं अखंडता पर हमले के विरूद्ध ; (vii) न्यायालय-अपने अधिकार को कम करने के प्रयास के विरूद्ध , एवं इसलिए अनुच्छेद 19 के खंड (2) में निहित प्रतिबंध संपूर्ण हैं एवं आगे किसी प्रतिबंध को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। [पैरा 32] [639-डी-जी]

4. किसी भी स्थिति में , अनुच्छेद 19 के खंड (2) के संदर्भ एवं कोई प्रतिबंध लगाने वाली विधि केवल राज्य द्वारा बनाई जा सकती है, न कि न्यायालय द्वारा। न्यायालय के लिए संवैधानिक योजना में परिकल्पित भूमिका, मौलिक अधिकारों के मंदिर में प्रतिबंधों के प्रवेश की सख्ती से जांच करने के लिए एक द्वारपाल (और शुद्ध अंतःकरण के रक्षक) होना है। न्यायालय की भूमिका वैध प्रतिबंधों द्वारा सीमित मौलिक

अधिकारों की रक्षा करना है न कि प्रतिबंधों की रक्षा करना एवं अधिकारों को अवशिष्ट विशेषाधिकार बनाना। अनुच्छेद 19 का खंड (2) (i) किसी भी प्रवर्तनीय विधि के संचालन; एवं (ii) राज्य द्वारा किसी भी विधि के निर्माण को बचाता है। इसलिए, यह न्यायालय के लिए नहीं है कि वह पहले से पाए गए प्रतिबंधों में एक या अधिक प्रतिबंध जोड़े।[पैरा 33] [639-एच; 640-ए-बी]

5. सभी नागरिकों द्वारा सभी मौलिक अधिकारों का प्रयोग तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान करे। यह न्यायालय हमेशा एक संतुलन बनाता है जब भी यह पाया जाता है कि किसी व्यक्ति द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रयोग, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मौलिक अधिकारों के प्रयोग के लिए उपलब्ध स्थान में दखलांदाजी का कारण बनता है। प्रस्तावना में भी "बंधुता" पर जोर देना इस बात का संकेत है कि सभी मौलिक अधिकारों की उत्तरजीविता एवं लोकतंत्र का उत्तरजीविता ही आपसी सम्मान, समायोजन एवं नागरिकों की ओर से शांति एवं शांति के साथ सह-अस्तित्व की इच्छा पर निर्भर करता है। मौलिक कर्तव्य अनुच्छेद 51-ए (ई) के अंतर्गत देश के प्रत्येक नागरिक पर अधिरोपित कर्तव्य "भारत के सभी लोगों में समरसता और सामान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है" दर्शाता है कि कोई भी व्यक्ति अपने मौलिक अधिकार का उपयोग इस प्रकार नहीं कर सकता जो दूसरे के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। [पैरा 40] [640-बी-ई]

6. वाक् की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए अनुच्छेद 19 (2) में दिए गए आधार व्यापक हैं। अन्य मौलिक अधिकारों को लागू करने की आड़ में या एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी दावा करने वाले दो मौलिक अधिकारों की आड़ में, अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले अतिरिक्त प्रतिबंध किसी भी व्यक्ति पर अनुच्छेद 19 (1) (ए) द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर नहीं लगाए जा सकते हैं।[पैरा 45] [652-बी-डी]

7. जहाँ भी संवैधानिक अधिकार केवल सरकार एवं सरकारी कर्ताओं के निजी व्यक्तियों के साथ उनके व्यवहार में आचरण को विनियमित एवं प्रभावित करते हैं, उन्हें एक ऊर्ध्वाधर प्रभाव" कहा जाता है। लेकिन जहां भी संवैधानिक अधिकार निजी व्यक्तियों के बीच संबंधों को प्रभावित करते हैं, उन्हें "एक क्षैतिज प्रभाव" कहा जाता है।[पैरा 47] [652-ई-एफ]

8. अनुच्छेद 12 में "राज्य" शब्द को परिभाषित करने के बाद एवं अनुच्छेद 13 के अंतर्गत मौलिक अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियाँ को अमान्य घोषित करने के बाद, संविधान का भाग-3 अधिकारों के संबंध में आगे बढ़ता है। भाग-III में कुछ अनुच्छेद हैं जहां आदेश सीधे राज्य के लिए है एवं अन्य अनुच्छेद हैं जहां राज्य को बाधित किए बिना, कुछ अधिकारों को या तो देश के नागरिकों में या व्यक्तियों में अंतर्निहित माना जाता है। वास्तव में, द्विभाजन के दो समूह हैं जो भाग III में निहित अनुच्छेदों में स्पष्ट हैं।द्विभाजन का एक समूह (i) राज्य के विरूद्ध क्या निर्देशित किया गया है; एवं (ii) राज्य के संदर्भ के बिना प्रत्येक व्यक्ति में अंर्तनिहित रूप में क्या लिखा गया है, के बीच है। दूसरा द्विभाजन (i) नागरिकों एवं (ii) व्यक्तियों,

के बीच है। भाग-III के अनुच्छेद राज्य को निर्देश के रूप में हैं, जबकि अन्य नहीं हैं। यह एक संकेत है कि भाग-III द्वारा प्रदत्त कुछ अधिकारों को गैर-राज्य अभिकर्ताओं द्वारा सम्मानित किया जाना है एवं उनके विरूद्ध भी लागू किया जाना है। [पैरा 73,74] [664-सी-डी; 667-ए]

9. इस न्यायालय की मूल सोच कि इन अधिकारों को केवल राज्य के विरूद्ध ही लागू किया जा सकता है, समय के साथ बदल गई। "राज्य" से "प्राधिकरणों" में "राज्य के उपकरणों" से "सरकार की एजेंसी" में "सरकारी चरित्र के साथ प्रजनन" से "राज्य द्वारा प्रदत्त एकाधिकार स्थिति का उपभोग" से "गहरे एवं व्यापक नियंत्रण" से "किए गए कर्तव्यों/कार्यों की प्रकृति" में परिवर्तन हुआ। इसलिए "अनुच्छेद 19/21 के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार को राज्य या उसके साधनों के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है।"[पैरा 78] [678- एफ-जी; 679-ए]

10. अनुच्छेद 21 में "राज्य" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यह अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को गारंटी देता है कि उसे कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके प्राण एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। भाग-III की योजना के अनुसार यह स्पष्ट है कि राज्य के दो दायित्व हैं, (i) विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं करना; एवं (ii) यह सुनिश्चित करना कि किसी व्यक्ति का प्राण एवं स्वतंत्रता अन्यथा भी वंचित न हो। अनुच्छेद 21 में यह नहीं कहा गया है कि "राज्य किसी व्यक्ति को उसके जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित

नहीं करेगा", लेकिन यह कहा गया है कि "किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा"।[पैरा 81] [679-डी, ई]

11. ए. के. गोपालन में इस न्यायालय की सोच, कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित होने के लिए शारीरिक संयम की आवश्यकता होती है, में खरक सिंह एवं गोबिंद में बदलाव आया। वहाँ से, सतवंत सिंह साहनी बनाम डी. रामारत्नम,सहायक पासपोर्ट अधिकारी, नई दिल्ली के मामले में कानून अगले चरण तक चला गया, जहाँ इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने बहुमत से अभिनिर्धारित किया कि दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार में आवागमन का अधिकार एवं विदेश यात्रा करने का अधिकार शामिल है। उक्त निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि हमारे संविधान में "स्वतंत्रता" का वही व्यापक अर्थ है जो अमेरिकी संविधान के 5 वें एवं 14 वें संशोधनों द्वारा "स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति को दिया गया है एवं अनुच्छेद 21 में "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति में केवल संविधान के अनुच्छेद 19 में निहित "स्वतंत्रता" के तत्व शामिल नहीं हैं।न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में "दैहिक स्वतंत्रता" की अभिव्यक्ति आवागमन एवं विदेश यात्रा करने के अधिकार में आती है, लेकिन भारत के सभी क्षेत्रों में जाने का अधिकार इसके दायरे में नहीं आता है क्योंकि यह विशेष रूप से अनुच्छेद 19 में प्रदान किया गया है।[पैरा 88] [683-एफ-एच; 684-ए]

12. विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार को छोड़कर तकनीकी जासूसी को न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।यह एक ऐसे समय में था जब मोबाइल फोन दिन का क्रम नहीं बना था एवं राज्य के एकाधिकार को अभी तक निजी

अभिकर्ताआें जैसे मध्यस्थों/सेवा प्रदाताओं द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया गया था।आज, निजता के अधिकार का उल्लंघन ज्यादातर निजी अभिकर्ताआें द्वारा किया जाता है एवं यदि गैर-राज्य अभिकर्ताओं के विरूद्ध मौलिक अधिकारों को लागू नहीं किया जा सकता है, तो यह अधिकार निर्थक हो जाएगा। [पैरा 97] [688-डी, ई]

13. जहां तक संघ का संबंध है, अनुच्छेद 75 (3) एवं जहां तक राज्यों का संबंध है, अनुच्छेद 164 (2) से कुछ हद तक "सामूहिक उत्तरदायित्व" अभिव्यक्ति का पता लगता है। लेकिन दोनों अनुच्छेदों में, यह मंत्रिपरिषद है जो राज्य के लोक सभा/विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। आम तौर पर लोक सभा या विधानसभा के प्रति मंत्रिपरिषद की सामूहिक जिम्मेदारी का मंत्रिपरिषद के निर्णयों एवं कार्यों से संबंधित समझा जाना चाहिए, न कि प्रत्येक व्यक्तिगत मंत्री द्वारा दिए गए प्रत्येक बयान से।[पैरा 112] [693-एफ, जी]

14. चर्चा से जो पता चलता है वह यह है कि (i) सामूहिक उत्तरदायित्व की अवधारणा अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक अवधारणा है; (ii) सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्रिपरिषद का है; एवं (iii) ऐसी सामूहिक उत्तरदायित्व लोक सभा/राज्य की विधान सभा के प्रति है। समान्यतः ऐसी जिम्मेदारी (i) लिए गए निर्णयों; एवं (ii) किए गए चूक एवं कार्यों से संबंधित होती है। सामूहिक उत्तरदायित्व की इस अवधारणा का विस्तार लोक सभा/विधान सभा के बाहर किसी मंत्री द्वारा मौखिक रूप से दिए गए किसी भी एवं प्रत्येक बयान तक करना संभव नहीं है। एक मंत्री द्वारा दिए गए बयान, भले ही राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा के लिए हो, सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत

का आधार पर सरकार को प्रतिनिधिक रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।[पैरा 126,137] [701-ए, बी; 704-ई]

15. इस न्यायालय एवं उच्च न्यायालय ने जब भी किसी सार्वजनिक पदाधिकारी की ओर से चूक एवं कार्य हुआ है, तो निरंतर उसे संवैधानिक अपकृत्य बताया है, जिसमें शामिल हैं - मंत्री ने अपहानि या नुकसान कारित किया । लेकिन एेसे में पहले से ही एक उचित कानूनी ढांचे की आवश्यकता है ताकि मामले को खुला या अस्पष्ट छोड़े बिना सिद्धांतों एवं प्रक्रिया को सुसंगत रूप से निर्धारित किया जा सके। वास्तव में, विधि आयोग की पहली रिपोर्ट ने 1956 में एक विधेयक प्रस्तुत किया था। इस न्यायालय ने 1965 में कस्तूरी लाल के मामले में एक विधायी उपाय का सुझाव दिया एवं सरकार (अपकृत्य में दायित्व) विधेयक 1967 में प्रस्तुत किया गया था। परंतु पिछले 55 वर्षों में कुछ नहीं हुआ। ऐसी परिस्थितियों में, अदालतें आंखें नहीं मूंद सकती, लेकिन उपहति या नुकसान झेलने वाले व्यक्तियों को इस आधार पर दूर किए बिना कि कोई उचित कानूनी ढांचा नहीं है, उन्हें प्रदान किए जाने वाले उपचार को कल्पनाशील रूप से तैयार करना पड़ होगा । इसलिए, "किसी मंत्री द्वारा दिया गया एक मात्र बयान मंत्री, संविधान के भाग-III के अंतर्गत एक नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत होने से संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं हो सकता है एवं संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्यवाही योग्य हो सकता है। लेकिन अगर इस तरह के बयान के परिणामस्वरूप, अधिकारियों द्वारा कोई चूक या गलत कार्य किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप किसी

व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है, तो यह एक संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्यवाही योग्य हो सकता है। [पैरा153, 154][715-एफ-एच; 716-ए, बी]

सहारा इंडिया रियल एस्टेट कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (2012) 10 एस. सी. सी. 603 : [2012] 12 एससीआर 256; न्यायमूर्ति के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017) 10 एस. सी. सी. 1:[2017] 10 एससीआर 569; ए. संजीवी नायडू बनाम मद्रास राज्य (1970) 1 एससीसी 443 :[1970] 3 एस. सी. आर. 505 एवं कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ।(1977) 4 एससीसी 608:[1978] 2 एस. सी. आर. 1- अनुसरण किया गया।

एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनामभारत संघ [1959] एस. सी. आर. 12; सकल पेपर्स (पी) लिमिटेड बनाम.भारत संघ [1962] 3 एस. सी. आर. 842; बिजोए इमैनुएल बनाम स्टेट ऑफ इंडिया केरल (1986) 3 एस. सी. सी. 615:[1986] 3 एससीआर 518; राम जेठमलानी बनाम भारत संघ (2011) 8 एससीसी 1: [2011] 8 एससीआर 725; सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार बनाम क्रिकेट संघ जी. बंगाल (1995) 2 एस. सी. सी. 161:[1995] 1 एससीआर 1036; रामलीला मैदान की घटना, पुनः।(2012) 5 एससीसी 1:[2012] 4 एस. सी. आर. 971; आर.

राजगोपाल उर्फ आर. आर. गोपाल बनाम स्टेट ऑफ टी. एन (1994) 6 एस. सी. सी. 632:[1994] 4 पूरक।एससीआर 353; पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी. यू. सी. एल.) बनाम यूनियन ऑफ सिविल लिबर्टीज भारत (2003) 4 एससीसी 399: [2003] 2 एस. सी. आर. 1136; ध्वनि प्रदूषण (वी.), रे (2005) 5 एस. सी. सी. 733:[2005] 1 पूरक। एससीआर 624; थलाप्पलम सर्विस कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम केरल राज्य (2013) 16 एस. सी. सी. 82:[2013] 14 एस. सी. आर. 475; सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ, विधि मंत्रालय (2016) 7 एससीसी 221: [2016] 3 एससीआर 865; आशा रंजन बनाम बिहार राज्य (2017) 4 एससीसी 397:[2017] 1 एस. सी. आर. 945; रेलवे बोर्ड संघ का प्रतिनिधित्व करता है भारत बनाम निरंजन सिंह (1969) 1 एस. सी. सी. 502:[1969] 3 एस. सी. आर. 548; भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम प्रो.मनुभाई डी. शाह (1992) 3 एससीसी 637:[1992] 3 एससीआर 595; एस. कृष्णन बनाम मद्रास राज्य ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 301:[1951] एससीआर 621; पं. परमानंद कटारा बनाम संघ भारत (1989) 4 एससीसी 286:[1989] 3 एससीआर 997; शक्ति वाहिनी बनाम भारत संघ और अन्य। (2018) 7 एससीसी 192:[2018] 3 एस. सी. आर. 770; आर. के. जैन बनाम

भारत संघ (1993) 4 एससीसी 119:[1993] 3 एस. सी. आर. 802; सचिव, जयपुर विकास प्राधिकरण, जयपुर बनाम दौलत मल जैन (1997) 1 एससीसी 35:[1996] 6 पूरक।एस. सी. आर. 584; विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1998) 1 एस. सी. सी. 226: [1997] 6 पूरक। एस. सी. आर. 595; सामान्य कारण, एक पंजीकृत समाज बनाम भारत संघ (1999) 6 एस. सी. सी. 667: [1999] 3 एस. सी. आर. 1279 एवं राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) बनाम भारत संघ (2018) 8 एससीसी 501:[2018] 7 एस. सी. आर. 1-निर्भर।

अमीश देवगन बनाम भारत संघ (2021) 1 एससीसी 1 -निर्भर किया ।

रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य ए. आई. आर 1950 एस. सी. 124:[1950] एस. सी. आर. 594; रुस्तम कावासजी कूपर बनाम यूनियन भारत सरकार (1970) 1 एस. सी. सी. 248:[1970] 3 एस. सी. आर. 530; सतवंत सिंह साहनी बनाम डी. रामरत्ना एम, सहायक पासपोर्ट अधिकारी, नई दिल्ली ए. आई. आर 1967 एस. सी. 1836:[1967] 2 एस. सी. आर. 525; मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) 1 एससीसी 248:[1978] 2 एससीआर 621; बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ और अन्य। (1984) 3

एससीसी 161:[1984] 2 एस. सी. आर. 67; राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य। (1996) 1 एससीसी 590 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [2023] 8 एससीआर आर. 742 :[1996] 1 एससीआर 278; श्री एक्स; बनाम अस्पताल जेड; (1998) 8 एससीसी 296:[1998] 1 पूरक।एस. सी. आर. 723; पीपुल्स यूनियन सिविल लिबर्टीज (पी. यू. सी. एल.) बनाम भारत संघ (1997) 1 एससीसी 301:[1996] 10 पूरक।एससीआर 321; एम/एस. कस्तूरी लाल रालिया राम जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आकाशवाणी 1965 एससी 1039:[1965] 1 एस. सी. आर. 375; राजस्थान राज्य बनाम एम. विद्यावती एयर 1962 एस. सी. 933:[1962] पूरक एस. सी. आर. 989; रुदुल साह बनाम बिहार राज्य (1983) 4 एस. सी. सी. 141:[1983] 3 एस. सी. आर. 508; नीलाबती बेहरा (श्रीमती) उपनाम ललिता बेहरा (उच्चतम न्यायालय कानूनी सहायता समिति के माध्यम से) बनाम उड़ीसा राज्य (1993) 2 एस. सी. सी. 746:[1993] 2 एस. सी. आर. 581; जुमुना प्रसाद मुखर्जी बनाम लछी राम [1955] 1 एस. सी. आर. 608; पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक इअधिकार बनाम भारत संघ (1982) 3 एस. सी. सी. 235:[1983] 1 एस. सी. आर. 456; बोधिसत्व गौतम बनाम सुभ्रा चक्रवर्ती(सुश्री) (1996) 1 एससी 490:

[1995] 6 पूरक।एससीआर 731; एम. सी. मेहता बनाम कमल नाथ (2000) 6 एस. सी. सी. 212:[2000] 1 पूरक।एससीआर 389; पी. डी. शामदासानी बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड [1952] एससीआर 391; पश्चिम बंगाल राज्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के लिए समिति, पश्चिम बंगाल (2010) 3 एस. सी. सी. 571:[2010] 2 एससीआर 979; एस. रंगराजन बनाम पी. जगजीवन राम (1989) 2 एससीसी 574:[1989] 2 एस. सी. आर. 204; भारत संघ बनाम के. एम. शंकरप्पा (2001) 1 एससीसी 582:[2000] 5 पूरक। एस. सी. आर. 117; इंडिबली क्रिएटिव प्राइवेट लिमिटेड बनाम. पश्चिम बंगाल सरकार (2020) 12 एससीसी 436:[2019] 5 एस. सी. आर. 679; महाराष्ट्र राज्य बनाम सारंगधरसिंह शिवदाससिंह चव्हाण (2011) 1 एस. सी. सी. 577: [2010] 15 एससीआर 1145; मनोज नरूला बनाम भारत संघ (2014) 9 एससीसी 1:[2014] 9 एस. सी. आर. 965; आर. साई भारती बनाम जे. जयललिता (2004) 2 एस. सी. सी. 9:[2003] पूरक।एससीआर 85; प्रागा टूल्स कॉर्पोरेशन बनाम श्री सी. ए. इमानुअल (1969) 1 एससीसी 585:[1969] 3 एस. सी. आर. 773; एंडी मुक्त सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदास स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक न्यास बनाम वी. आर. रुदानी (1989) 2 एस. सी. सी.

691:[1989] 2 एससीआर 697; एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ ए. आई. आर 1987 एस. सी. 1086:[1987] 1 एस. सी. आर. 819; बिन्नी लिमिटेड बनाम.वी. सदाशिवन (2005) 6 एससीसी 657:[2005] 2 पूरक एस. सी. आर. 421; सोसाइटी फॉर अनएडिड प्राइवेट स्कूल्स ऑफ राजस्थान बनाम भारत संघ (2012) 6 एससीसी 1:[2012] 2 एस. सी. आर. 715; प्रवासी भलाई संगठन बनाम भारत संघ (2014) 11 एससीसी 477:[2014] 4 एस. सी. आर. 446; कोडुंगल्लूर फिल्म सोसायटी बनाम भारतीय संघ (2018) 10 एस. सी. सी. 713:[2018] 12 एस. सी. आर. 695; बृज भूषण बनाम दिल्ली राज्य ए. आई. आर 1950 एस. सी. 129: [1950] एससीआर 605; मद्रास राज्य वी.वी. जी. रो (1952) 1 एस. सी. सी. 410; श्रीमती. विद्या वर्मा बनाम डॉ. शिव नारायण वर्मा एयर 1956 एससी 108:[1955] 2 एससीआर 983; सुखदेव सिंह बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी (1975) 1 एससीसी 421: [1975] 3 एससीआर 619; लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एम. के. गुप्ता (1994) 1 एससीसी 243:[1993] 3 पूरक।एससीआर 615; अध्यक्ष,रेलवे बोर्ड और अन्य. v.चंद्रिमा दास (श्रीमती) और अन्य। 2000) 2 एससीसी 465:[2000] 1 एससीआर 480; एमसी मेहता बनाम कमलनाथ (1997) 1 एससीसी 388:[1996] 10 पूरक।

एससीआर 12; वेल्लोर नागरिक कल्याण मंच बनाम भारत संघ (1996) 5 एससीसी 647:[1996] 5 पूरक।एससीआर 241; भारतीय पर्यावरण-कानूनी कार्यवाही परिषद बनाम भारत संघ(1996) 3 एससीसी 212:[1996] 2 एससीआर 503; उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केंद्र और अन्य बनामभारत संघ अन्य।(1995) 3 एससीसी 42:[1995] 1 एस. सी. आर. 626; विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) 6 एस. सी. सी. 241:[1997] 3 पूरक। एससीआर 404; मेधा कोतवाल लेल एंड अन्य. वी.भारत संघ (2013) 1 एससीसी 297:[2012] 9 एससीआर 895; गीता हरिहरन (सुश्री) और अन्न बनामभारतीय रिजर्व बैंक और एन. आर. (1999) 2 एससीसी 228:[1999] 1 एससीआर 669; भारतीय मेडिकल एसोसिएशन बनाम भारतीय संघ (2011) 7 एस. सी. सी. 17: [2011] 6 एस. सी. आर. 599; जीजा घोष बनाम भारत संघ(2016) 7 एससीसी 761:[2016] 4 एस. सी. आर. 638; ज़ी टेलीफिल्म्स लिमिटेड बनामभारत संघ (2005) 4 एससीसी 649: [2005] 1 एस. सी. आर. 913; जेनेट जयपॉल बनाम एस. आर. एम. विश्वविद्यालय (2015) 16 एस. सी. सी. 530 76; ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य आकाशवाणी 1950 एससी 27:[1950] एससीआर 88; आर. डी. शेट्टी बनाम अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा

प्राधिकरण (1979) 3 एस. सी. सी. 489:[1979] 3 एस.सी. आर. 1014; एंडी मुक्त बनाम वी. आर. रुदानी (1989) 2 एससीसी 691: [1989] 2 एस. सी. आर. 697; सिद्धराम सतलिंगप्पा मेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 1 एस. सी. सी. 694:[2010] 15 एससीआर 201; खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1963 एससी 1295: [1964] 1 एस. सी. आर. 332; मो.आरिफ उपनाम 592 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [2023] 8 एससीआर आर. अशफाक बनाम पंजीयक, भारत का सर्वोच्च न्यायालय और अन्य। (2014) 9 एससीसी 737:[2014] 11 एस. सी. आर. 1009; गोविंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1975) 2 एस. सी. सी. 148:[1975] 3 एससीआर 946; सुचिता श्रीवास्तव और अन्न. वी.चंडीगढ़ (2009) 9 एससीसी 1:[2009] 13 एस. सी. आर. 989; देविका विश्वास बनाम भारत संघ (2016) 10 एस. सी. सी. 726; जिला पंजीयक बी. एवं कलेक्टर, हैदराबाद एवं अन्न बनाम।केनरा बैंक एंड इअन्य। (2005) 1 एससीसी 496:[2004] 5 पूरक एससीआर 833;बिजनेस एवं फाइनेंशियल न्यूज में प्रकाशित ग्राम न्यायालय के आदेश पर भारतीय महिला ने किया सामूहिक बलात्कार 23-1-2014, रे (2014) 4 एस. सी. सी. 786:[2014] 4 एससीआर 264; लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2006) 5 एससीसी 475 :[2006] 3

पूरक।एस. सी. आर. 350; अरुमुगम सर्वई बनाम तमिलनाडु राज्य (2011) 6 एस. सी. सी. 405:[2011] 5 एस. सी. आर. 488; बिहार राज्य बनाम अब्दुल माजिद एयर 1954 एससी 245:[1954] एस. सी. आर. 786 एवं खत्री (II) बनाम बिहार राज्य (1981) 1 एस. सी. सी. 627:[1981] 2 एस. सी. आर. 408-संदर्भित।

जॉन मेस्केल बनाम कोरस इओम्पायर एरियन 1973 आईआर 121 1972 आईआर 330; मुर्तघ प्रॉपर्टीज लिमिटेड बनाम क्लियरी 121 1972 आई. आर. 330; शेली बनाम क्रेमर 334 यू. एस. 1 (1948); लूथ लूथ (1958) बीवी. वर्फ. जी. ई 7,198; गिटलो बनाम न्यूयॉर्क 286 यू. एस. 652 (1925); "नागरिक अधिकार मामले" 109 यू. एस. 3 (1883); जोन्स बनाम अल्फ्रेड एच. मेयर कंपनी 392 यूएस 409 (1968); न्यूयॉर्क टाइम्स बनाम सुलिवन 376 यूएस 254 (1964); डु प्लेसिस एवं अन्य बनाम डी क्लर्क एवं एक अन्य 1996 जेडएसीसी 10; खुमालो बनाम होलोमिसा (2002) जेडएसीसी 12; जुमा मस्जिद प्राथमिक विद्यालय का शासी निकाय एवंअन्य बनाम। निबंध एन. ओ. एवं अन्य (CCT 29/10) [2011] ZACC 13; 2011 (8) BCLR 761 (CC); डगलस बनाम हैलो।लिमिटेड. [2001] क्यू. बी. 967; एक्स बनाम वाई [2004] ई. डब्ल्यू. सी.

ए. सी. आई. वी. 662; प्लेटफ़ॉर्म "आर्ज़्टे" फ़ुर दास लेबेन बनाम ऑस्ट्रिया [1988] ईसीएचआर 15 एक्स एवं वाई बनाम नीदरलैंड [1985] ईसीएचआर 4 मार्श बनाम अलबामा 326 यू. एस. 501 (1946)-संदर्भित।

अनूप सुरेंद्रनाथ-भारतीय संविधान की ऑक्सफोर्ड पुस्तिका (दक्षिण एशिया संस्करण), 2016 में "जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता" पर लेख एवं फ्रांसेस कम, नैतिकता, मृत्यु दर Vol.2, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996-संदर्भित।

बी. वी. नागरत्ना, जे. (आंशिक रूप से असहमत)

अभिनिर्धारितः1. संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अंतर्गत परिकल्पित वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है अभिव्यक्ति की वाक् स्वातंत्रय का अधिकार एवं विभिन्न माध्यमों जैसे कि मौखिक रूप से, प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से,चित्रलेख, लेखन, ग्राफिक्स या किसी अन्य तरीके से अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार जिसे मस्तिष्क समझ सकता है। अधिकार में प्रेस की स्वतंत्रता शामिल है। इस अधिकार के तत्वों में प्रकाशन एवं प्रसार के माध्यम से विचारों का प्रचार, सूचना प्राप्त करने का एवं विचारों को प्राप्त करने या प्रदान करने का अधिकार भी शामिल है। संक्षेप में, वाक् स्वातंत्रय के अधिकार में अधिकार की हर प्रकृति शामिल होगी जो स्वतंत्र वाक्

के परिधि एवं दायरे में आएगी। इसलिए, अनुच्छेद 19 (1) (ए) बहुत व्यापक एवं विस्तृत रूप से कहता है कि सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। उक्त अधिकार को केवल उचित प्रतिबंधों द्वारा कम किया जा सकता है जो इसके अनुच्छेद 19(2) में उल्लेखित हैं जिन्हें राज्य द्वारा कानून के अधिकार के अंतर्गत लगाया जा सकता है, लेकिन किसी भी कानून के अभाव में कार्यकारी शक्ति के प्रयोग से नहीं। इसके अलावा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंधों की प्रकृति उचित होनी चाहिए, एवं भारत की संप्रभुता एवं अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के लिए उकसाने के संबंध में होनी चाहिए।(अनुच्छेद 19 (2)। हमारे जैसे देश के लिए, जो एक संसदीय लोकतंत्र है, वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक आवश्यक अधिकार के साथ-साथ न केवल एक स्वस्थ लोकतंत्र सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सहगामी है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करने के लिए है कि नागरिकों को शासन के बारे में अच्छी तरह से सूचित एवं शिक्षित किया जा सके। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या ऑडियो विजुअल रूप सहित विभिन्न मीडिया के माध्यम से जानकारी का प्रसार यह सुनिश्चित करने के लिए है कि नागरिक अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के बारे में जागरूक हों, जिस तरह से उन्हें लोकतंत्र में खुद को संचालित करना चाहिए एवं सरकारों की नीतियों एवं कार्यों पर बहस को सक्षम बनाने के लिए एवं अंततः समतावादी तरीके से भारतीय समाज के विकास के लिए। संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) में बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की उत्पत्ति

संविधान की प्रस्तावना में हुई है, जो अन्य बातों के साथ-साथ विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास की स्वतंत्रता की बात करती है। चूँकि भारत एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य है एवं हम लोकतंत्र की संसदीय प्रणाली का पालन करते हैं, इसलिए विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। हमारी संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गतमहत्वपूर्ण स्वतंत्रता एवं अधिकार। [पैरा12.3,12.4,12.5] [730-ई-एच; 731-ए-एफ]

2. भारत का संविधान अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अंतर्गत अपने सभी नागरिकों को बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 19 (2) में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, जो अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार पर उचित प्रतिबंध हैं, ऐसे अधिकारों में हस्तक्षेप से दूर रहना राज्य का मूल कर्तव्य है। इस तरह के कर्तव्य की सीमा भाषण की सामग्री पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, भारत की संप्रभुता एवं अखंडता के हितों के प्रतिकूल होने वाले भाषण, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के संबंध में; या ऐसा भाषण जो न्यायालय की अवमानना, मानहानि का गठन करता है या ऐसी प्रकृति का है जो किसी अपराध उददीपन की संभावना रखता है, हस्तक्षेप से दूर रहने का राज्य का कर्तव्य शून्य है। यह सिद्धांत संवैधानिक रूप से अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत परिलक्षित होता है जो राज्य को कानून बनाने में सक्षम बनाता है जो आठ आधारों के अंतर्गत वर्णित ऐसे भाषण पर उचित प्रतिबंध लगाएगा जो उचित प्रतिबंधों का आधार हैं।[पैरा 14.1] [736-ए-डी]

3. वाक् की सुरक्षा की सीमा इस बात पर निर्भर करेगी कि क्या इस तरह के भाषण "विचारों के प्रचार" का गठन होगा या इसका कोई सामाजिक मूल्य होगा। यदि उक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अंतर्गत संरक्षित होगा; यदि उत्तर नकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अंतर्गत संरक्षित नहीं किया जाएगा। भाषण के संबंध में जो अनुच्छेद 19 (1) (ए) की अंतर्गत नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 19 (2) एवं केवल उसमें उल्लिखित आधारों को ध्यान में रखते हुए हस्तक्षेप से दूर रहने का राज्य का कोई कर्तव्य नहीं है।[पैरा 14.1] [736-जी-एच; 737-ए]

4. यह ध्यान में रखते हुए कि जिस सुरक्षात्मक परिधि के भीतर कोई व्यक्ति अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि अधिकार की रक्षा करने के लिए राज्य का कर्तव्य किस हद तक बाध्य है, यह एक परिणाम के रूप में भी कहा जा सकता है कि भाषण के संबंध में जो अनुच्छेद 19 (1) (ए) कं अंतर्गत नहीं है, राज्य का हस्तक्षेप से दूर रहने का कोई कर्तव्य नहीं है एवं इसलिए, भाषण जैसे घृणित भाषण, मानहानिकारक भाषण आदि उस सुरक्षात्मक परिधि के बाहर होंगे जिसके भीतर कोई व्यक्ति अपने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस तरह के भाषण प्रतिबंधों या अंकुश के अधीन हो सकते हैं। जबकि वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध केवल अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत सूचीबद्ध आधारों के अंतर्गत किए जाने की आवश्यकता है, राज्य द्वारा, उक्त अधिकार पर प्रतिबंध, अनुच्छेद 19 (2) से बल प्राप्त नहीं करते हैं। वाक् एवं

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध अनुच्छेद स्वयं 19 (1) (ए) की अंर्तवस्तु द्वारा नियंत्रित होते हैं; यानी, किसी भी प्रकार का भाषण, जो अनुच्छेद 19 (1) (ए) के अंतर्गत अधिकार की अंर्तवस्तु के अनुरूप नहीं है, को प्रतिबंधित किया जा सकता है।इस तरह के प्रतिबंध की स्वैच्छिक या बाध्यकारी प्रकृति, इसके पीछे की शक्ति, जिन व्यक्तियों पर इस तरह के प्रतिबंध लगाए जाने हैं, जिस तरह से इसका अनुपालन किया जा सकता है, आदि से संबंधित प्रश्न, ऐसे पहलू हैं जिन पर संसद द्वारा विचार-विमर्श एवं उत्तर दिया जाना बाकी है। हालाँकि, यहाँ ऊपर दिया गया निष्कर्ष केवल यह स्पष्ट करने की सीमा तक है कि किसी भी प्रकार के भाषण, जो अनुच्छेद 19 (1) (ए) की अंर्त्वस्तु के अनुरूप नहीं है, को प्रतिबंधित किया जा सकता है क्योंकि इस तरह के भाषण विचारों के आदान-प्रदान का गठन नहीं करते हैं, जो एक सभ्य समाज में विकसित लोकाचार के अनुरूप है। इस तरह के प्रतिबंधों का पता केवल अनुच्छेद 19 (2) से ही नहीं लगाया जा सकता है, जो आठ आधारों को पूरी तरह से सूचीबद्ध करता है जिन पर राज्य द्वारा वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। [पैरा 14.1] [737-बी-एच]

5. अनुच्छेद 19 (1) (ए) एक ऐसे साधन के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से असहमति व्यक्त की जा सकती है।असहमति जताने, असहमत होने एवं अलग-अलग एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण अपनाने का अधिकार इस देश के प्रत्येक नागरिक में निहित है। वास्तव में, असहमति का अधिकार एक जीवंत लोकतंत्र का सार है, क्योंकि जब असहमति होती है तब ही विभिन्न विचार सामने आते हैं जो सरकार को अपनी

नीतियों में सुधार या नवाचार करने में मदद या सहायता कर सकते हैं ताकि उसके शासन का देश के लोगों पर सकारात्मक प्रभाव पड़े जो अंततः स्थिरता, शांति एवं विकास की ओर ले जाए जो सुशासन के सहवर्ती हैं।[पैरा 15.2] [739-सी-डी]

6. समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुता हमारे संविधान की प्रस्तावना में अंतर्निहित मूलभूत मूल्य हैं। 'घृणापूर्ण भाषण' जिस अर्थ में चर्चा की गई है, एक समाज को असमान के रूप में चिह्नित करके, इन मूलभूत मूल्यों में से प्रत्येक पर हमला करता है। यह विविध पृष्ठभूमि के नागरिकों की बंधुता का भी उल्लंघन करता है, जो बहुलता एवं बहुसंस्कृतिवाद पर आधारित एक सामंजस्यपूर्ण समाज है। जैसा कि इण्डिया, जो भारत है, में लोकतंत्र, हमारे संविधान की बुनियादी विशेषताओं में से एक होने के नाते, यह निहित है कि बहुमत द्वारा एक नियम में सुरक्षा एवं समावेशिता की भावना होगी। इसके अलावा, संविधान की प्रस्तावना, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ बंधुता, व्यक्तियों की गरिमा सुनिश्चित की परिकल्पना की गई है, यह आश्वासन देती है कि सार्वजनिक कार्यकर्ताओं सहित साथी नागरिकों द्वारा दिए जा रहे अनुचित भाषण से को नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता है। इस प्रकार, भारत के लोगों को न केवल न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बल्कि राष्ट्र की बंधुता एवं एकता एवं अखंडता का आश्वासन देने वाले संविधान की प्रस्तावना एवं उसके मूल्यों को इस देश के प्रत्येक नागरिक, चाहे वह किसी भी पद या पद या शक्ति पर क्यों न हो को संविधान के उदात्त आदर्शों की याद दिलानी चाहिए एवं उनका शब्दशः एवं उनकी मूल भवना का सम्मान करना चाहिये। यह सुनिश्चित करने के लिए एक अंतर्निहित संवैधानिक जाँच है कि संविधान के मूल्यों को किसी भी

तरह से कमजोर या उल्लंघन नहीं किया गया है। यह सही समय है कि हम, सामान्य रूप से एक समाज के रूप में एवं विशेष रूप से व्यक्तियों के रूप में, संविधान के पवित्र मूल्यों के प्रति खुद को फिर से समर्पित करें एवं उन्हें न केवल अपने व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि व्यापक स्तर पर बढ़ावा दें। किसी भी तरह का भाषण जो उन मूल्यों को कमजोर करता है जिनके लिए हमारा संविधान खड़ा है, हमारे सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों पर धब्बा लगाएगा। [पैरा 26,27.3] [762-सी, डी; 764-जी-एच; ए-डी]

7. अधिकार का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति का पद, दोनों अधिकारों एवं संबंधित उपचारों के बीच अंतर के लिए एक आवश्यक पैरामीटर है। जहां किसी मान्यता प्राप्त अधिकार के साथ हस्तक्षेप राज्य या अनुच्छेद 12 के अंतर्गत मान्यता प्राप्त किसी अन्य संस्था द्वारा है, वहां मौलिक अधिकार के उल्लंघन का दावा संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अंतर्गत क्रमशः इस न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष होगा। जहां राज्य या उसके उपकरणों के अलावा किसी अन्य संस्था द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है, वहां कार्यवाही सामान्य कानून के अंतर्गत होगी एवं उस हद तक, कानूनी योजना ऐसे अधिकारों के क्षैतिज संचालन को मान्यता देती है। यद्यपि मौलिक अधिकार की अंर्तवस्तु संविधान के अंतर्गत सामान्य कानून अधिकार के साथ समान हो सकती है, लेकिन यह केवल सामान्य कानून अधिकार है जो क्षैतिज रूप से संचालित होता है, सिवाय इसके कि जब उन मौलिक अधिकारों को विशिष्ट अधिनियमों के अंतर्गत वैधानिक अधिकारों में बदल दिया गया हो या जहां क्षैतिज संचालन को संविधान के अंतर्गत स्पष्ट रूप से मान्यता दी गई हो।[पैरा 42,43] [780-एफ-एच; 781-ए-बी]

8. नागरिकों के बीच मौलिक अधिकारों के एक क्षैतिज दृष्टिकोण को मान्यता देने से मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के दावों को स्वीकार करने के उद्देश्य से "राज्य" की पहचान करने के लिए इस न्यायालय द्वारा बनाए गए सभी परीक्षण एवं सिद्धांत निरर्थक हो जाएंगे। यदि इस न्यायालय का इरादा अनुच्छेद 19 एवं 21 के अंतर्गत अधिकारों सहित मौलिक अधिकारों को क्षैतिज रूप से संचालित करने की अनुमति देना होता, तो यह न्यायालय अनुच्छेद 12 के अंतर्गत परिभाषित "राज्य" के सही अर्थ एवं दायरे को निर्धारित करने के लिए परीक्षणों को विकसित करने एवं परिष्कृत करने में संलग्न नहीं होता। यह न्यायालय रिट याचिकाओं की स्थिरता केरूप में मौलिक प्रश्नों पर विचार-विमर्श किए बिना सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं के विरूद्ध मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के दावों पर विचार करता। यद्यपि इस न्यायालय ने अनुच्छेद 12 के अंतर्गत परिभाषित "राज्य" के दायरे का काफी विस्तार किया है, लेकिन ऐसा विस्तार विचाराधीन इकाई द्वारा किए गए कार्यों की प्रकृति एवं राज्य द्वारा उस पर प्रयोग किए गए नियंत्रण की मात्रा जैसे विचारों पर आधारित है। यह अनुच्छेद 19 एवं 21 के अंतर्गत मौलिक अधिकारों की क्षैतिजता को मान्यता देने से काफी अलग है, सिवाय बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट की मांग के। इस तरह की मान्यता संविधान के अनुच्छेद 12 के दायरे के रूप में इस न्यायालय द्वारा विकसित न्यायशास्त्र की अवहेलना के बराबर होगी। एक अन्य पहलू जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि एक रिट न्यायालय सामान्य रूप से उन मामलों में रिट जारी करने का निर्णय नहीं करता है जहां सामान्य कानून या वैधानिक कानून के अंतर्गत वैकल्पिक एवं प्रभावी उपचार मौजूद हैं,

विशेष रूप से निजी व्यक्तियों के विरूद्ध। इसलिए, यदि अनुच्छेद 19/21 के अंतर्गत मौलिक अधिकारों के क्षैतिज संचालन को मान्यता दी जाती है, तो भी ऐसी मान्यता का कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का एक रिट न्यायालय के समक्ष दावा इस आधार पर विफल हो जाएगा कि सामान्य कानून अधिकार जो मूल अधिकार की सामग्री में समान है, को सामान्य कानूनी उपायों का सहारा लेकर लागू किया जा सकता है। इसलिए, इस आधार पर कि सामान्य कानून में एक वैकल्पिक एवं प्रभावी उपाय मौजूद है, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए क्षैतिज दावा एक रिट न्यायालय के समक्ष विफल हो जाएगा। [पैरा 43] [785-ए-जी]

9. अनुच्छेद 21 के अंतर्गत राज्य पर डाला गया कर्तव्य एक नकारात्मक कर्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति को कानून के अनुसार छोड़कर उसके प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से वंचित न करे। राज्य का यह सकारात्मक कर्तव्य है कि वैधानिक एवं संवैधानिक कानून द्वारा उस पर अधिरोपित दायित्व, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत मौलिक अधिकार पर आधारित हैं, का पालन करे। इस तरह के दायित्वों के लिए राज्य द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है जहां एक निजी कर्ता के कार्य किसी अन्य व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता को खतरे में डाल सकते हैं। किसी नागरिक के अधिकारों की रक्षा के लिए वैधानिक कानून के अंतर्गत राज्य को दिए गए कर्तव्यों का पालन करने में विफलता, एक नागरिक को उसके जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित कर सकती है। जब कोई नागरिक अपने प्राण के अधिकार एवं दैहिक

स्वतंत्रता से इस तरह वंचित होता है, तो राज्य ने अनुच्छेद 21 के अंतर्गत उस पर लगाए गए नकारात्मक कर्तव्य का उल्लंघन किया होता है। [पैरा 44] [792-डी-जी]

10. किसी मंत्री द्वारा दिए गए बयान राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा से संबंधित है, तो सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत का आधार पर सरकार को प्रतिनिधित्व दायित्व के आधार पर जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जब तक कि ऐसा बयान सरकार के दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है।यदि ऐसा कथन सरकार के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है, तो इसका श्रेय व्यक्तिगत रूप से मंत्री को दिया जा सकता है।[पैरा 45] [793-डी-ई]

11. उन कृत्यों या चूक को परिभाषित करने के लिए एक उचित कानूनी ढांचा आवश्यक है जो संवैधानिक अपकृत्य के बराबर होगा एवं जिस तरह से न्यायिक मिसाल के आधार पर इसका निवारण या सुधार किया जाएगा। विशेष रूप से, उन सभी मामलों को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में लेना विवेकपूर्ण नहीं है जहां एक सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा दिए गए बयान के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है, सिवाय प्रश्न संख्या 4 के उत्तर के संदर्भ के। यह संसद का विवेक है कि वह अनुच्छेद 19 (2) के सख्त मानदंडों को ध्यान में रखते हुए एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए, आम नागरिकों एवं सार्वजनिक कार्यकर्ताओं, विशेष रूप से, साथी नागरिकों के विरूद्ध अपमानजनक या कटु टिप्पणी करने से रोकने के लिए एक कानून या संहिता लागू करे। [पैरा 66,67] [801-बी-डी]

प्रवासी भलाई संगठन बनाम भारत संघ (2014) 11 एससी 477: [2014] 4 एससीआर 446; के. एस. पुट्टास्वामी (सेवानिवृत्त) बनाम भारत संघ (2019) 1 एससीसी 1:[2018] 8 एससीआर 1; सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ (2016) 7 एस. सी. सी. 221:[2016] 3 एस. सी. आर. 865; परम पूज्य केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य (1973) 4 एस. सी. सी. 225; पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ (2005) 2 एससीसी 436:[2005] 1 एससीआर 494; पी. डी. शामदासानी बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड। ए. आई. आर. 1952 एससी 59:[1952] एस. सी. आर. 391; पारसी सहकारी हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम जिला पंजीयक, सहकारी समितियाँ (शहरी) (2005) 5 एस. सी. सी. 632: [2005] 3 एससीआर 592; रामकृष्ण मिशन बनाम कागो कुन्या (2019) 16 एस. सी. सी. 303:[2019] 5 एससीआर 452; परमानंद कटारा बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 2039 : [1989] 3 एस. सी. आर. 997; राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम अरुणाचल प्रदेश राज्य (1996) 1 एससीसी 742:[1996] 1 एस. सी. आर. 278; गौरव कुमार बंसल बनाम भारत संघ (2015) 2 एस. सी. सी. 130:[2014] 7 एससीआर 725 एवं स्वराज अभियान बनाम

भारत संघ (2016) 7 एससीसीद 498 – का आधार लिया।

रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 124: [1950] एस.सी. आर. 594; एस. खुशबू बनाम कन्नियम्मल (2010) 5 एससीसी 600:[2010] 5 एस. सी. आर. 322; श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ (2015) 5 एस. सी. सी. 1:[2015] 5 एससीआर 963; सकल पेपर्स (पी) लिमिटेड बनामभारत संघ ए. आई. आर. 1962 एससी 305:[1962] 3 एससीआर 842; जीवन बीमा निगम बनाम प्रो.मनुभाई डी. शाह (1992) 3 एससीसी 637:[1992] 3 एस. सी. आर. 595; केदार नाथ सिंह बनाम राज्य बिहार ए. आई. आर. 1962 एससी 955:[1962] पूरक।एससीआर 769; दूरदर्शन महानिदेशालय बनाम आनंद पटवर्धन (2006) 8 एससीसी 433:[2006] 5 पूरक। एस. सी. आर. 403; हमरद दावा (वक्फ) लाल कुआँ बनाम। भारत संघ ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 554:[1960] 2 एससीआर 671; इंडियन एक्सप्रेस अखबार (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ (1985) 1 एससीसी 641:[1985] 2 एससीआर 287; टाटा प्रेस लिमिटेड बनाम महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड (1995) 5 एससीसी 139:[1995] 2 पूरक।एससीआर 467; यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मोशन पिक्चर एसोसिएशन ए. आई. आर. 1999 एससी 2334:[1999] 3 एस. सी. आर. 875; राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण

बनाम भारत संघ (2014) 5 एस. सी. सी. 438:[2014] 5 एस.सी. आर. 119; प्रभा दत्त बनाम भारत संघ (1982) 1 एससीसी 1:[1982] 1 एस. सी. आर. 1184; स्वप्निल त्रिपाठी बनाम भारत का सर्वोच्च न्यायालय (2018) 10 एस. सी. सी. 639:[2018] 11 एससीआर 57; भारत संघ बनाम नवीन जिंदल (2004) 2 एससीसी 510:[2004] 1 एस. सी. आर. 1038; बिजोए इम्मानुएल बनाम केरल राज्य (1986) 3 एस. सी. सी. 615:[1986] 3 एससीआर 518; अमीश देवगन बनाम भारत संघ (2021) 1 एससीसी 1; चारू खुराना बनाम भारत संघ (2015) 1 एस. सी. सी. 192:[2014]12 एस. सी. आर. 259; रे. ध्वनि प्रदूषण (V) (2005) 5 SCC 733 :[2005] 1 पूरक।एस. सी. आर. 624; अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर बनाम। शिवकांत शुक्ला ए. आई. आर. 1976 एससी 1207:[1976] पूरक।एस. सी. आर. 172; प्रदीप कुमार बिस्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीव विज्ञान संस्थान (2002) 5 एससीसी 111:[2002] 3 एस. सी. आर. 100; ज़ी टेलीफिल्म्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (2005) 4 एससीसी 649:[2005] 1 एससीआर 913; जेनेट जेयापॉल बनाम एस. आर. एम. विश्वविद्यालय (2015) 16 एस. सी. सी. 530; भारत संघ बनाम पॉल माणिकम (2003) 8 एससीसी 342 :[2003] 4 पूरक।एस. सी. आर. 618; मो.इकराम हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए. आई. आर.

1964 एस. सी. 1625:[1964] 5 एस. सी. आर. 86; निर्मलजीत कौर (2) बनाम पंजाब राज्य (2006) 9 एससीसी 364:[2005] 5 पूरक। एस. सी. आर. 514; भारत संघ बनाम पॉल माणिकम (2003) 8 एस. सी. सी. 342:[2003] 4 पूरक। एस. सी. आर. 618; पं. रुदुल साह बनाम बिहार राज्य (1983) 4 एस. सी. सी. 141 :[1983] 3 एस. सी. आर. 508; सेबस्टियन एम. हॉंग्रे बनाम भारत संघ (1984) 3 एस. सी. सी. 82:[1984] 3 एससीआर 544; भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (1985) 4 एस. सी. सी. 677; पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम पुलिस आयुक्त (1989) 4 एस. सी. सी. 730; सहेली बनाम पुलिस आयुक्त (1990) 1 एससीसी 422:[1989] 2 पूरक। एस. सी. आर. 488; राज्य महाराष्ट्र बनाम रविकांत एस. पाटिल (1991) 2 एस. सी. सी. 373; कुमारी बनाम तमिलनाडु राज्य (1992) 2 एस. सी. सी. 223; शकुंतला देवी बनाम दिल्ली विद्युत आपूर्ति उपक्रम (1995) 2 एस. सी. सी. 369; तमिलनाडु विद्युत बोर्ड बनाम। सुमंत (2000) 4 एस. सी. सी. 543:[2000] 3 एससीआर 708; रेलवे बोर्ड बनाम चंद्रिमा दास (2000) 2 एस. सी. सी. 465: [2000] 1 एस. सी. आर. 480; सबास्टियन एम. हॉंग्रे बनाम यूनियन ऑफ भारत ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1026:[1984] 3 एससीआर 544; भीम सिंह, विधायक बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य

ए. आई. आर. 1986 एस. सी.:494; नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य (1993) 2 एससीसी 746:[1993] 2 एससीआर 581; डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 1 एससीसी 416:[1996] 10 पूरक।एससीआर 284; हिंदुस्तान पेपर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम.अनंत भट्टाचार्जी (2004) 6 एस. सी. सी. 212; अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड बनाम चंद्रिमा दास (2000) 2 एस. सी. सी. 465:[2000] 1 एससीआर 480; कुमारी बनाम तमिलनाडु राज्य (1992) 2 एससीसी 223; तमिलनाडु विद्युत बोर्ड बनाम सुमति दास (2000) 4 एससीसी 543: [2000] 3 एससीआर 708 एवं दिल्ली जल बोर्ड बनाम. सीवरेज और संबद्ध श्रमिकों के सम्मान और अधिकारों के लिए राष्ट्रीय अभियान (2011) 8 एस. सी. सी. 568: [2011] 12 एस. सी. आर. 34- संदर्भित।

चैप्लिंस्की बनाम न्यू हैम्पशायर राज्य 315 U.S.568 (1942); आर बनाम जेम्स कीग्स्ट्रा [1990] 3 एससीआर 697; कनाडा मानवाधिकार आयोग बनाम टेलर [1990] 3 एससीआर 892; पैट ईटॉक बनाम एंड्रयू बोल्ट (2011) एफसीए एवं प्रायद्वीपीय; ओरिएंटल स्टीम नेविगेशन कंपनी बनाम राज्य का सचिव (1868 -69) 5 बॉम एच. सी. आर. ऐप 1 एवं सस्केचेवान ह्यूमन अधिकार आयोग बनाम

विलियम वॉटकॉट 2013 एस. सी. सी. 11 - संदर्भित किया गया।

संदर्भित न्यायिक दृष्टांत

निर्दिष्ट न्यायिक दृष्टांत वी. रामसुब्रमण्यन जे. के निर्णय में,

[1965] 1 एससीआर 375 संदर्भित किया गया है पैरा 9 (iv)

[1983] 3 एससीआर 508 संदर्भित किया गया है पैरा 9 (iv)

[1993] 2 एससीआर 581 संदर्भित किया गया है पैरा 9 (v)

[2013] 14 एससीआर 475 पर आधारित किया गया पैरा 10 (i)

[1994] 4 पूरक।एस. सी. आर. 353 पर आधारित किया गया पैरा 10 (i)

[2003] 2 एस. सी. आर. 1136 पर आधारित किया गया पैरा 10 (i)

[1955] 1 एस. सी. आर. 608 संदर्भित किया गया पैरा 10 (i)

[2011] 8 एस. सी. आर.725 पर आधारित किया गया पैरा 10 (i)

[2012] 12 एस. सी. आर. 256 पालन किया गया पैरा 10 (i)

[2016] 3 एस. सी.आर. 865 पर आधारित किया गया पैरा10 (i)

[2005] 1 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 624 पर आधारित किया गया पैरा 10 (i)

[2017]1 एस.सी.आर.945 पर आधारित किया गया पैरा 10 (i)

[1983] 1 एस. सी. आर. 456 संदर्भित किया गया पैरा 10 (ii)

[1995] 6 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 731 पर आधारित किया गया पैरा 10 (ii)

[2000]1 सप्लीमेंट एस.सी.आर.389 संदर्भित किया गया पैरा 10 (ii) [2017] 10 एससीआर 569 पालन किया गया पैरा 10 (ii)

1952] एससीआर 391 संदर्भित किया गया पैरा 10 (ii)

[2010] 2 एससीआर 979 संदर्भित किया गया पैरा 10 (iii)

[1989] 2 एससीआर 204 संदर्भित किया गया पैरा 10 (iii)

[2000] 5 पूरकएस. सी. आर. 117 संदर्भित किया गया पैरा 10 (iii)

[2019] 5 एस. सी. आर. 679 संदर्भित किया गया पैरा 10 (iii)

[1989] 3 एस. सी. आर. 997 पर निर्भर किया गया पैरा 10 (iii)

(2021) 1 एस. सी.सी. 1 से अंतर किया पैरा 10 (iv)

[2010] 15 एस. सी. आर. 1145 संदर्भित किया गया पैरा 10 (iv)

[1996] 6 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 584 पर निर्भर किया गया पैरा 10 (iv)

[2014] 9 एस.सी. आर. 965 पर निर्भर किया गया पैरा 10 (iv)

[2003] 6 पूरक एस. सी. आर. 85 संदर्भित किया गया है पैरा 10 (iv)

[1999] 3 एस. सी. आर. 1279 निर्भर किया गया पैरा 10 (v)

[1962] 3 एस. सी. आर. 842 निर्भर किया गया पैरा 10 (vi)

[1969] 3 एस.सी. आर. 773 संदर्भित किया गया है पैरा 10 (xii)

[1989] 2 एस. सी. आर. 697 संदर्भित किया गया है पैरा 10 (xii)

[1987] 1 एस. सी. आर. 819 संदर्भित किया गया है पैरा 10 (xiii)

[2005] 2 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 421 संदर्भित किया गया है पैरा 10 (xiii)

[2012] 2 एस. सी. आर. 715	संदर्भित किया गया है	पैरा 10 (xiv)
[2014] 4 एस. सी. आर. 446	संदर्भित किया गया है	पैरा 10 (xiii)
[2018] 12 एस. सी.आर. 695	संदर्भित किया गया है	पैरा 10 (xiii)
[1950] एस. सी. आर. 594	संदर्भित किया गया है	पैरा 15
[1950] एससीआर 605	संदर्भित किया गया है	पैरा 17
(1952) 1 एस. सी. सी. 410	संदर्भित किया गया है	पैरा 20
[1959] एससीआर 12	पर आधारित किया गया	पैरा 28
[1986] 3 एससीआर 518	पर आधारित किया गया	पैरा 29
[1995] 1 एससीआर 1036	पर आधारित किया गया	पैरा 30
[2012] 4 एससीआर 971	पर आधारित किया गया	पैरा 30
[1969] 3 एससीआर 548	पर आधारित किया गया	पैरा 43 (ix)
[1992] 3 एससीआर 595	पर आधारित किया गया	पैरा 43 (ix)
[1955] 2 एससीआर 983	पर आधारित किया गया	पैरा 76 (ii)
[1975] 3 एससीआर 619	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (iii)
[1993] 3 पूरक एस. सी. आर. 615	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (vii)
[2000] 1 एस. सी. आर. 480	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (viii)
[1996] 10 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 12	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (ix)
[1996] 5 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 241	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (ix)
[1996] 2 एस. सी. आर. 503	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (ix)

[1995] 1 एस. सी. आर. 626	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (x)
[1997] 3 सप्लीमेंट को एस. सी. आर. 404	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xi)
[2012] 9 एस. सी. आर. 895	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xi)
[1999] 1 एस. सी. आर. 669	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xii)
[2011] 6 एस. सी. आर. 599 पैरा	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xiii)
[2016] 4 एस.सी. आर. 638	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xv)
[2005] 1 एस. सी. आर. 913	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xvi)
[2015) 16 एस. सी. सी. 530	संदर्भित किया गया है	पैरा 76 (xvi)
[1950] एस. सी. आर. 88	संदर्भित किया गया है	पैरा 78
[1951] एससीआर 621 उस पर	आधारित किया गया	पैरा 78
[1979] 3 एससीआर 1014	संदर्भित किया गया है	पैरा 78
[1989] 2 एससीआर 697	संदर्भित किया गया है	पैरा 78
[2010] 15 एससीआर 201	संदर्भित किया गया है	पैरा 85
[1964] 1 एससीआर 332	संदर्भित किया गया है	पैरा 86
[2014] 11 एससीआर 1009	संदर्भित किया गया है	पैरा 86
[1970] 3 एससीआर 530	संदर्भित किया गया है	पैरा 86
[1975] 3 एससीआर 946	संदर्भित किया गया है	पैरा 87
[1967] 2 एससीआर 525	संदर्भित किया गया है	पैरा 88
[1978] 2 एससीआर 621	संदर्भित किया गया है	पैरा 90

[1984] 2 एससीआर 67	संदर्भित किया गया है	पैरा 91
[1996] 1 एससीआर 278	संदर्भित किया गया है	पैरा 93
[1998] 1 पूरक एस. सी. आर. 723	संदर्भित किया गया है	पैरा 94
[2009] 13 एस. सी. आर. 989	संदर्भित किया गया है	पैरा 96
(2016) 10 एस. सी. सी. 726	संदर्भित किया गया है	पैरा 96
[1996] 10 सप्ली एस. सी. आर. 321	संदर्भित किया गया है	पैरा 97
[2004] 5 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 833	संदर्भित किया गया है	पैरा 98
[2014] 4 एस. सी. आर. 264	संदर्भित किया गया है	पैरा 99
[2006] 3 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 350	संदर्भित किया गया है	पैरा 99
[2011] 5 एस. सी.आर. 488	एस. सी. आर. 350	पैरा 99
[2018] 3 एस. सी. आर. 770	आधारित किया गया	पैरा 100
[1970] 3 एस. सी.आर. 505	पालन किया गया	पैरा 111
[1978] 2 एस. सी. आर. 1	पालन किया गया	पैरा 113
[1993] 3 एससीआर 802	आधारित किया गया	पैरा 99
[2018] 3 एस. सी. आर. 770	आधारित किया गया	पैरा 113
[1997] 6 पूरक।एस. सी. आर. 595	आधारित किया गया	पैरा 121
[2018] 7 एस. सी. आर. 1	आधारित किया गया	पैरा 125
[1954] एससीआर 786	संदर्भित किया गया	पैरा 146
[1962] पूरक एस. सी. आर. 989	आधारित किया गया	पैरा146

[1981] 2 एस. सी. आर. 408	आधारित किया गया	पैरा 146

<u>बी. वी. नागरत्ना, जे. के निर्णय में</u>

[1950] एससीआर 594	संदर्भित किया गया है	पैरा 12.6 (i)
[2010] 5 एससीआर 322	संदर्भित किया गया है	पैरा 12.6 (ii)
[2015] 5 एससीआर 963	संदर्भित किया गया है	पैरा 12.6 (iii)
[1962] 3 एससीआर 842	संदर्भित किया गया है	पैरा 15.1
[1992] 3 एससीआर 595	संदर्भित किया गया है	पैरा 15.1
[1962] पूरक एस. सी. आर. 769	संदर्भित किया गया है	पैरा 15.3 (ii)
[2006] 5 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 403	संदर्भित किया गया	पैरा 15.3 (iii)
[1960] 2 एस. सी. आर. 671	संदर्भित किया गया	पैरा 15.4 (i)
[1985] 2 एस. सी. आर. 287	संदर्भित किया गया	पैरा 15.4 (ii)
[1995] 2 सप्लीमेंट को एस. सी. आर. 467	संदर्भित किया गया	पैरा 15.4 (iii)
[1999] 3 एस. सी. आर. 875	संदर्भित किया गया	पैरा 15.5 (i)
[2014] 5 एस. सी. आर. 119	संदर्भित किया गया	पैरा 15.5 (ii)
[1982] 1 एस.सी. आर. 1184	संदर्भित किया गया	पैरा 15.5 (ii)
[2018] 11 एस. सी. आर. 57	संदर्भित किया गया	पैरा 15.5 (ii)
[2004] 1 एस. सी. आर. 1038	संदर्भित किया गया	पैरा 15.5 (ii)

[1986] 3 एस. सी. आर. 518	संदर्भित किया गया	पैरा 15.5 (ii)
[2014] 4 एस. सी. आर. 446	संदर्भित किया गया	पैरा 16.2
(2021) 1 एस. सी. सी.1	संदर्भित किया गया	पैरा 16.3
[1990] 3 एससीआर 697	संदर्भित किया गया	पैरा 21 (i)
[1990] 3 एससीआर 892	संदर्भित किया गया	पैरा 21 (i)
[2014] 12 एससीआर 259	संदर्भित किया गया	पैरा 22
[2005] 1 पूरक एस. सी. आर. 624	संदर्भित किया गया	पैरा 22
[2018] 8 एस. सी.आर. 1	आधारित किया गया	पैरा 24
[2016] 3 एससीआर 865	आधारित किया गया	पैरा 27.1
(1973) 4 एससीसी 225	आधारित किया गया	पैरा 36
[1976] पूरक एस. सी. आर. 172	संदर्भित किया गया	पैरा 37
[2005] 1 एस. सी. आर. 494	आधारित किया	पैरा 39
[1952] एससीआर 391	आधारित किया	पैरा 43 (ii) (ए)
[2005] 3 एससीआर 592	आधारित किया	पैरा 43 (ii) (b)
[2002] 3 एससीआर 100	संदर्भित किया	पैरा 43 (iii)
[2005] 1 एससीआर 913	संदर्भित किया	पैरा 43 (iii)
(2015) 16 एस. सी. सी. 530	संदर्भित किया	पैरा 43 (iii)
[2019] 5 एससीआर 452	संदर्भित किया	पैरा 43 (iii)
[2003] 4 पूरक एस. सी. आर. 618	संदर्भित किया	पैरा 43 (iii)

[1964] 5 एस. सी. आर. 86	संदर्भित किया गया है	पैरा 43 (iii)
[2005] 5 सप्लीमेंट को एस. सी. आर. 514	संदर्भित किया	पैरा43 (iii)
[2003] 4 सप्लीमेंट एस. सी. आर. 618	संदर्भित किया	पैरा 43(iii)
[1989] 3 एस. सी. आर. 997	आधारित किया गया	पैरा 44 (i)
[1996] 1 एस. सी. आर. 278	आधारित किया गया	पैरा 44 (ii)
[2014] 7 एस. सी. आर. 725	आधारित किया गया	पैरा 44 (iii)
(2016) 7 एस. सी. सी.498	आधारित किया गया	पैरा 44 (iv)
[1983] 3 एस. सी. आर. 508	आधारित किया गया	पैरा 51
[1984] 3 एस. सी.आर. 544	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
(1985) 4 एस. सी. सी. 677	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
(1989) 4 एस. सी.सी. 730	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
[1989] 2 पूरक एस. सी. सी. 373	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
(1991) 2 एस. सी. सी. 373	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
(1992)2 एस. सी. सी. 223	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
(1995) 2 एस. सी. सी. 369	संदर्भित किया गया है	पैरा51
[2000] 3 एस. सी. आर. 708	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
[2000] 1 एस. सी. आर.480	संदर्भित किया गया है	पैरा 51
[1983] 3 एस. सी. आर. 508	संदर्भित किया गया है	पैरा 54
[1984] 3 एस. सी. आर. 544	संदर्भित किया गया है	पैरा 54

ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 494 संदर्भित किया गया है पैरा 54

[1993] 2 एस. सी. सी. 581 संदर्भित किया गया है पैरा 55

[1996] 10 पूरक एस. सी.आर. 284 संदर्भित किया गया है पैरा 56

(2004) 6 एस. सी. सी. 233 संदर्भित किया गया है पैरा 56

[2000] 1 एस. सी.आर. 480 संदर्भित किया गया है पैरा 57

(1992) 2 एस. सी. सी. 223 संदर्भित किया गया है पैरा 59

2000] 3 एस. सी.आर. 708 संदर्भित किया गया है पैरा 60

[2011] 12 एस. सी. आर. 34 संदर्भित किया गया है पैरा 63

आपराधिक मूल/सिविल अपील क्षेत्राधिकार 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 113/ 2016

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत

विशेष अनुमति याचिका @(डायरी) संख्या 3462/2017

सुश्री अपराजिता सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता (ए. सी.) सुश्री उत्तरा बब्बर, सुश्री शिप्रा जैन, अधिवक्ता।

कालीश्वरम राज, सुश्री तुलसी के. राज, सुश्री राधालक्ष्मी आर., सुविदत्त एम. एस., सुश्री सोमलग्ना विश्वास, रिशेष सिकरवार, अमन खुल्लर, श्रीमती रेणु यादव, समीरजीत सिंह चौधरी, हितेश कुमार शर्मा, अखिलेश्वर झा, सुश्री मिरदुला सिंह चौहान, सुश्री संध्या सिंह, सुश्री मंजू जेटली, अधिवक्तागण याचिकाकर्ता के लिए।

आर. वेंकटरमानी, ए. जी., तुषार मेहता, एस. जी., सुखबीर सिंह, सुश्री माधवी दीवान, ए. एस. जी., आर. बाला, प्रदीप राय, सुश्री गरिमा प्रसाद, वरिष्ठ अधिवक्ता।, नमन टंडन, समरवीर सिंह, प्रेसेनजीत महापात्रा, रजत नायर, अंकुर तलवार, कानू अग्रवाल, अनिरुद्ध भट्ट, श्याम गोपाल, सुश्री मोनिका बेंजामिन, सुश्री सुजाता बागड़ी, सुश्री श्रद्धा देशमुख, उदय खन्ना, सुश्री अनु एस, मयंक पांडे, विनायक मेहरोत्रा, चितवन सिंघल, सुश्री सोनाली जैन, अभिषेक कुमार पांडे, अरविंद कुमार शर्मा, मुकेश कुमार मारोरिया, अजय विक्रम सिंह, सुश्री राजश्री राय,विनय कुमार, शशांक राय, अर्णव मित्तल, सुश्री रितिका गौर, सुश्री बंशिका गर्ग, विपिन भारती, अमरेंद्र कुमार सिंह, सुश्री प्रियंका सिंह, सुश्री प्रांजली गोयल, शरजील अहमद श्रीमती स्वरूपमा चतुर्वेदी, प्रदीप मिश्रा, अभिषेक, लक्ष्मी रमन सिंह अधिवक्तागण उत्तरदाताओं के लिए।

रंजीत बी. मरार, सुश्री लक्ष्मी एन. कैमल, अरुण पूमुली, संतोष एम. जोस, केशव राज नायर, आशु जैन, देवेश कुमार शर्म, प्रीता चंद्रन, अभिजीत श्रीकुमार, जोसेफ कुरियन, अधिवक्तागण आपत्तिकर्ता के लिए।

वी. रामसुब्रमण्यम, जे.

<u>प्रस्तावना</u>

ததய யனனறற சடறட பணற உளறள னறமற ஆறனதத நனவயனனறற சடறட வட

तमिल संगम युग (31, ईसा पूर्व) के तमिल कवि दार्शनिक तिरुवल्लुवर ने अपनी रचना "तिरुक्कुरल" में मधुर वाणी के महत्व पर जोर देते हुए कहा है कि जलने से

हुआ घाव तो ठीक हो सकता है, लेकिन आक्रामक व्यवहार से हुआ घाव नहीं भर सकता।

जी.यू. पोप द्वारा इस श्लोक का अंग्रेजी में अनुवाद इस प्रकार है:

"In flesh by fire inflamed, nature may thoroughly heal the sore; In soul by tongue inflamed, the ulcer healeth never more." ("प्रकृति शरीर में आग की ज्वाला से घाव को पूरी तरह से ठीक कर सकती है; आत्मा में जीभ की ज्वाला से घाव कभी ठीक नहीं होता।")

क्या बोलना चाहिए और कैसे बोलना चाहिए, एक संस्कृत ग्रंथ में इस बारे में सलाह दी गई है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान् न ब्रूयात् सत्यं प्रियम |

प्रियं च नानृतं ब्रुयाद् एष धर्मः सनातनः ||

इस श्लोक का अर्थ है: "जो सत्य है वही बोलो; जो अच्छा लगे वही बोलो; जो बात अप्रिय हो, चाहे वह सत्य ही क्यों न हो, मत बोलो; और जो बात मनभावनी हो, उसे झूठ मत बोलो; यही सनातन व्यवस्था है।"

"नीतिवचन की पुस्तक" (16:24) कहती है:

"सुखद शब्द मधुकोश की तरह होते हैं, जो आत्मा को मीठे लगते हैं और हड्डियों को आराम पहुँचाते हैं"

हालाँकि सभी धर्मों के धार्मिक ग्रंथ और सभी भाषाओं और भौगोलिक स्थानों के प्राचीन साहित्य में ऐसे नैतिक आदेश भरे पड़े हैं जो मधुर अभिव्यक्ति (स्वतंत्र

अभिव्यक्ति से ज़्यादा) के महत्व पर ज़ोर देते हैं, लेकिन इतिहास बताता है कि मानवता ने लगातार उन आदेशों की अवहेलना की है। संविधान पीठ के समक्ष वर्तमान संदर्भ दो माननीय व्यक्तियों के ऐसे व्यवहार का परिणाम है, जिन्होंने दो अलग-अलग राज्यों में मंत्री पद संभाला था।

I. विचारार्थ तैयार किए गए प्रश्न

1. दिनांक 05.10.2017 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ ने रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 113/2016 को संविधान पीठ के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया, जिसके बाद एमिकस क्यूरी के रूप में नियुक्त दो विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया कि रिट याचिका में विचार के लिए उठने वाले प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण थे। यद्यपि पीठ ने दिनांक 05.10.2017 के अपने आदेश में विद्वान एमिकस क्यूरी द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों को दर्ज किया, लेकिन तीन सदस्यीय पीठ ने कोई विशेष प्रश्न नहीं बनाया, बल्कि मामले को संविधान पीठ के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

2. इस समय, केरल उच्च न्यायालय के एक निर्णय से उत्पन्न एक विशेष अनुमति याचिका (डायरी) संख्या 34629/2017 उसी तीन सदस्यीय पीठ के समक्ष आई। यह पाते हुए कि उक्त एसएलपी में उठाए गए प्रश्न भी समान थे, इस न्यायालय ने 10.11.2017 को एक आदेश पारित किया, जिसमें उक्त एसएलपी को भी रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 113/2016 के साथ संलग्न करने का निर्देश दिया गया।

3. इसके बाद, संविधान पीठ ने दिनांक 24.10.2019 के एक आदेश द्वारा, इस न्यायालय द्वारा तय किए जाने वाले निम्नलिखित पाँच प्रश्न तैयार किए:

"1) क्या अनुच्छेद 19 (2) में निर्दिष्ट आधार जिनके संबंध में कानून द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, पूर्ण हैं, या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं?

2) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा सकता है ?

3) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो ?

4) क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया कोई बयान, जो राज्य के किसी भी मामले से संबंधित हो या राज्य की सुरक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?

5) क्या किसी मंत्री का एक बयान, जो संविधान के भाग तीन के तहत एक नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का

उल्लंघन करता है और क्या यह 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्रवाई योग्य है?"

II. संक्षिप्त पृष्ठभूमि

4. तथ्यात्मक मैट्रिक्स के संक्षिप्त संदर्भ के बिना, हमारे द्वारा उत्तर दिए जाने वाले प्रश्न अमूर्त लग सकते हैं। इसलिए, अब हम इन दोनों मामलों में पृष्ठभूमि तथ्यों का संदर्भ लेंगे।

5. संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 113/2016 दायर की गई थी जिसमें कई राहतों की मांग की गई थी, जिसमें धारा 154 सीआरपीसी के अंतर्गत एफआईआर संख्या 0838/2016 में आपराधिक शिकायत की जांच की निगरानी, यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 (संक्षेप में, ' पोक्सो अधिनियम') के प्रासंगिक प्रावधानों के साथ धारा 395 , 397 और 376 डी के अंतर्गत अपराधों के लिए और राज्य के बाहर मामले की सुनवाई के लिए और पीड़ितों की शील को ठेस पहुंचाने वाले बयान देने के लिए यूपी सरकार के तत्कालीन शहरी विकास मंत्री के विरूद्ध शिकायत दर्ज करने के लिए भी। रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 113/2016 में याचिकाकर्ता का मामला संक्षेप में यह था कि 29.7.2016 को जब वह और उसके परिवार के सदस्य एक रिश्तेदार के निधन समारोह में शामिल होने के लिए राष्ट्रीय राजमार्ग 91 पर नोएडा से शाहजहांपुर जा रहे थे, तो उन्हें 5 लोगों के एक गिरोह ने घेर लिया। रिट याचिकाकर्ता के अनुसार, गिरोह ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के पास मौजूद नकदी और गहने छीन लिए और उन्होंने याचिकाकर्ता

की पत्नी और नाबालिग बेटी के साथ सामूहिक बलात्कार भी किया। हालाँकि 30.7.2016 को विभिन्न अपराधों के लिए एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी और समाचार पत्रों और टेलीविजन चैनलों ने इस भयावह घटना की रिपोर्ट की थी, लेकिन तत्कालीन यूपी सरकार के शहरी विकास मंत्री ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और इस घटना को एक राजनीतिक साजिश करार दिया। इसलिए, याचिकाकर्ता ने आशंका जताई कि निष्पक्ष जांच नहीं हो सकती है। याचिकाकर्ता का दावा है कि वह भी मंत्री द्वारा दिए गए गैरजिम्मेदाराना कथन से आहत है और इसलिए वह उपरोक्त अनुतोष के लिए उक्त रिट याचिका दायर करने के लिए बाध्य हुआ।

6. जहां तक विशेष अनुमति याचिका (डायरी) संख्या 34629/2017 का प्रश्न है, यह केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दो रिट याचिकाओं को खारिज करने के फैसले से उत्पन्न हुई है। जनहित में रिट याचिकाएं इस आधार पर दायर की गई थीं कि केरल राज्य के तत्कालीन बिजली मंत्री ने फरवरी 2016, 7.4.2017 और 22.4.2017 को कुछ बयान जारी किए थे। ये बयान महिलाओं के लिए बेहद अपमानजनक थे। हालांकि जनहित याचिका में याचिकाकर्ताओं के अनुसार , जिस राजनीतिक दल से मंत्री संबंधित थे, उसने सार्वजनिक रूप से निंदा की, लेकिन मंत्री के विरूद्धआधिकारिक तौर पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। इसलिए, याचिकाकर्ता ने एक रिट याचिका में अन्य बातों के अलावा मुख्यमंत्री को संविधान द्वारा निर्धारित पद की शपथ लेने वाले मंत्रियों के लिए आचार संहिता बनाने का निर्देश देने की मांग की, साथ ही मुख्यमंत्री को यह भी निर्देश देने की मांग की कि अगर कोई भी मंत्री शपथ पर खरा नहीं उतरता है तो उसके विरूद्ध

उचित कार्यवाहीकी जाए। दूसरी रिट याचिका में मंत्री के बयानों के लिए उनके विरूद्ध कार्यवाही करने हेतु संबंधित प्राधिकारियों को निर्देश देने की मांग की गई थी।

7. दोनों रिट याचिकाओं को केरल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि जनहित रिट याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना नैतिक मूल्यों के दायरे में थी और यह सवाल कि क्या मुख्यमंत्री को अपने मंत्रिमंडल के मंत्रियों के लिए आचार संहिता बनानी चाहिए या नहीं, न्यायालय के निर्णय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। इसलिए, उक्त सामान्य आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता ने उन जनहित रिट याचिकाओं में से एक में विशेष अनुमति याचिका (डायरी) संख्या 34629 7/2017 के साथ पेश किया है। चूंकि विशेष अनुमति याचिका में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए प्रश्न रिट याचिका में उठाए गए प्रश्नों समान हो गए थे, इसलिए उन्हें एक साथ जोड़ दिया गया है।

III. विवाद

8. हमने भारत के विद्वान अटॉर्नी जनरल श्री आर. वेंकटरमानी, न्यायमित्र के रूप में हमारी सहायता करने वाली विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अपराजिता सिंह, विशेष अनुमति याचिका में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री कालीश्वरम राज और हस्तक्षेप/पक्षकार बनाने की मांग करने वाले व्यक्ति की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता श्री रंजीत बी. मरार को सुना है।

III.A. भारत के विद्वान अटॉर्नी जनरल द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक नोट:

9. भारत के विद्वान अटॉर्नी जनरल ने एक प्रारंभिक नोट प्रस्तुत किया जिसमें प्रश्नवार उनकी प्रस्तुतियाँ शामिल थीं, जिन्हें निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

प्रश्न सं.1

(i) प्रश्न संख्या 1 पर उनका कहना है कि संवैधानिक सिद्धांत के अनुसार, किसी भी मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध लगाने के लिए मानदंडों या मानदंडों में कोई भी जोड़, परिवर्तन या बदलाव विधायी प्रक्रिया के माध्यम से ही किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 19 के खंड (2) और (6) में पूर्व से वर्णित प्रतिबंधों को संपूर्ण माना जाना चाहिए। इसलिए, न्यायालय अन्य मौलिक अधिकार जैसे कि अनुच्छेद 21 में दिए गए है, का आह्वान करने की आड़ में अनुच्छेद 19(2) में नहीं पाए जाने वाले प्रतिबंध नहीं लगा सकता। संवैधानिक योजना के अंतर्गत, दो अलग-अलग मौलिक अधिकारों या स्वतंत्रताओं के बीच कोई विरोधाभास नहीं हो सकता।

प्रश्न सं. 2

(ii) संविधान स्वयं राज्य या उसके साधनों के विरुद्ध मौलिक अधिकारों के दावों की योजना निर्धारित करता है और इसने राज्य या उसके साधनों के अलावा अन्य व्यक्तियों द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के संबंध में भी अधिनियम बनाए हैं। किसी भी विषय या मामले को जोड़ने या सम्मिलित करने का प्रस्ताव, जिसके संबंध में राज्य के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध दावे किए जा सकते हैं, संवैधानिक परिवर्तन के बराबर होगा। अमेरिकी संवैधानिक कानून में प्रतिपादित और लागू राज्यकार्यवाहीकी अवधारणा और 42 यूएस कोड § 1983 के अधिनियमन को कानूनी कार्यवाही से सरकारी और

आधिकारिक उन्मुक्तियों से निपटने वाले मामलों की अजीब स्थिति के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(2) , 17 , 23 और 24 में विशिष्ट प्रावधानों के मद्देनजर , यूएसए में प्राप्त कानून का सहारा लेने की सख्त आवश्यकता नहीं हो सकती है। राज्य के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध दावे, चाहे अधिनियमित कानून के माध्यम से हों या अन्यथा, संवैधानिक रूप से अधिनियमित विषयों या मामलों तक ही सीमित होने चाहिए।

<u>प्रश्न सं. 3</u>

(iii) ऐसे नागरिक के लिए पर्याप्त संवैधानिक और कानूनी उपचार उपलब्ध हैं जिनकी स्वतंत्रता को किसी व्यक्ति द्वारा खतरा है। उपलब्ध संवैधानिक और कानूनी उपचार और सुरक्षा के अलावा, अनुच्छेद 21 के अंतर्गत नागरिक के अधिकार की सकारात्मक रूप से रक्षा करने के लिए कोई अन्य अतिरिक्त कर्तव्य नहीं हो सकता है। मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामलों को अनुच्छेद 32 और 226 के अंतर्गत निपटाया जाता है ।

<u>प्रश्न सं. 4</u>

(iv) मंत्री जैसे लोक सेवकों का आचरण, यदि वह सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन या कार्यालय के कर्तव्यों से संबंधित है,कानून की जांच के अधीन है। यदि पद की आड़ में कदाचार किया जाता है तो अभियोजन की मंजूरी दी जा सकती है। मंत्री द्वारा दिए गए बयानों सहित ऐसे कदाचार को सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांतों से नहीं जोड़ा जा सकता है। प्रतिनिधिक दायित्व की अवधारणा स्थितियों पर लागू नहीं हो सकती है और कोई भी सरकार कभी भी मंत्री के ऐसे कदाचार या कदाचार के लिए प्रतिनिधिक रूप से

उत्तरदायी नहीं हो सकती है जो कानूनी उपायों के उद्देश्य से वैधानिक कर्तव्य या वैधानिक उल्लंघनों से संबंधित न हो। मंत्री के कदाचार, जिनका सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन से कोई लेना-देना नहीं है और जो राज्य के मामलों से संबंधित नहीं हैं, उन्हें व्यक्तिगत उल्लंघन और व्यक्तिगत गलत कृत्य के रूप में माना जाएगा। संक्षेप में, आवश्यक सीमाओं के बिना ऐसी स्थितियों या उदाहरणों के लिए राज्य का दायित्व समस्याग्रस्त हो सकता है। पोस्ट **मेसर्स कस्तूरी लाल रलिया राम जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** और **रुदुल साह बनाम बिहार राज्य** के बाद , इस न्यायालय ने सरकारी कर्मचारियों या अधिकारियों के कदाचार और उसके परिणामस्वरूप संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन को मुआवज़ा देने का आधार माना है। हालाँकि, जहाँ तक वैचारिक आधार का सवाल है, स्पष्टता और निश्चितता की आवश्यकता है। इसे अधिनियमित कानून के माध्यम से बेहतर तरीके से प्राप्त किया जा सकता है।

<u>प्रश्न संख्या 5</u>

(v) जबकि संवैधानिक अपकृत्य के सिद्धांत की अवधारणा नीलाबती बेहरा (श्रीमती) उर्फ ललिता बेहरा (सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता समिति के माध्यम से) बनाम उड़ीसा राज्य में की गई है, और तत्पश्चात संवैधानिक उपचारों के संबंध में प्रावधान करने के लिए लागू किया गया है, यह मामला सर्वोपरि रूप से एक उचित कानूनी ढांचे का हकदार है ताकि मामले को खुला या अस्पष्ट छोड़े बिना सिद्धांतों और प्रक्रियाओं को सुसंगत रूप से निर्धारित किया जा सके।

III.बी. <u>एमिकस द्वारा प्रस्तुत किए गए नोट्स</u>

10. सुश्री अपराजिता सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और एमिकस क्यूरी ने प्रश्नवार लिखित नोट प्रस्तुत किया, जिसका सारांश इस प्रकार है:

<u>प्रश्न संख्या 1</u>

(i) अनुच्छेद 19(1)(a) के अंतर्गत वाक की स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत स्पष्ट रूप से परिभाषित प्रतिबंधों के अधीन है । इसलिए, अनुच्छेद 19(1)(a) के अंतर्गत अधिकार को सीमित करने का प्रयास करने वाले किसी भी कानून को अनिवार्य रूप से अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत प्रदत्त सीमाओं के भीतर आना होगा । जब भी दो मौलिक अधिकार प्रतिस्पर्धा करते हैं, तो न्यायालय दोनों के सार्थक प्रयोग की अनुमति देने के लिए दोनों में संतुलन बनाएगा। यह पहेली नई नहीं है, क्योंकि अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 19(1)(a) के अंतर्गत अधिकारों की कई बार व्याख्या और संतुलन किया जा चुका है। उदाहरण के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 को ही लें । यह अधिनियम अनुच्छेद 19(1)(a) के अंतर्गत नागरिक के जानने के अधिकार को निष्पक्ष जांच के अधिकार और अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निजता के अधिकार के साथ संतुलित करता है। इस न्यायालय ने **थलप्पलम सर्विस कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम केरल राज्य (2013) 16** SCC **82** में इस सावधानीपूर्वक संतुलन को समझाया था । **आर. राजगोपाल उर्फ आर.आर. गोपाल बनाम तमिलनाडु राज्य (1994) 6** SCC **632** में इस न्यायालय का निर्णय अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंधों (मानहानि के रूप में) को कम करने का एक और उदाहरण है , जो व्यापक

सार्वजनिक हित में सार्वजनिक अधिकारियों और सार्वजनिक हस्तियों पर लागू होता है। फिर से, पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) बनाम भारत संघ में, चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के जीवनसाथी के निजता के अधिकार को अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत नागरिकों के जानने के अधिकार के अधीनस्थ घोषित किया गया था। **जमुना प्रसाद मुखारिया बनाम 4 (2013) 16 एससीसी 82 5 (1994) 6 एससीसी 632 6 (2003) 4 एससीसी 399 लच्छी राम में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123(5) और 124(5)** (जैसा कि ततसमय प्रवर्तन में था) को चुनौती इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि चुनाव लड़ रहे उम्मीदवार के विरूद्ध झूठे व्यक्तिगत हमले वाक् की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन नहीं है। लेकिन जब निजी नागरिकों की बात आती है जो सार्वजनिक पदाधिकारी नहीं हैं, तो अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निजता के अधिकार को अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत जानने के अधिकार से अधिक महत्वपूर्ण माना गया। यह राम जेठमलानी बनाम भारत संघ के मामले में था, जो खाताधारकों की निजता के अधिकार से संबंधित था। इस न्यायालय ने अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत मीडिया के अधिकार और अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार के बीच संतुलन बनाया। यह तर्क कि अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत स्वतंत्र वाक् का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रतिष्ठा के अधिकार से अधिक बड़ा अधिकार था, इस न्यायालय ने **सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ**, **विधि मंत्रालय (2016) 7 एससीसी 221** में खारिज कर दिया था जिसमें धारा 499 आईपीसी को चुनौती दी थी। वाक् की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रदूषण मुक्त जीवन के अधिकार के साथ ध्वनि प्रदूषण में संतुलित किया

गया, तथा **आशा रंजन बनाम बिहार राज्य (2017) 4 एससीसी 397** में अभियुक्त के निष्पक्ष परीक्षण के अधिकार को पीड़ित के निष्पक्ष परीक्षण के अधिकार के साथ संतुलित किया गया ।

प्रश्न . 2

(ii) कुछ मौलिक अधिकार हैं जो विशेष रूप से गैर-राज्य अभिकर्ता के विरूद्ध दिए गए हैं। अनुच्छेद 15(2)(ए) - दुकानों, सार्वजनिक रेस्तरां, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों तक पहुँच, अनुच्छेद 17 - अस्पृश्यता, अनुच्छेद 23 - बलात् श्रम और अनुच्छेद 24 कारखानों, खदानों आदि में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध, ऐसे अधिकार हैं जो निजी नागरिकों के विरूद्ध भी लागू किए जा सकते हैं। अनुच्छेद 21 के कुछ पहलू जैसे स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार निजी पक्षों के विरूद्धभी लागू किया गया है। राज्य का यह संवैधानिक कर्तव्य भी है कि वह सुनिश्चित करे कि उसके नागरिकों के अधिकारों का गैर-राज्य अभिकर्ताओं द्वारा भी उल्लंघन न हो और ऐसा वातावरण सुनिश्चित करे जहाँ प्रत्येक अधिकार को अनुचित अतिक्रमण के डर के बिना उपभोग किया जा सके। **पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भरत संघ (1982) 3 एससीसी 235** में, राज्य के इस तर्क को खारिज करते हुए कि संविधान के अनुच्छेद 24 और संबंधित कानूनों के आदेश का पालन करना निजी पक्ष यानी ठेकेदार का दायित्व है , यह स्पष्ट किया गया कि मौलिक अधिकारों की रक्षा करने का प्राथमिक दायित्व प्रभावी कानून के अभाव में भी राज्य का है। **बोधिसत्व गौतम बनाम शुभ्रा चक्रवर्ती (1996) 1 एससी 490** में अंतरिम प्रतिकर यह मानते हुए दिया गया था कि अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मौलिक

अधिकारों को निजी निकायों और व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है। गैर-राज्य अभिकर्ताओं के विरूद्ध भी सार्वजनिक कानून उपाय का बार-बार सहारा लिया गया है, जब उनके कार्यों ने अन्य नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया है। अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार के उल्लंघन के लिए गैर-राज्य अभिकर्ताओं के विरूद्ध क्षतिपूर्ति का पुरस्कार **एम.सी. मेहता बनाम कमल नाथ (2000) 6 एससीसी 213** में निर्धारित किया गया था । इसी तरह, **न्यायमूर्ति के.एस पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017) 10 एससीसी 1** में बहुमत और सहमति वाले अभिमत ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए राज्य और गैर-राज्य अभिकर्ताओं के कर्तव्य पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बताया कि गैर-राज्य अभिकर्ताओं के दावों की मान्यता और प्रवर्तन के लिए विधायी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। हालाँकि, जब अनुच्छेद 19 की बात आती है, तो **पी.डी. शमदासानी बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड 1952 एससीआर 391** में संविधान पीठ ने इसे निजी व्यक्तियों के विरूद्ध लागू नहीं माना है।

<u>प्रश्न सं. 3</u>

(iii) संविधान में निहित नागरिकों के मौलिक अधिकार न केवल राज्य के विरूद्ध नकारात्मक अधिकार हैं, बल्कि उन अधिकारों की रक्षा के लिए राज्य पर एक सकारात्मक दायित्व का भी गठन करते हैं। **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकार संरक्षण समिति, पश्चिम बंगाल (2010) 3 एससीसी 571** में संविधान पीठ ने संबंधित राज्य की सहमति के बिना सीबीआई को जांच स्थानांतरित करने की संवैधानिक

न्यायालय की शक्ति को बरकरार रखते हुए, निष्पक्ष जांच करने के लिए राज्य के कर्तव्य पर जोर दिया, जो अनुच्छेद 21 के अंतर्गत पीड़ित का मौलिक अधिकार है। **न्यायमूर्ति के.एस पुट्टस्वामी** में बहुमत के फैसले ने गोपनीयता के अधिकार के सार्थक प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए राज्य के सकारात्मक दायित्व को परिभाषित किया। **एस. रंगराजन बनाम पी. जगजीवन राम (1989) 2 एससीसी 574** में , इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि राज्य नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने में अपनी असमर्थता का तर्क नहीं दे सकता। **भारत संघ बनाम के.एम शंकरप्पा (2020) 12 एससीसी 286** में, सिनेमैटोग्राफ अधिनियम, 1952 की धारा 6(1) जिसने केंद्र सरकार को अधिनियम के अंतर्गत अर्ध न्यायिक न्यायाधिकरण के निर्णय की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान की, का कानून और व्यवस्था के आधार पर बचाव करने का प्रयास किया गया था। यह तर्क यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि कानून और व्यवस्था सुनिश्चित करना सरकार का कर्तव्य है। **इंडिबली क्रिएटिव प्राइवेट लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल सरकार (2020) 12 एससीसी 436** में , अनुच्छेद 19(1) (ए) के अंतर्गत नकारात्मक अंकुशऔर सकारात्मक दायित्व को समझाया गया है। **पंडित परमानंद कटारा बनाम भारत संघ (1989) 4 एससीसी 286** में , यह माना गया कि सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर भी अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य के संवैधानिक दायित्व को पूरा करने के लिए बाध्य हैं।

प्रश्न संख्या 4

(iv) मंत्री राज्य का पदाधिकारी होने के नाते अपनी आधिकारिक क्षमता में कार्य करते समय राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, मंत्री द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कोई भी उल्लंघन, राज्य के कारण होगा। राज्य का अनुच्छेद 21 के अंतर्गत नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने का एक सकारात्मक दायित्व भी है , चाहे उल्लंघन उसके अपने पदाधिकारियों द्वारा हो या किसी निजी व्यक्ति द्वारा। यह सुझाव देना निरर्थक होगा कि जब राज्य किसी निजी नागरिक को अन्य नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने से प्रतिबंधित करने के दायित्व के अंतर्गत है, तो उसका अपना मंत्री दंड से मुक्त होकर ऐसा कर सकता है। हालांकि, उल्लंघन के तथ्य को किसी दिए गए मामले के तथ्यों के आधार पर स्थापित करने की आवश्यकता होगी। इसमें इस तरह के सवालों की विस्तृत जांच शामिल होगी *(क)* क्या मंत्री द्वारा बयान उनकी व्यक्तिगत या आधिकारिक क्षमता में दिया गया था; *(ख)* क्या बयान सार्वजनिक या निजी मुद्दे पर दिया गया था; **अमीश देवगन बनाम भारत संघ (2021) 1 एससीसी 1** में, नफ़रत भरे भाषण से निपटते समय, सरकारी अधिकारी जैसे "*प्रभावशाली व्यक्ति*" के भाषण के प्रभाव को समझाया गया था। **महाराष्ट्र राज्य बनाम सारंग धरसिंह शिवदाससिंह चव्हाण (2011) 1 एससीसी 577** , एक मुख्यमंत्री द्वारा जांच में सीधे हस्तक्षेप का एक स्पष्ट उदाहरण प्रदान करता है। न्यायालय ने मुख्यमंत्री की कार्यवाही को "पूरी तरह से असंवैधानिक" और संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ के विपरीत माना और राज्य पर जुर्माना लगाया। सहमति वाला अभिमत इस बात पर जोर देता है कि पद की शपथ संविधान के अंतर्गत मंत्री पर क्या जिम्मेदारी

डालती है। **जयपुर विकास प्राधिकरण, जयपुर बनाम दौलत मल जैन (1997) 1 एससीसी 35** में, एक मंत्री द्वारा सार्वजनिक पद के दुरुपयोग से जुड़े एक मामले में, इस न्यायालय ने संविधान के अंतर्गत मंत्री कार्यालय की जिम्मेदारी और दायित्व के बारे में विस्तार से बताया। संविधान के अंतर्गत पद की शपथ के महत्व पर संविधान पीठ ने **मनोज नरूला बनाम भारत संघ (2014) 9 एससीसी 1** में भी जोर दिया था । हालांकि, **आर.साई भारती बनाम जे. जयललिता (2004) 2 एससीसी 9** मामले में मंत्री की आचार संहिता को न्यायलय में लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें कोई वैधानिक बल नहीं है। यह तर्क दिया जा सकता है कि मंत्री व्यक्तिगत रूप से अनुच्छेद 75(4) के अंतर्गत भारत के संविधान के प्रति सच्ची आस्था और निष्ठा रखने के लिए अपने पद की शपथ से बंधे हैं । संविधान के अनुच्छेद 164(3) के अनुसार , संविधान मंत्री पर संवैधानिक पदाधिकारी के रूप में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने का गंभीर दायित्व डालता है। मंत्रियों (संघ और राज्य दोनों के लिए) के लिए आचार संहिता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "यह संहिता संविधान के प्रावधानों , जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुपालन के अतिरिक्त है।" इसलिए, एक संवैधानिक पदाधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह राज्य के इस संवैधानिक दायित्व के अनुरूप कार्य करे।

<u>प्रश्न संख्या 5</u>

(v) राज्य अपने पदाधिकारियों के माध्यम से कार्य करता है। इसलिए, किसी मंत्री का आधिकारिक कार्य जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, वह राज्य को संवैधानिक अपकृत्य के अंतर्गत उत्तरदायी बनाता है। अपने सेवक के अपकृत्यों

के लिए राज्य की संप्रभु प्रतिरक्षा का सिद्धांत, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में लागू नहीं माना गया है। संवैधानिक अपकृत्य के अंतर्गत राज्य के दायित्व के सिद्धांत को **नीलाबती बेहरा** में प्रतिपादित किया गया था। **कॉमन कॉज, ए रजिस्टर्ड सोसाइटी बनाम भरत संघ** में, एक सार्वजनिक पदाधिकारी के मामले में स्थिति को स्पष्ट किया गया था।

III.C. एसएलपी याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री कालीस्वरम राज की लिखित प्रस्तुतियाँ

11. विशेष अनुमति याचिका में याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कालीश्वरम राज ने एक विस्तृत नोट प्रस्तुत किया। यह नोट कई अध्यायों में विभाजित है, जिसमें वाक् की स्वतंत्रता की प्रकृति और सीमा, उस पर प्रतिबंध, मौलिक अधिकारों की क्षैतिजता, संवैधानिक अधिकार और संवैधानिक मूल्य, मंत्रियों द्वारा दिए गए बयान और सामूहिक जिम्मेदारी, विनियमन का सबसे अच्छा तरीका के रूप में स्व-नियमन, घृणास्पद भाषण संरक्षित भाषण नहीं है और आगे बढने का रास्ता शामिल है। इस नोट की अंर्तवस्तु का सारांश इस प्रकार है:

(i) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वतंत्र भाषण के संवैधानिक जनादेश को असंवैधानिक प्रतिबंध लगाए बिना संरक्षित किया जाना चाहिए। यह अधिकार राजनीतिक हस्तियों सहित सभी के लिए उपलब्ध है।

(ii) लेकिन ऐसे अधिकार को कायम रखते हुए भी, बेहतर जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए मंत्रियों आदि के लिए स्वैच्छिक आचार संहिता तैयार करने का प्रयास किया जाना चाहिए;

(iii) राज्य के तंत्र का उपयोग करके सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दुरुपयोग पर संवैधानिक जांच के रूप में कार्य करने के लिए लोकपाल जैसे उपकरण को विकसित करने की अत्यंत आवश्यकता है;

(iv) अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत अधिकार अनुच्छेद 19(2) में स्पष्ट रूप से इंगित प्रतिबंधों द्वारा सीमित है , जिसके अंतर्गत प्रतिबंध उचित होने चाहिए और राज्य द्वारा कानून द्वारा प्रदान किए जाने चाहिए। इसलिए यह न्यायालय किसी व्याख्यात्मक अभ्यास या अन्यथा द्वारा कोई अतिरिक्त प्रतिबंध नहीं लगा सकता है;

(v) यह कहना बहुत दूर की बात है कि यदि कोई व्यक्ति यह बयान देता है कि मामला राजनीतिक साजिश से उत्पन्न हुआ था तो अनुच्छेद 21 के अंतर्गत पीड़ित के अधिकार का उल्लंघन होता है। अतः अनुच्छेद 21 के साथ वास्तव में किसी अन्य अधिकार का कोई विरोधाभास नहीं है ;

(vi) अनुच्छेद 25 के विपरीत जो उसके अंतर्गत दिए गए अधिकार को लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन बनाता है, अनुच्छेद 19(1)(ए) में ऐसे प्रतिबंध नहीं हैं। जैसा कि इस न्यायालय ने ***सकल पेपर्स (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ*** में माना है, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को केवल राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शालीनता या सदाचार या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या किसी अपराध के लिए उकसावे के संबंध में ही प्रतिबंधित किया जा सकता है। आम जनता के हित में इसे सीमित नहीं किया जा सकता, जैसा कि व्यवसाय करने की स्वतंत्रता के मामले में होता है;

(vii) गंभीर अपराधों पर सार्वजनिक हस्तियों जैसे राजनेताओं के भाषण पर प्रतिबंध लगाने से वाक् की स्वतंत्रता पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। ऐसी आलोचना जो सच्ची साजिशों और न्याय की सच्ची विफलता को उजागर करती है, लोकतंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है;

(viii) जहाँ तक गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन का संबंध है, ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण क्षैतिज अनुप्रयोग की अवधारणा को रास्ता दे रहा है। ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण एवं ऐसी स्थिति को दर्शाता है, जहां प्रवर्तनीयता केवल सरकार के खिलाफ है न कि निजी तंत्रों के खिलाफ। लेकिन राष्ट्र की स्थिति धीरे-धीरे अहस्तक्षेपकारी शासन से कल्याणकारी शासन की ओर बढ़ने के साथ राज्य की भूमिका भी लगातार बढ़ रही है, जो इस परिवर्तन को उचित ठहराती है।

(ix) जबकि दक्षिण अफ्रीकी संविधान ने 1996 के अंतिम संविधान के अधिकारों के विधेयक की धारा 9 (4) में प्रावधान करके एक क्षैतिज अनुप्रयोग को अपनाया है कि कोई भी व्यक्ति उप-धारा (3) के संदर्भ में एक या अधिक आधारों पर किसी के विरूद्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भेदभाव नहीं कर सकता है, जो राज्य को एकजुट करने वाले आधारों को निर्धारित करता है, न्यायपालिका ने स्वयं आयरलैंड से एक सीधा क्षैतिज प्रभाव अपनाया है, जिसे कि **जॉन मेस्केल बनाम कोरस इओम्पायर इरैन 1973 आ॰इ॰आर॰ 121** तथा **मुर्तुघ प्रापर्टीस लिमिटेड प्रति क्लीयर्स 1972 आ॰इ॰आर॰ 330** के निर्णयों से देखा जा सकता है।जॉन मेस्केल (सर्वोच्च न्यायालय) में, आयरिश सर्वोच्च न्यायालय ने उस नियोक्ता के खिलाफ हर्जाना दिया, जिसने एक

उचित नोटिस देने के बाद किसी विशेष संघ में शामिल नहीं होने के लिए कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया था, जिसने एक विशेष संघ में शामिल नहीं होने के लिए राजी करने का एक उचित नोटिस देने के बाद कर्मचारी को बर्खास्त कर दिया था। उसे मनाने के लिए। मुर्तुघ प्रॉपर्टीस लिमिटेड (सर्वोच्च न्यायालय) में उच्च न्यायालय ने एक निजी नियोक्ता के खिलाफ लिंग के आधार पर किसी भी भेदभाव के बिना आजीविका कमाने के अधिकार को मान्यता दी एवं लागू किया। कनाडा एवं जर्मनी जैसे देशों ने अप्रत्यक्ष क्षैतिज अनुप्रयोग विकसित किया है, जिसका अर्थ है कि अधिकार विधि एवं विधान को विनियमित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप नागरिकों के आचरण को विनियमित करते हैं।

(x) भारतीय संदर्भ में, प्रत्यक्ष क्षैतिज प्रभाव का सीमित अनुप्रयोग है, जैसा कि अनुच्छेद 15 (2), 17 एवं 24 से देखा जा सकता है;

(xi) क्षैतिजता के प्रतिमान मामलों को सामान्य मामलों से अलग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यू. एस. उच्चतम न्यायालय ने **शेली बनाम क्रेमर 334 अमेरिका 1 (1948)** में अफ्रीकी-अमेरिकियों को पड़ोस में घरों की बिक्री पर प्रतिबंध लगाने वाले एक अनुबंध में निहित एक वचन को लागू नहीं किया, क्योंकि वे कानूनों के तहत समान सुरक्षा से इनकार करने का प्रभाव रखते हैं। जर्मनी के संघीय संवैधानिक न्यायालय ने **लूथ (1958) बीवीईआरएफजीई 7 198,** में इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया, जहां यहूदी-विरोधी नाजी प्रचार पर काम करने वाले एक व्यक्ति द्वारा निर्देशित

फिल्म के बहिष्कार के आह्वान को चुनौती दी गई थी। जर्मन न्यायालय ने माना कि मूल्यों का एक वस्तुनिष्ठ क्रम है जो कानून के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करना चाहिए;

(xii) इस न्यायालय द्वारा बार-बार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति न केवल सरकार एवं उसके उपकरणों के खिलाफ उपलब्ध है, बल्कि "किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण" के खिलाफ भी उपलब्ध है। इस संबंध में **प्रागा टूल्स कॉर्पोरेशन बनाम श्री सी. ए. इमान्युअल (1969) 1 एस०सी०सी० 585 एवं एंडी मुक्त सद्गुरु श्री मुक्ताजी वंदास स्वामी सुवर्ण जयंती महोत्सव स्मारक न्यास बनाम वी. आर. रुदानी, (1989) 2 एस०सी०सी० 691 नामक दो निर्णयों का संदर्भ दिया जा सकता है।**

(xiii) ऐसे कई उदाहरण हैं जहां इस न्यायालय ने गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ अनुच्छेद 32 के तहत रिट जारी किए हैं। मोटे तौर पर वे मामले दो श्रेणियों में आते हैं, अर्थात् (i) सार्वजनिक कर्तव्यों/कार्यों का पालन करने वाले निजी खिलाड़ी; एवं (ii) नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाली वैधानिक गतिविधियों का प्रदर्शन करने वाले गैर-राज्य तंत्र। इन दो श्रेणियों के अंतर्गत आने वाले मामलों को इस न्यायालय द्वारा रिट अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी माना गया है, जैसा कि **एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ ए०आई०आर० 1987 एस०सी० 1086** सहित कई निर्णयों से देखा गया है। इनमें से किसी भी मानदंड के अभाव में, न्यायालय ने रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इनकार कर दिया है जैसा कि **बिन्नी लिमिटेड बनाम वी. सदाशिवन (2005) 6 एस०सी०सी० 657** में देखा गया है।

(xiv) यहां तक कि उन क्षेत्राधिकारों में भी जहां सामाजिक आर्थिक अधिकारों को संवैधानिक अधिकारों एवं स्थिति में बढ़ा दिया गया है, उन अधिकारों का प्रवर्तन केवल राज्य के खिलाफ उपलब्ध कराया गया था, न कि निजी कर्ताओं के खिलाफ, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा राजस्थान के गैर-सहायता प्राप्त निजी विद्यालयों के लिए **सोसायटी बनाम भारत संघ (2012) 6 एस०सी०सी० 1** में अभिनिर्धारित किया गया था।

(xv) अधिकारों के संभावित टकराव के मुद्दे पर, संवैधानिक अधिकारों एवं संवैधानिक मूल्यों के बीच के अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है।औपचारिक स्तर पर, मूल्यों को दूरदर्शी रूप से ऐसी चीजों के रूप में समझा जाता है जिन्हें बढ़ावा दिया जाना चाहिए या अधिकतम किया जाना चाहिए। दूसरी ओर, अधिकारों को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि उनका सम्मान किया जाना चाहिए। यह अन्य अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए एक अधिकार के उल्लंघन की अनुमति देने के अधिकार के लिए उचित चिंता नहीं दिखाएगा। यह अधिकारों के गैर उल्लंघन को बढ़ावा देगा, लेकिन यह अधिकारों का सम्मान नहीं करेगा। **फ्रांसेस काम मोरैलिटी, मोरटैलिटी वाल्यूम 2 आॅक्सफोर्ट यूनिवर्सिटी प्रेस 1996**

(xvi) उन मूल्यों के बजाय जिनकी संतुष्टि को अधिकतम किया जाना है, अधिकार राज्य के कार्यों पर बाधाओं के रूप में कार्य करते हैं। वे व्यक्तियों को स्वतंत्रता का एक ऐसा क्षेत्र प्रदान करते हैं जो अलंघनीय है।इस प्रकार अधिकार सरकार पर प्रतिबंध के रूप में कार्य करते हैं कि संवैधानिक मूल्यों सहित मूल्यों को कैसे आगे

बढ़ाया जाए। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम संवैधानिक अधिकारों एवं संवैधानिक मूल्यों के बीच अंतर करें। स्वतंत्रता में हर वृद्धि या गरिमापूर्ण जीवन जीने में हर सुधार एक संवैधानिक अधिकार नहीं है। इस स्थिति को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

(xvii) जैसा कि इस न्यायालय में न्यायमूर्ति के०एस० पुट्टास्वामी द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, जहां भी मौलिक अधिकारों के दो समूहों के बीच संघर्ष का अनुमान लगाया जाता है, वहां न्यायालय संतुलन बनाएगा। कड़ाई से कहें तो वास्तव में कुछ लोगों द्वारा क्या कल्पना की गई है एवं सैद्धांतिक स्तर पर अमूर्त रूप से अधिकारों का संघर्ष नहीं है लेकिन अधिकारों की धारणा/आह्वान/अभ्यास में संघर्ष है, इसका न्यायमूर्ति के०एस० पुट्टा स्वामी सहित कई बार निर्णयों में उल्लेख किया गया है।

(xviii) मंत्रियों द्वारा दिए गए बयानों एवं सामूहिक जिम्मेदारी के मुद्दे पर, अनुच्छेद 75 (3) एवं 164 (2) का संदर्भ देना होगा। ये दोनों अनुच्छेद मंत्रिपरिषद की सामूहिक जिम्मेदारी की बात करते हैं। यद्यपि इन अनुच्छेदों में प्रयुक्त भाषा से संकेत मिलता है कि ऐसी सामूहिक जिम्मेदारी लोक सभा/विधान सभा के प्रति है, लेकिन यह वास्तव में बड़े पैमाने पर लोगों के लिए एक जिम्मेदारी है।चूँकि एक मंत्री के प्रत्येक कथन का सरकार की नीति पर सीधा प्रभाव पड़ेगा, इसलिए स्वैच्छिक आचार संहिता की अनिवार्य आवश्यकता है। जैसा कि इस न्यायालय ने सामान्य कारण (सर्वोच्च न्यायालय) में बताया है, सामूहिक जिम्मेदारी के दो अर्थ हैं। अर्थात् (i) मंत्रिपरिषद के सभी सदस्य अपनी नीतियों के समर्थन में सर्वसम्मत हैं एवं सार्वजनिक रूप से ऐसी

सर्वसम्मति प्रदर्शित करते हैं, एवं (ii) कि वे व्यक्तिगत रूप से एवं नैतिक रूप से इसकी सफलता एवं विफलता के लिए जिम्मेदार हैं।

(xix) मंत्रियों की ओर से व्यक्तिगत विचलन संवैधानिक शासन के लिए गंभीर खतरा हैं एवं इस तरह मंत्रिपरिषद के प्रमुख का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि इस तरह के उल्लंघन न हों;

(xx) मंत्रियों के भाषणों एवं कार्यों को स्व-विनियमित करने के लिए एक आचार संहिता संवैधानिक रूप से उचित है एवं यह न्यायालय निश्चित रूप से इसकी आवश्यकता की जांच कर सकता है।आदर्श रूप से, एक मंत्री को मंत्रिमंडल एवं विधानमंडल के प्रति अपनी सामूह जिम्मेदारी का उल्लंघन नहीं करना चाहिए आैर इसलिए, यह सलाह दी जाती है कि उन्नत लोकतंत्रों में होने वाली एक ठोस आचार संहिता हो।

(xxi) हालांकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अतिरिक्त प्रतिबंध लगाना संभव नहीं है, लेकिन सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए एक आचार संहिता होना निश्चित रूप से वांछनीय है, जैसा कि अन्य क्षेत्राधिकारों में पालन किया जाता है। न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रख सकता है कि सहारा इंडिया रियल एस्टेट कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उच्चतम न्यायालय) में न्यायालय ने प्रेस की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने के लिए बोर्ड भर में दिशानिर्देश तैयार करने के खिलाफ आगाह किया था।

(xxii) घृणापूर्ण भाषणों की बात करें(i) तो 2014 के बाद से घृणापूर्ण भाषणों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। मई-2014 से अब तक 45 राजनेताआें द्वारा

अपमानजनक भाषण के 124 मामले दर्ज हुए हैं। सोशल मीडिया मंचों ने लक्षित घृणापूर्ण भाषण के प्रसार को बढ़ावा दिया है। इस तरह के भाषण हिंसा भड़काने के लिए उपजाऊ जमीन प्रदान करते हैं।

(xxiii) घृणापूर्ण भाषणों से निपटने में न्यायालय की भूमिका के प्रश्न पर **प्रवासी भलाई संगठन बनाम भारत संघ, (2014) 11 एस०सी०सी० 477, कोडुंगल्लूर फिल्म सोसार्टी बनाम भारत संघ (2018) 10 एस०सी०सी० 713 तथा अमीश देवगन (उच्चतम न्यायालय)** के निर्णय में व्यापक मापदंड निर्धारित किए।

(xxiv) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, घृणापूर्ण भाषण की परिभाषा संयुक्त राष्ट्र की रणनीति एवं घृणापूर्ण भाषण पर कार्य योजना में तैयार की गई थी, जिसका अर्थ है-

> "... भाषण, लेखन या व्यवहार में किसी भी प्रकार का संचार, जो किसी व्यक्ति या समूह के संदर्भ में उनके धर्म, जातीयता, राष्ट्रीयता, नस्ल, रंग, वंश, लिंग या अन्य पहचान कारक के आधार पर अपमानजनक या भेदभावपूर्ण भाषा का उपयोग करता है।
>
> घृणास्पद भाषण एवं असहिष्णुता का मुकाबला करने में राजनीतिक नेताओं की भूमिका एवं जिम्मेदारियां (अनंतिम संस्करण) दिनांक 12 मार्च 2019, समानता एवं गैर-भेदभाव समिति द्वारा यूरोप की परिषद की संसदीय सभा को प्रस्तुत की गई थी। सभा ने प्रतिवेदक सुश्री एल्विरा कोवाक्स, सर्बिया द्वारा प्रस्तावित पाठ को अपनाते हुए प्रस्ताव पारित किया।

(xxv) अंत में, आगे का रास्ता यह है, **(i)** विधायिका के लिए सार्वजनिक पदों पर आसीन व्यक्तियों के लिए एक स्वैच्छिक आदर्श आचार संहिता अपनाए, जो संवैधानिक नैतिकता एवं सुशासन के मूल्यों को प्रतिबिंबित करेगी; एवं **(ii)** वेनिस के सिद्धांतों एवं पेरिस के सिद्धांतों के अनुसार लोकपाल जैसे उपयुक्त तंत्र का निर्माण जब तक लोकपाल का गठन किया जाता है, राष्ट्रीय एवं राज्य मानवाधिकार आयोगों को मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के प्रावधानों के संदर्भ में सक्रिय उपाय करने होंगे।

IV. **चर्चा एवं विश्लेषण**

प्रश्न संख्या 1

12. प्रश्न संख्या 1, जिसका हमें उल्लेख किया गया है, वह यह है कि क्या अनुच्छेद 19 (2) में निर्दिष्ट आधार जिनके संबंध में कानून द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, पूर्ण हैं, या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं?

अनुच्छेद 19 के खंड (2) के विकास का इतिहास

13. इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए, इतिहास में एक नज़र डालना आवश्यक एवं प्रासंगिक भी हो सकता है । चूंकि इस संबंध में डॉ. बी. आर.

अम्बेडकर के मूल मसौदे में आयरिश संविधान के अनुच्छेद 40 (6) का अनुपालन किया गया था, इसलिए सलाहकार समिति के मूल मसौदे में सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, राजद्रोह, अश्लीलता, ईशनिंदा एवं मानहानि जैसे प्रतिबंध शामिल थे। सरदार वल्लभभाई पटेल ने मानहानि को भी शामिल करने का सुझाव दिया।**गिटलो बनाम न्यूयार्क 286 यू.एस. 652 (1925)** के मामले के निर्णय का हवाला देते हुए इन प्रतिबंधों को उचित ठहराने की मांग की गई थी।

14. चूँकि उस समय देश में बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे हुए थे, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने राज्य या राष्ट्र की सुरक्षा एवं रक्षा या राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रतिबंधों में से एक के रूप में शामिल करने के लिए जोरदार तर्क दिया। एसे भाषण को प्रतिबंधित करने के बारे में भी चर्चा हुई जिसका उद्देश्य सांप्रदायिक सद्भाव को खराब करना है और जो भाषण राजद्रोही प्रकृति के हैं। सुझावों, प्रति सुझावों एवं आपत्तियों के साथ, मौलिक अधिकारों पर उप-समिति की प्रारंभिक रिपोर्ट में बहुत सारे बदलाव किए गए। अनुच्छेद 19 के खंड (1) एवं (2) के विकास को चरण-दर-चरण, अप्रैल 1947 में मसौदा रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के समय से लेकर संविधान को स्वीकार किए जाने तक निम्नानुसार, सारणीबद्ध रूप में {स्त्रोत - आर्टिकल "आरगुमेंट फ्रॉम कोलोनियल कम्यूनिटी - द कॉन्सटिट्यूशन (फर्स्ट अमेंडमेंट) एक्ट 1951 (2008) ऑफ बुरा, अरूद्रा असिस्टेंट प्रॉफेसर डिपार्टमेंट ऑफ ह्यूमिनिटी एण्ड सोशल साइसेंस आईआईटी.(देलही)} प्रस्तुत किया जा सकता हैः

प्रारूप	प्रावधान
मौलिक अधिकारों पर उपसमिति की ड्राफ्ट रिपोर्ट अप्रैल 1947 (बी०एस०आर० 11, 139	09- निम्नलिखित के अभ्यास के लिए स्वतंत्रता होगी, अधिकार सार्वजनिक व्यवस्था आैर नैतिकता के अधीन है, (ए) प्रत्येक नागरिक को बोलने आैर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार। देशद्रोही प्रकाशन या उच्चारण अश्लील, निदंनीय, अपमानजनक या मानहानिकारक मामला कानून के अनुसार कार्यवाही योग्य या दंण्डनीय होगा।
मौलिक अधिकारों पर उप समिति की अंतिम रिपोर्ट, अप्रैल 1947 (बी०एस०आर०)	10. निम्नलिखित के अभ्यास के लिए स्वतंत्रता होगी। सार्वजनिक व्यवस्था आैर नैतिकता के अधीन अधिकार या संघ सरकार या संबंधित इकार्इ द्वारा घोषित गंभीर आपातकाल के अस्तित्व के अधीन संघ या इकार्इ की सुरक्षा, जैसा भी मामला हो।
सलाहकार समिति की अंतरिम रिपोर्ट, 30 अप्रैल 1947	सार्वजनिक व्यवस्था आैर नैतिकता या अस्तित्व के अधीन निम्नलिखित अधिकारों के प्रयोग की स्वतंत्रता होगी। सरकार, संघ या संबंधित इकार्इ द्वारा गंभीर आपातकाल घोषित किया गया है, जिससे जैसा भी मामला हो, संघ या इकार्इ की सुरक्षा को खता हो, (ए) प्रत्येक नागरिक को बोलने की स्वतंत्रता का अधिकार आैर

	अभिव्यक्ति, देशद्रोही, अश्लील, ईशनिंदा, निदंनीय के प्रकाशन या उच्चारण को कानून द्वारा प्रावधान किया जा सकता है। अपमानजनक या मानहानि कारक मामला कार्यवाही योग्य या दंडनीय।
बी०एन.राव द्वारा तैयार संविधान का मसौदा अक्टूबर 1947 (बी०एस०आर० III 8-9)	15.(1) सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता के अधीन निम्नलिखित अधिकारों के प्रयोग की स्वतंत्रता होगी, अर्थात् (ए) प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार और अभिव्यक्ति। (2) इस खंड में कुछ भी इसकी शक्ति को प्रतिबंधित नहीं करेगा। राज्य उस अवधि के दौरान कोई कानून बना सकता है या कोई कार्यकारी कार्यवाही कर सकता है, जिसे इस संविधान के तहत बनाने या करने की शक्ति है, जब धारा 182 की उपधारा (1) के तहत जारी आपातकाल की उद् घोषणा लागू होनी है, या इकाई की सरकार द्वारा घोषित किसी गंभीर आपातकाल की अवधि के दौरान इकाई का मामला जिसमें इकाई की सुरक्षा को खतरा हो।
प्रारूप समिति द्वारा तैयार संविधान का	13(1) इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन, सभी नागरिकों को अधिकार होगा।

मसौदा आैर संविधान सभा के अध्यक्ष को प्रस्तुत, फरवरी 1948 (बी०एस०आर० III, 522	(ए) बोलने आैर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का (2) इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (ए) में कुछ भी, नहीं किसी भी मौजूद कानून के संचालन को प्रभावित करेगा, या राज्य को मानहानि, बदनामी, मानहानि राजद्रोह या किसी अन्य नैतिकता के खिलाफ अपमान करता है या राज्य के अधिकार या नींव को कमजोर करता है।
अक्टूबर 1948 में संविधान सभा में प्रस्ताव पेश किया गया। (बी०एस०आर० IV-39)	13(1) इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन, सभी नागरिकों को अधिकार होगा। (2) इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (ए) में कुछ भी मौजूदा कानून के संचालन को प्रभावित नहीं करेगा, या राज्य को मानहानि, बदनामी, मानहानि राजद्रोह या किसी अन्य मामले से संबंधित कोई कानून बनाने से नहीं रोकेगा। जो शालिनता के खिलाफ है या राज्य की सुरक्षा को कमजोर करता है, या उसे उखाड़ फेंकने की प्रवृत्ति रखता है।
संशोधित मसौदा संविधान, नवम्बर 1949 में अपनाया गया (बी०एस०आर०) चतुर्थ	19(1) सभी नागरिकों को अधिकार होगा (ए) भाषण आैर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए, (2) खंड (1) के उपखंड (ए) में कुछ भी मौजूदा कानून के संचालन को प्रभावित नहीं करेगा, जहां तक यह मानहानि,

755	बदनामी, मानहानि अवमानना से संबंधित है, या राज्य को कोई कानून बनाने से नहीं रोकता है। न्यायालय या कोई भी मामला जो शालिनता या नैतिकता के खिलाफ है या जो राज्य की सुरक्षा को कमजोर करता है, या उसे उखाड़ फेंकने की प्रवृत्ति रखता है।

15. संविधान को अपनाने के तुरंत बाद, इस न्यायालय को **मद्रास लोक व्यवस्था रखरखाव अधिनियम 1949, 1949 की धारा 19(1-ए)** द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करते हुए पारित एक आदेश को चुनौती देने का अवसर मिला, जिसमें बॉम्बे में मुद्रित एवं प्रकाशित 'क्रॉस रोड्स' नामक साप्ताहिक पत्रिका के प्रवेश एवं प्रसार पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।प्रतिबंध आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि यह अनुच्छेद 19 (1) (ए) का उल्लंघन करता है। जिस वैधानिक प्रावधान के तहत प्रतिबंध आदेश जारी किया गया था, उसकी वैधता पर भी संविधान के अनुच्छेद 13 (1) के आधार पर हमला किया गया था। इस न्यायालय की सात सदस्यीय संविधान पीठ ने **रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य ए०आई०आर 1950 एस०सी० 124** में चुनौती को बरकरार रखते हुए निम्नलिखित निर्णय दियाः-

"[12] इसलिए हमारी राय है कि जब तक भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने वाला कोई कानून पूरी तरह से राज्य की सुरक्षा को कम करने या उसे उखाड़ फेंकने के खिलाफ निर्देशित नहीं किया जाता है, तब तक ऐसा

कानून अनुच्छेद 19 के खंड (2) के तहत आरक्षण के दायरे में नहीं आ सकता है, हालांकि जिन प्रतिबंधों को वह लागू करना चाहता है, उनकी कल्पना आम तौर पर सार्वजनिक व्यवस्था के हित में की गई होगी।

16. **रामेश थापर (सुप्रा)** में एक तर्क दिया गया था कि 1949 के अधिनियम की धारा 9(1ए) को पूरी तरह से शून्य नहीं माना जा सकता है, क्योंकि सार्वजनिक सुरक्षा सुनिश्चित करना या सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना राजा की सुरक्षा को शामिल करेगा आैर इसलिए उक्त प्रावधान, जैसा कि बाद के उद्देश्य के लिए लागू किया गया था, अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत आता है। हालांकि उक्त तर्क को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि जहां कोई कानून किसी मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध लगाने को अधिकृत करने का दावा करता है, उस अधिकार को प्रभावित करने वाली संवैधानिक रूप से स्वीकार्य विधायी कार्यवाही की सीमाआें के भीतर या बाहर दोनों तरह के प्रतिबंधों को कवर करने के लिए पर्याप्त व्यापक भाषा में, इसे संवैधानिक सीमाआें के भीतर लागू किए जाने तक भी इसे बनाए रखना संभव नहीं है, क्योंकि यह अलग करने योग्य नहीं है।

17. जिस तारीख को **रोमेश थापर** मामले में फैसला सुनाया गया था, उसी तारीख को इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **बृज भूषण बनाम दिल्ली राज्य ए०आई०आर० 1950 एस०सी० 129** के मामले में भी एक और फैसला सुनाया। यह भी अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका से उत्पन्न हुआ, जिसमें पूर्वी पंजाब सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम, 1949 की धारा 7 (1) (सी) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का

प्रयोग करते हुए दिल्ली के मुख्य आयुक्त द्वारा पारित एक आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसमें "आर्गनाइजर" नाम के एक अंग्रेजी साप्ताहिक के मुद्रक और प्रकाशक के साथ-साथ संपादक को प्रकाशन से पहले जांच के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी, जिसमें अधिकारिक स्रोतों से प्राप्त तस्वीरों और कार्टूनों सहित पाकिस्तान के बारे में सभी सांप्रदायिक मामले और समाचार और विचार शामिल हैं। **रोमेश थापर** के मामले में निर्णय के बाद, संविधान पीठ ने कहा कि एक पत्रिका पर पूर्व-सेंसरशिप लगाना प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध है, जो बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का एक अनिवार्य हिस्सा है।पीठ ने कहा कि पूर्वी पंजाब सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम, 1949 की धारा 7 (1) (सी) अनुच्छेद 19 के खंड (2) के आरक्षण के दायरे में नहीं आती है।

18. उपरोक्त दो निर्णयों के बाद, संसद ने संविधान (प्रथम संशोधन) विधेयक, 1951 के माध्यम से संविधान में संशोधन करना चाहा। प्रथम संशोधन के उद्देश्यों एवं कारणों के विवरण में, यह संकेत दिया गया था कि कुछ न्यायालयों द्वारा अनुच्छेद 19 (1) (ए) द्वारा गारंटीकृत नागरिक के बोलने एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को इतना व्यापक माना गया है कि किसी व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, भले ही वह हत्या एवं हिंसा के अन्य अपराधों की वकालत करता हो।संयोग से, प्रथम संशोधन में अन्य मुद्दों पर भी विचार किया गया, जिनके बारे में हम इस चर्चा में चिंतित नहीं हैं। अनुच्छेद 19 के खंड (2) को संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 के तहत एक नए खंड द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था।प्रथम संशोधन के बाद

अनुच्छेद 19 के खंड (2) में हुए परिवर्तन को आसानी से समझने के लिए, हम एक सारणीबद्ध स्तंभ, अनुच्छेद 19 (2) में प्रथम संशोधन से पहले एवं प्रथम संशोधन के बाद निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैंः-

प्रथम संशोधन पूर्व अनुच्छेद 19(2)	**प्रथम संशोधन पश्चात् अनुच्छेद 19(2)**
(2) उपखंड (क) की कोई बात खंड (1) के संचालन को प्रभावित नहीं करेगी, जहां तक वह मानहानि अवमानना से संबंधित है, या राज्य को कोई कानून बनाने से रोकता है। न्यायालय या कोई भी मामला जो शालीनता या नैतिकता के खिलाफ है या जो राज्य की सुरक्षा को कमजोर करता है या उसे उखाड़ फेंकने की प्रवृत्ति रखता है।	(2) खंड (1) के उपखंड (क) में कुछ भी मौजूदा कानून के संचालन को प्रभावित नहीं करेगा या राज्य को कोई कानून बनाने से नहीं रोकेगा, जहां तक ऐसा कानून प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर उक्त उपधारा द्वारा राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के हित में या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या किसी अपराध के लिए उकसाने के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन लगाता है।

19. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 की धारा 3 (1) (ए) ने घोषणा की गई है कि **नया प्रतिस्थापित खंड (2)**

अनुच्छेद 19 का हमेशा संशोधित रूप में अधिनियमित किया गया माना जाएगा, जिसका अर्थ है कि संशोधित खंड (2) को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था।

20. अनुच्छेद 19 के संशोधित खंड (2) में ध्यान देने योग्य एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता 'उचित प्रतिबंध' शब्दों का समावेश है।इस प्रकार, तर्कसंगतता का परीक्षण पहले संशोधन द्वारा पेश किया गया था एवं यह **मद्रास राज्य बनाम व्ही०जी०राव (1952) 1 एस०सी०सी० 410** के मामले में कुछ ही समय के भीतर न्यायिक अन्वेषण के लिए सामने आया। यह मामला मद्रास उच्च न्यायालय के एक फैसले से उत्पन्न हुआ, जिसमें 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' के रूप में जानी जाने वाली एक संस्था को गैरकानूनी संगठन घोषित करने एवं भारतीय आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1908 की धारा 15 (2) (बी) को असंवैधानिक घोषित करने के सरकारी आदेश को रद्द कर दिया गया, जिसे भारतीय आपराधिक कानून संशोधन (मद्रास) अधिनियम, 1950 द्वारा संशोधित किया गया था।मद्रास उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखते हुए, इस न्यायालय ने संकेत दिया कि तर्कसंगतता की कसौटी को कैसे स्पष्ट किया जाना चाहिए।फैसले का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार हैः-

"23. इस संदर्भ में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जहां भी निर्धारित किया जाए, तर्कसंगतता की कसौटी प्रत्येक व्यक्तिगत क़ानून पर लागू की जानी चाहिए, एवं कोई अमूर्त मानक या तर्कसंगतता के सामान्य पैटर्न को सभी मामले में लागू नहीं किया जा सकता है।**कथित रूप से उल्लंघन किए गए अधिकार की प्रकृति, लगाए गए प्रतिबंधों का अंतर्निहित उद्देश्य, इससे दूर किए जाने वाले बुराई की सीमा एवं**

तात्कालिकता को दूर करने की मांग, अधिरोपण का अनुपात, उस समय की प्रचलित शर्तें, सभी को न्यायिक निर्णय में शामिल करना चाहिए। इस तरह के मायावी कारकों का मूल्यांकन करने एवं किसी दिए गए मामले की सभी परिस्थितियों में, क्या उचित है, उसके बारे में अपनी अवधारणा बनाने में, यह अपरिहार्य है कि निर्णय में भाग लेने वाले न्यायाधीशों के सामाजिक दर्शन एवं मूल्यों का पैमाना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाए, एवं ऐसे मामलों में विधायी निर्णय में उनके हस्तक्षेप की सीमा केवल उनकी जिम्मेदारी एवं आत्म-संयम की भावना एवं इस गंभीर प्रतिबिंब से निर्धारित की जा सकती है कि संविधान न केवल उनके सोचने के तरीके के लोगों के लिए है, बल्कि सभी के लिए है, एवं यह कि जनता के अधिकांश निर्वाचित प्रतिनिधियों ने प्रतिबंधों को लागू करने को अधिकृत करने के लिए उन्हें उचित माना है।"

21. संविधान के पहले संशोधन के बाद, देश में विशेष रूप से एक दक्षिणी राज्य से अलगाव के लिए पुकार होने लगी, जिसमें संकीर्ण प्रवृत्तियों ने अपना कुरूप चेहरा दिखाया। इसलिए साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद एवं संकीर्ण मानसिकता की बुराइयों से निपटने के तरीके एवं साधन खोजने के लिए सितंबर-अक्टूबर, 1961 में एक राष्ट्रीय एकता सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन ने राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थापना करने का निर्णय लिया। तदनुसार, 1962 में इसका गठन किया गया था।1962 में चीन-भारत युद्ध के मद्देनजर परिषद का गठन महत्वपूर्ण हो गया।इस राष्ट्रीय एकता परिषद में राष्ट्रीय एकता एवं क्षेत्रवाद पर

एक समिति थी।इस समिति ने संविधान में दो संशोधनों की सिफारिश की, अर्थात् (i) अनुच्छेद 19 के खंड (2) का संशोधन ताकि "भारत की संप्रभुता एवं अखंडता" शब्दों को प्रतिबंधों में से एक के रूप में शामिल किया जा सके आैर **(ii)** तीसरी अनुसूची में निहित शपथ या प्रतिज्ञान के 8 रूपों में संशोधन। 1963 तक, संवैधानिक शपथ लेने वाले किसी भी व्यक्ति को यह शपथ लेने की आवश्यकता नहीं थी कि वह "भारत की संप्रभुता आैर अखंडता को बनाए रखेगा।" लेकिन, संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 ने शपथ के रूपों का विस्तार किया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि "राज्य विधानमंडल या संसद की सदस्यता के लिए प्रत्येक उम्मीदवार, एवं सार्वजनिक पद के प्रत्येक आकांक्षी एवं पदधारी-इसके उद्देश्यों आैर कारणों के कथन को उद्धुत करते हुए- "भारत संघ की अखंडता आैर संप्रभुता को बनाए रखने के लिए खुद की प्रतिक्षा करता है।" इस प्रकार संविधान के (सोलहवां संशोधन) अधिनियम 1963 द्वारा "भारत की संप्रभुता एवं अखंडता" को अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत गारंटीकृत अधिकार पर प्रतिबंध के अतिरिक्त आधार के रूप में शामिल किया गया है।

22. अनुच्छेद 19 के खंड (2) के विकास के इतिहास को देखने के बाद, आइए अब हम पहले प्रश्न पर आते हैं।

<u>प्रश्न संख्या 1 के दो भाग</u>

23. प्रश्न संख्या 1 वास्तव में दो भागों में है।पहला भाग इस बात पर जोर देता है कि क्या अनुच्छेद 19 (2) में उल्लिखित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंधों को संपूर्ण कहा जा सकता है। प्रश्न के दूसरे भाग में इस बात पर बहस की गई है कि क्या अन्य मौलिक अधिकारों का हवाला देकर अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर अतिरिक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

प्रश्न संख्या 1 का पहला भाग

24. अनुच्छेद 19 के खंड (2) के विकास का न्यायिक इतिहास, जिसे हमने ऊपर उल्लेखित किया गया है, यह दर्शाता है कि अब तक सूची बद्ध किए गए प्रतिबंधों की अभिव्यक्ति में बहुत विचार-विमर्श किया गया है। नवम्बर 1949 में संविधान को अपनाने तक मौलिक अधिकारों पर उप-समिति की मसौदा रिपोर्ट में कई बदलाव हुए। जिस रूप में 1949 में संविधान को अपनाया गया था, उसमें (i) निंदालेख; (ii) बदनामी; (iii) मानहानि; (iv) न्यायालय की अवमानना; (v) कोई भी मामला जो, शालीनता या नैतिकता के खिलाफ है; एवं (vi) कोई भी मामला जो राज्य की सुरक्षा को कमजोर करता है या राज्य को उखाड़ फेंकने की प्रवृत्ति रखता है, से संबंधित प्रतिबंध थे।

25. प्रथम एवं 16 वें संशोधनों के बाद, (i) भारत की संप्रभुता एवं अखंडता के हित; (ii) राज्य की सुरक्षा; (iii) विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध; (iv) सार्वजनिक व्यवस्था; (v) शालीनता या नैतिकता; (vi) न्यायालय की अवमानना; (vii) मानहानि; एवं (viii) अपराध के लिए उकसाने से संबंधित उचित प्रतिबंधों पर जोर दिया गया है।

26. प्रतिबंधों के इन आठ शीर्षों पर सावधानीपूर्वक नज़र डालने से पता चलेगा कि वे मौजूदा कानूनों को बचाते हैं एवं राज्य को (i) व्यक्तियों (ii) व्यक्तियों के समूहों (iii) समाज के वर्गों (iv) नागरिकों के वर्गों (v) न्यायालय (vi) राज्य एवं (vii) देश को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने वाले कानून बनाने में सक्षम बनाते हैं। भारतीय दंड संहिता के वे प्रावधान जो कुछ भाषण या अभिव्यक्ति को दंडनीय अपराध बनाते हैं, जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में बाधा उत्पन्न होती है, उन प्रतिबंधों के शीर्षक जिसके तहत वे आते हैं एवं व्यक्ति/व्यक्तियों की श्रेणी/वर्ग को प्रतिबंध द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए; उन्हें एक तालिका के तहत प्रभावित किया जा सकता है।

भा.दं.सं. के तहत वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने वाले प्रावधानों की तालिका

वाक स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने वाले कानून	अनुच्छेद 19 (2) के अंतर्गत आने वाले प्रतिबंध	व्यक्ति/व्यक्तियों का वर्ग, जिसकी सुरक्षा की मांग की गई है और

	के शीर्ष	उसकी सुरक्षा की प्रकृति
भा०दं०सं० की धारा 117- जनता द्वारा या दस से अधिक व्यक्तियों द्वारा अपराध करने के लिए उकसाना। इस धारा के अंतर्गत एक उदाहरण है, जो कानून का हिस्सा है। यह दृष्टांत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करना चाहता है। दृष्टांत-" सार्वजनिक स्थान पर एक तख्ती लगाता है, जिसमें दस से अधिक सदस्यों वाले एक सम्प्रदाय को एक निश्चित समय आैर स्थान पर इकट्ठा होने के लिए उकसाया जाता है, जिसका उद्देश्य एक विरोधी सम्प्रदाय के सदस्यों पर हमला करना है, जबकि वह जुलूस निकाल रहा है। 'अ' ने इस धारा में परिभाषित अपराध किया।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. किसी अपराध के लिए उकसाना।	विशिष्ट व्यक्तियों- अपराध करने से उकसाने से संरक्षण।
धारा 124-ए भा०दं०सं०- राजद्रोह (चुनौतीपूर्ण विषय वस्तु जो इस न्यायालय के समक्ष लंबित है।)	01. सार्वजनिक व्यवस्था । 02. शालीनता आैर नैतिकता।	राज्य- असंतोष के विरूद्ध संरक्षण

भा०दं०सं० की धारा 153(ए) (1) (a)-विभिन्न समूहों के बीच दुश्मनी को बढ़ावा देना-धर्म, जाति, जन्मस्थान, निवास, भाषा आदि के आधार पर आैर सद्भाव बनाए रखने के प्रतिकूल कार्य करना।	01. सार्वजनिक व्यवस्था । 02. शालीनता आैर नैतिकता।	व्यक्तियों के समूह- समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य सद्भाव को बाधित करने से संरक्षण
भा०दं०सं० की धारा 153(बी)- राष्ट्रीय एकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले आरोप	01. राज्य की संप्रभुता आैर अखंडता । 02. सार्वजनिक व्यवस्था। 03. शालीनता आैर नैतिकता।	01. राष्ट्र। 02. विभिन्न धर्म, नस्ल, भाषा आदि से संबंधित व्यक्तियों का समूह।
भा०दं०सं० की धारा 171 सी निर्वाचन पर अनुचित प्रभाव	सार्वजनिक व्यवस्था।	चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार आैर मतदाता- स्वतंत्र आैर निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पवित्रता बनाए रखना।
भा०दं०सं० की धारा 228 न्यायिक कार्यवाही में बैठे लोकसेवक का जानबुझकर अपमान या व्यवधान	न्यायालय की अवमानना।	न्यायालय-लोगों को न्यायालय के अधिकार को कमजोर करने से रोकना।

भा०दं०सं० की धारा 228 (ए)(1) कुछ अपराधों के शिकार व्यक्ति की पहचान का खुलासा आदि।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता	विशिष्ट व्यक्ति (धारा 376 के अंतर्गत अपराध के पीड़ित)- महिलाआें आैर अवयस्कों की पहचान की सुरक्षा।
भा०दं०सं० की धारा 295(ए) जानबुझकर आैर दुर्भावनापूर्ण कृत्य, जिसका उद्देश्य किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करके उसकी भावनाआें को ठेस पहुंचाना है।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता	समाज के वे वर्ग जो भिन्न-भिन्न धर्मिक विश्वासों/भावनाआें को मानते आैर उनका पालन करते हैं।
भा०दं०सं० की धारा 298 धार्मिक भावनाआें को आहत करने के इरादे से जानबुझकर शब्द बोलना आदि।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता	समाज के वे वर्ग जो भिन्न-भिन्न धर्मिक विश्वासों/भावनाआें को मानते आैर उनका पालन करते हैं।
भा०दं०सं० की धारा 351- हमला। हमले की परिभाषा में कुछ कथन शामिल हैं, जैसा कि धारा में दिए गए स्पष्टीकरण से देखा जा सकता है। **स्पष्टीकरण-** केवल शब्द हमले की कोटि में नहीं आते, किन्तु जो शब्द कोर्इ व्यक्ति प्रयोग करता	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता	विशिष्ट व्यक्ति-आपराधिक बल से सुरक्षा।

है, वे उसके अंग विक्षेप या तैयारियों को एेसा अर्थ दे सकते हैं, जिससे वे अनुविक्षेप या तैयारियां हमले की कोटि में आ जाएं।		
भा०दं०सं० की धारा 354- स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला का प्रयोग। टिप्पणी- हमले की परिभाषा में शब्दों का उपयोग सम्मिलित है।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता। 03. मानहानि।	विशिष्ट रूप से स्त्री की शील की सुरक्षा
भा०दं०सं० की धारा 354(क)- यौन उत्पीड़न (इसमें यौन टिप्पणियां शामिल हैं)	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता। 03. मानहानि।	विशिष्ट रूप से स्त्री की शील की सुरक्षा
भा०दं०सं० की धारा 354(ग)- दृश्यरतिकता	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता। 03. मानहानि।	विशिष्ट रूप से स्त्री की शील की सुरक्षा
भा०दं०सं० की धारा 354(घ)- पीछा करना।	01. शालीनता आैर नैतिकता। 02. मानहानि।	विशिष्ट रूप से स्त्री की शील की सुरक्षा
भा०दं०सं० की धारा	01. सार्वजनिक व्यवस्था।	विशिष्ट व्यक्ति-स्त्री की शील की

354(ङ)- सेक्सटॉर्सन	02. शालीनता आैर नैतिकता। 03. मानहानि।	सुरक्षा
भा०दं०सं० की धारा 355- गंभीर प्रकोपन के अलावा किसी व्यक्ति का अपमान करने के इरादे से हमला या आपराधिक बल का प्रयोग। **टिप्पणी**- हमले की परिभाषा में शब्दों का उपयोग शामिल है।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता। 03. मानहानि।	विशिष्ट व्यक्तियों- प्रतिष्ठा की सुरक्षा।
भा०दं०सं० की धारा 383- उद्दापन (इस धारा अंतर्गत दृष्टांत में मानहानि का प्रकाशन की धमकी शामिल है।) **दृष्टांत**- क यह धमकी देता है कि य ने उसको धन नहीं दिया तो वह य के बारे में मानहानिकारक अपमान लेख प्रकाशित करेगा, अपने को धन देने के लिए वह इस प्रकार य को उत्प्रेरित करता है। क ने उद्दापन किया है।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता।	व्यक्तियों को क्षति के भय से सुरक्षा/संपत्ति की सुरक्षा

भा०दं०सं० की धारा 390- लूट **टिप्पणी**-सब प्रकार की लूट में या तो चोरी या उद्दापन होता है।	01. सार्वजनिक व्यवस्था। 02. शालीनता आैर नैतिकता।	व्यक्तियों को क्षति के भय से सुरक्षा/संपत्ति की सुरक्षा
भा०दं०सं० की धारा 499- मानहानि।	मानहानि।	विशिष्ट व्यक्तियों आैर व्यक्तियों के समूह- प्रतिष्ठा की रक्षा करने का प्रयास किया गया।
भा०दं०सं० की धारा 504- लोकशांति भंग कराने को प्रकोपित करने के आशय से सआशय अपमान।	01. किसी अपराध के लिए उकसाना। 02. सार्वजनिक व्यवस्था। 03. शालीनता आैर नैतिकता।	जनता- शांति की सुरक्षा।
भा०दं०सं० की धारा 505(1)(बी)-एेसे कथन जिनके कारण जनता में डर या भय पैदा होने की संभावना है, जिससे किसी भी व्यक्ति को राज्य या जनता के खिलाफ अपराध करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।	01. राज्य की संप्रभुता एवं अखंडता। 02. किसी अपराध के लिए उकसाना। 03. सार्वजनिक व्यवस्था।	राज्य- राज्य के विरूद्ध अपराध करने से तथा सार्वजनिक शांति की सुरक्षा।
भा०दं०सं० की धारा 505(1) (सी)- कथन जिनका उद्देश्य किसी वर्ग या समुदाय को किसी अन्य वर्ग या समुदाय के	सार्वजनिक व्यवस्था।	वर्ग/समुदाय के लोग-किसी वर्ग या समुदाय के विरूद्ध हिंसा करने के लिए उकसाने से सुरक्षा।

खिलाफ अपराध करने के लिए उकसाना है।		
भा०दं०सं० की धारा 509- शब्द, अंगविक्षेप या कार्य जो किसी स्त्री की लज्जा का अनादर करने के लिए आशयित है।	01. मानहानि। 02. शालीनता आैर नैतिकता।	विशिष्ट व्यक्तियों-स्त्री की लज्जा की सुरक्षा।

27. हमने उपरोक्त तालिका में भारतीय दंड संहिता के केवल उन प्रावधानों पर ध्यान दिया है, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाते हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 आदि जैसे अन्य विशेष अधिनियम भी हैं, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध लगाते हैं। इनसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि अनुच्छेद 19 के खंड (2) में निहित प्रतिबंधों के आठ शीर्ष इतने व्यापक हैं कि व्यक्ति, समाज के वर्गों, नागरिकों के वर्गों, न्यायालय, देश एवं राज्य की सुरक्षा के उद्देश्य से बनाए गए कानून सुरक्षित हैं।

28. अनुच्छेद 19 के खंड (2) के तहत प्रतिबंध व्यक्ति, समूहों/लोगों के वर्गों, समाज, न्यायालय, देश एवं राज्य पर सभी संभावित हमलों को कवर करने के लिए पर्याप्त हैं।यही कारण है कि इस न्यायालय ने बार-बार कहा कि कोई भी प्रतिबंध जो अनुच्छेद 19 (2) के दायरे के भीतर नहीं आता है, वह असंवैधानिक होगा। उदाहरण के लिए, एक्सप्रेस **समाचार पत्र (निजी) लिमिटेड बनामभारत संघ 1959 एस०सी०आर०**

12, में संविधान पीठ ने माना था कि विधानमंडल द्वारा बनाया गया कोई कानून, जो पूरी तरह से अनुच्छेद 19 (2) के दायरे में नहीं आता है, उसे असंवैधानिक करार दिया जाएगा। फिर से सकाल पेपर्स (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने माना कि राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता, जो किसी एक स्वतंत्रता को सीधे प्रतिबंधित करता हो, भले ही वह किसी अन्य स्वतंत्रता का बेहतर आनंद सुनिश्चित करने के लिए हो।

29. कार्यपालिका कार्यकारी या विभागीय निर्देश के रूप में एक अतिरिक्त प्रतिबंध लागू करके अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकती है, इस न्यायालय द्वारा **बिजोए इमैनुएल बनाम केरल राज्य (1986) 3 एस०सी०सी० 615** में इस बात पर जोर दिया गया था।न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि लगाए जाने वाले उचित प्रतिबंध वैधानिक शक्ति वाले "कानून" के माध्यम एवं होने चाहिए न कि केवल कार्यकारी या विभागीय निर्देश के माध्यम से। **कार्यपालिका पर पिछले दरवाजे से घुसपैठ न करने का प्रतिबंध न्यायालयों पर भी समान रूप से लागू होता है।** जबकि न्यायालय कानून की व्याख्या इस तरह से करने के हकदार हो सकते हैं कि ब्लूप्रिंट में मौजूद अधिकारों के व्यापक अर्थ हों, न्यायालय व्याख्या के साधनों का उपयोग करके अतिरिक्त प्रतिबंध नहीं लगा सकता है। न्यायालय क्या कर सकता है और वह किस हद तक जा सकता है, इसे बी० सुदर्शन रेड्डी, जस्टिस ने रामजेठ मलानी (सुप्रा) में इस प्रकार स्पष्ट किया किया था।

> "85. यह तर्क दिया जा सकता है कि यह न्यायालय इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में अपवाद कर सकता है, जिसमें राज्य ने स्वीकार किया

है कि उसने कुछ व्यक्तियों के संदिग्ध बेनामी धन की बड़ी मात्रा के मामले में अपेक्षित गति एवं शक्ति के साथ कार्य नहीं किया है।मौलिक सिद्धांतों एवं अधिकारों को अपवाद बनाने में एक अंतर्निहित खतरा है। वे अपवाद, धीरे-धीरे, मुख्य अधिकार की सामग्री को ही नष्ट कर देंगे। विधायिका या कार्यपालिका द्वारा मौलिक अधिकारों को बनाए रखने में अवांछनीय खामियों को इस न्यायालय द्वारा संवैधानिक सिद्धांतों का दावा करके ठीक किया जा सकता है। हालाँकि, इस न्यायालय का यह निर्णय कि एक अपवाद बनाया जा सकता है, स्थायी रूप से न्यायिक सिद्धांत के एक भाग के रूप में बना रहता है, एवं संवैधानिक व्याख्या का ही एक भाग बन जाता है। इसका उपयोग भविष्य में इस तरीके एवं रूप में किया जा सकता है जो इस न्यायालय के इरादे या संवैधानिक पाठ एवं मूल्यों से कहीं अधिक हो सकता है।हम यह प्रस्ताव नहीं दे रहे हैं कि संविधान की व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती है जिससे राष्ट्र-राज्य अपनी समस्याओं से निपट सके।सिद्धांत यह है कि अपवादों को जानबूझकर नहीं बनाया जा सकता है, एवं बिना पूर्व विचार के कि वे किस नुकसान का कारण बन सकते हैं, नहीं बनाया जा सकता है।

86. उन सिद्धांतों को जो मानव अनुभव के माध्यम से संवैधानिक कानून का हिस्सा बन गए हैं, अपवाद बनाने के मुख्य खतरों में से एक यह है कि तर्क एवं अपवादों को देखने में आसानी, संवैधानिक व्यवस्था के एक हिस्से के रूप में स्थापित हो जाएगी।इस तरह के तर्क से तब सभी मूलभूत की

सुरक्षात्मक दीवारों से अपवाद की तलाश की जाएगी।अधिकार, समीचीनता के आधार पर एवं यह दावा करते हुए कि मौलिक अधिकारों के हनन के बिना समाज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है, उनका कोई समाधान नहीं है। इसी तर्क का उपयोग राज्य द्वारा अन्य मौलिक अधिकारों के अपवाद की मांग में किया जा सकता है, जिससे बड़े पैमाने पर नागरिकों के मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है।"

30. पुनः **सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार बनाम क्रिकेट एसोसिएशन ऑफ बंगाल (1995) 2 एस०सी०सी० 161** में, इस न्यायालय ने आगाह किया कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध केवल अनुच्छेद 19 (2) के आधार पर ही लगाया जा सकता है। **रामलीला मैदान घटना में, (2012) 5 एस०सी०सी० 1** , इस न्यायालय ने एक त्री-आयामी परीक्षण विकसित किया, अर्थात् (i) प्रतिबंध केवल कानून के अधिकार द्वारा या उसके तहत लगाया जा सकता है न कि कार्यकारी शक्ति के प्रयोग द्वारा (ii) ऐसा प्रतिबंध उचित होना चाहिए; एवं (iii) प्रतिबंध अनुच्छेद 19 के खंड (2) में उल्लिखित उद्देश्यों से संबंधित होना चाहिए।

31. अनुच्छेद 19 के खंड (2) में निहित प्रतिबंधों के आठ शीर्ष संपूर्ण हैं, यह एक अन्य दृष्टिकोण से भी स्थापित किया जा सकता है।कानून/न्यायिक घोषणाओं द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगाए गए प्रतिबंधों की प्रकृति उन देशों में भी लगभग समान है, जहां एक उच्च सीमा बनाए रखी गई है। इस बिंदु को स्पष्ट करने

के लिए, हम निम्नलिखित तालिका में विभिन्न क्षेत्राधिकारों से संबंधित एक तुलनात्मक टिप्पणी प्रस्तुत कर रहे हैंः

क्षेत्राधिकार	**वह दस्तावेज जिससे वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार लागू होता है**	**वह दस्तावेज जिससे वाक् एवं अभिव्यक्ति के अधिकार पर प्रतिबंध लागू होता है**	**प्रतिबंधों की प्रकृति**
भारत	भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1) (ए)	भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(2)	01. राज्य की संप्रभुता आैर अखंडता । 02. राज्य की सुरक्षा। 03. विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध। 04. सार्वजनिक व्यवस्था। 05. शालीनता आैर नैतिकता। 06. न्यायालय की अवमानना। 07. मानहानि 08. किसी अपराध के लिए उकसाना।
यूके	मानवाधिकार अधिनियम 1998 के अनुच्छेद 10(1)	मानवाधिकार अधिनियम 1998 के अनुच्छेद 10(2)	01. राष्ट्रीय सुरक्षा। 02. प्रादेशिक अखंडता या सार्वजनिक सुरक्षा।

			03. अव्यवस्था या अपराध की रोकथाम के लिए, स्वास्थ्य या नैतिकता की सुरक्षा के लिए। 04. दूसरों की प्रतिष्ठा अधिकारों की सुरक्षा के लिए । 05. गोपनीय रूप से प्राप्त सूचन के प्रकटीकरण को रोकने के लिए, या 06. न्यायपालिका की सत्ता आैर निष्पक्षता बनाए रखने के लिए।
यू०एस०ए०	अमेरिकी संविधान का पहला संशोधन के तहत	संविधान में विशिष्ट रूप से कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है, लेकिन माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा में कुछ प्रतिबंधों को स्वीकार किया गया है।	01. अश्लीलता, जैसा कि रोथ बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका 354 यू०एस० 476 (1957) में माना गया है। 02. चाईल्ड पोर्नोग्राफी, जैसा कि एशक्रॉफ्ट बनाम फ्री स्पीच कोएलिशन 435 यू०एस० 234 (2002) में माना गया है। 03. लड़ाई के शब्द आैर सच्ची धमकी, जैसा कि चैप्लिंस्की बनाम न्यू हैम्पशायर, 315 यू०एस० 568 (1942) आैर वर्जीनिया बनाम ब्लैक 538 यू०एस० 343, 363

			(2003) में क्रमशः माना गया है।
आस्ट्रेलिया	आस्ट्रेलियाई संविधान में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में नहीं कहा गया है, हालांकि उच्च न्यायालय ने माना है कि राजनैतिक संचार की निहित स्वतंत्रता संविधान द्वारा बनाई गई प्रणाली और जिम्मेदार सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले एक अनिवार्य हिस्से के रूप में मौजूद है। यह व्यक्तियों को सीधे दिए गए अधिकार के बजाय सरकारी प्रतिबंध से स्वतंत्रता के रूप में कार्य करता है। आस्ट्रेलिया 07 प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों का एक पक्ष है। वाक् और अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का अधिकार राजनैतिक अधिकारों	**01.**आई०सी०सी० पी०आर० के अनुच्छेद 19(3), 20 में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रा पर प्रतिबंध है और अनिवार्य आरक्षक/घोषणा के अधीन देशों को राष्ट्रीय नस्लीय या धार्मिक आधार पर व्यक्तियों की निंदा करने को गैर कानूनी घोषित करने की आवश्यकता है। आस्ट्रेलिया ने अनुच्छेद 20 के संबंध में एक घोषणा की है कि मौजूदा राष्ट्रमंडल और राज्य कानून प्रर्याप्त माने जाते हैं और इन मामलों पर आगे कोई प्रतिबंध लगाने वाला और कोई कानून पेश न करने	**अंतर्राष्ट्रीय संधियों के अंतर्गत** 01. दूसरों की प्रतिष्ठा के अधिकार। 02. राष्ट्रीय सुरक्षा। 03. सार्वजनिक व्यवस्था। 04. सार्वजनिक स्वस्थ्य या सार्वजनिक नैतिकता **दण्ड संहिता अधिनियम 1995 के अंतर्गत** 01. बल या हिंसा द्वारा संविधान या सरकार के वैध प्राधिकार को उखाड़ फेंकने के लिए प्रेरित करने से संबंधित अपराध, और 02. दूर संचार कैरिज सेवा का उपयोग जानबुझकर धमकी देने वाले, परेशान करने वाले या आपत्तिजनक तरीके से करने से संबंधित अपराध और कैरिज सेवा का उपयोग, धमकी देने वाले, परेशान करने वाले या आपत्तिजनक सामग्री का संचार करने के लिए करना। 03. नस्लीय भेदभाव अधिनियम 1975 के तहत नस्लीय

	पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा (आर्ई०सी०सी०पी०आर०) के अनुच्छेद 19 आैर 20 आैर सभी नस्लीय भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन (सी०र्ई०आर० डी०) के अनुच्छेद 04 आैर 05, बाल अधिकारों पर कन्वेंशन (सी०आर०सी०) का अनुच्छेद 12 आैर 13 आैर विकलांगता युक्त व्यक्तियों के अधिकारों पर कन्वेंशन सी०आर०पी०डी० के अनुच्छेद 21	का अधिकार सुरक्षित है। **02.** दण्ड संहिता अधिनियम 1995 **03.** नस्लीय भेदभाव अधिनियम 1975	भेदभाव को बढ़ावा देने वाला भाषण या अभिव्यक्ति।
यूरोपीय युनियन	यूरोपीय मानवाधिकार सम्मेलन 1950 का अनुच्छेद 10 (1)	यूरोपीय मानवाधिकार सम्मेलन 1950 का अनुच्छेद 10 (2)	01. राष्ट्रीय सुरक्षा क्षेत्रीय अखंडता या सार्वजनिक सुरक्षा के हित में। 02. अव्यवस्था या अपराध की रोकथाम के लिए। 03. स्वास्थ्य या नैतिकता की सुरक्षा के लिए। 04. प्रतिष्ठा या दूसरों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए। 05. गोपनीय रूप से प्राप्त

			जानकारी के प्रकटीकरण को रोकने के लिए, या 06. न्यायपालिका की सत्ता आैर निष्पक्षकता बनाए रखने के लिए।
दक्षिण अफ्रीका गणराज्य	दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान 1996 के अधिकारों के विधेयक का अनुच्छेद 16(1)	दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान 1996 के अधिकारों के विधेयक का अनुच्छेद 16(2)	01. युद्ध के लिए प्रचार। 02. आसन्न में हिंसा को भड़काना। 03. नस्ल, जाति, लिंग, धर्म पर आधारित घृणा की वकालत आैर जो नुकसान पहुंचाने के लिए उकसावे का गठन करती है।

32. चूंकि अनुच्छेद 19 के खंड (2) में निहित प्रतिबंधों के आठ शीर्षों की रक्षा करना चाहते हैंः

(i) व्यक्ति-अपनी गरिमा, प्रतिष्ठा, शारीरिक स्वायत्तता एवं संपत्ति के उल्लंघन के खिलाफ;

(ii) समाज के विभिन्न वर्ग जो विभिन्न धार्मिक मान्यताओं/भावनाओं को स्वीकार करते हैं एवं उनका पालन करते हैं; अपनी मान्यताओं एवं भावनाओं को आहत करने के खिलाफ

(iii) विभिन्न जातियों, भाषाई पहचान आदि से संबंधित नागरिकों के वर्गों/समूहों द्वारा उनकी पहचान पर हमले के खिलाफ;

(iv) महिलाएँ एवं बच्चे-अपने विशेष अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ

(v) राज्य-अपनी सुरक्षा के भंग के खिलाफ;

(vii) देश-अपनी संप्रभुता एवं अखंडता पर हमले के खिलाफ;

(vii) न्यायालय-अपने अधिकार को कमजोर करने के प्रयास के खिलाफ,

हम सोचते हैं कि अनुच्छेद 19 के खंड (2) में निहित प्रतिबंध संपूर्ण हैं एवं इसमें किसी प्रतिबंध को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है।

33. किसी भी स्थिति में अनुच्छेद 19 के खंड (2) के अनुसार कोई प्रतिबंध लगाने वाला कानून केवल राज्य द्वारा बनाया जा सकता है, न कि न्यायालय द्वारा। **न्यायालय के लिए संवैधानिक योजना में परिकल्पित भूमिका, मौलिक अधिकारों के मंदिर में प्रतिबंधों के प्रवेश को सख्ती से रोकने के लिए एक द्वारपाल (और एक विवेक रक्षक) की है।न्यायालय की भूमिका वैध प्रतिबंधों द्वारा सीमित मौलिक अधिकारों की रक्षा करना है न कि प्रतिबंधों की रक्षा करना एवं अधिकारों को अवशिष्ट विशेष अधिकार बनाना।** अनुच्छेद 19 का खंड (2)(i) किसी भी मौजूदा कानून के संचालन; एवं (ii) राज्य द्वारा किसी भी कानून के निर्माण को बचाता है ।इसलिए, यह हमारे लिए नहीं है कि हम पहले से मौजूद प्रतिबंधों के अलावा एक या अधिक प्रतिबंध जोडें।

<u>प्रश्न संख्या 1 का दूसरा भाग</u>

34. प्रश्न संख्या 1 का दूसरा भाग यह है कि क्या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए गए आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर अतिरिक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

35. प्रश्न संख्या 1 का यह भाग प्रश्न संख्या 1 के पहले भाग से निपटने के दौरान आंशिक रूप से उत्तरित हो चुका है। **एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (प्राइवेट) लिमिटेड (सुप्रा) क्रिकेट एसोसिएशन आॅफ बंगाल (सुप्रा)** आैर **रामलीला मैदान घटना (सुप्रा)** में इस न्यायालय के निर्णय इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर प्रदान करते हैं कि क्या अनुच्छेद 19 (2) में न पाए गए आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर अतिरिक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

36. इस सवाल का कि क्या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में अतिरिक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, इस न्यायालय द्वारा **सकल पेपर्स** में इसका भी जवाब दिया गया है। **सकल पेपर्स में,** केंद्र सरकार ने समाचार पत्र (मूल्य एवं पृष्ठ) अधिनियम, 1956 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए दैनिक समाचार पत्र (मूल्य एवं पृष्ठ) आदेश, 1960 नामक एक आदेश जारी किया, जिसमें मूल्यानुसार एक समाचार पत्र द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले पृष्ठों की अधिकतम संख्या निर्धारित की गई थी।इसलिए, एक मराठी समाचार पत्र के प्रकाशक ने अधिनियम एवं आदेश दोनों की संवैधानिकता को चुनौती दी।उक्त मामले में राज्य की ओर से उठाए गए तर्कों में से एक यह था कि समाचार पत्रों की गतिविधियों के दो पहलू हैं, अर्थात्

(i) समाचारों एवं विचारों का प्रसार; एवं (ii) वाणिज्यिक पहलू।जबकि पहला अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत आएगा, दूसरा अनुच्छेद 19 (1) (जी) के तहत आएगा।

37. चूँकि ये दोनों अधिकार स्वतंत्र हैं एवं चूंकि अनुच्छेद 19 (1) (जी) के तहत अधिकार पर प्रतिबंध अनुच्छेद 19 (6) के तहत आम जनता के हित में लगाए जा सकते हैं, इसलिए राज्य द्वारा **सकल पेपर्स** में यह तर्क दिया गया था कि अधिनियम एवं आदेश अनुच्छेद 19 के खंड (6) द्वारा सुरक्षित हैं। लेकिन राज्य के उक्त तर्क को **सकल पेपर्स** में संविधान पीठ ने निम्नलिखित शब्दों में खारिज कर दियाः

"यह राज्य की शक्ति के भीतर हो सकता है कि वह आम जनता के हित में किसी नागरिक के व्यवसाय करने के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए, लेकिन राज्य को संविधान द्वारा गारंटीकृत उस नागरिक की किसी भी अन्य स्वतंत्रता को प्रत्यक्ष रूप से एवं तुरंत कम करके इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनुमति नहीं है एवं जो उसी आधार पर हनन के लिए अतिसंवेदनशील नहीं है, जैसे कि अनुच्छेद 19 की धारा (6) में निर्धारित किया गया है। इसलिए, किसी नागरिक की व्यावसायिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने के उद्देश्य से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को केवल राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के हित में या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के लिए उकसाने के संबंध में प्रतिबंधित किया जा सकता है। इसे, व्यापार करने की स्वतंत्रता की तरह, आम जनता

के हित में कम नहीं किया जा सकता है।**यदि इसे सीधे प्रभावित करने वाले कानून को चुनौती दी जाती है तो इसका कोई जवाब नहीं है कि इसके द्वारा लागू किए गए प्रतिबंध सी. एल. एस. के तहत उचित हैं।(3) से (6) तक। अनुच्छेद 19 की योजना अलग-अलग स्वतंत्रताओं की गणना करना है एवं फिर यह निर्दिष्ट करना है कि वे किस सीमा तक प्रतिबंधों के अधीन हो सकते हैं एवं किन उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए ऐसा किया जा सकता है।एवं नागरिक को एवं साथ सभी स्वतंत्रताओं का आनंद लेने का अधिकार है।(1) एक स्वतंत्रता को दूसरे की तुलना में पसंद नहीं करता है।यही इस खंड का स्पष्ट अर्थ है।इससे यह पता चलता है कि राज्य ऐसा कानून नहीं बना सकता है जो एक स्वतंत्रता को सीधे प्रतिबंधित करता है, यहां तक कि दूसरी स्वतंत्रता का बेहतर आनंद प्राप्त करने के लिए भी नहीं। इसलिए, यह मानने का सबसे बड़ा कारण यह है कि राज्य दूसरी स्वतंत्रता पर अन्यथा अनुमेय प्रतिबंध लगाकर एक स्वतंत्रता को सीधे प्रतिबंधित नहीं कर सकता है।"**

38. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि **सकल पेपर्स** एक ऐसा मामला था जिसमें न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के दो अलग-अलग मौलिक अधिकार थे एवं राज्य द्वारा बनाया गया कानून उन दो मौलिक अधिकारों में से एक के प्रयोग पर अनुमत प्रतिबंधों के भीतर आता था।हालाँकि, अनुच्छेद 19 के खंड (6) में पाया जाने वाला प्रतिबंध अनुच्छेद 19 के खंड (2) में उपलब्ध नहीं था।ऐसी परिस्थितियों में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक मौलिक अधिकार के प्रयोग पर वैध रूप से लगाया गया प्रतिबंध एक ही व्यक्ति के दूसरे मौलिक अधिकार से निपटने के दौरान

स्वचालित रूप से मान्य नहीं हो सकता है, जिसका प्रतिबंध संवैधानिक रूप से विभिन्न मापदंडों पर आधारित है।

39. **सकल पेपर्स** में संघर्ष न तो एक व्यक्ति के मौलिक अधिकार और न ही दूसरे व्यक्ति के मौलिक अधिकार के बीच था आैर न ही एक मौलिक अधिकार आैर उसी व्यक्ति को दूसरे मौलिक अधिका के बीच था। यह एक ऐसा मामला था जिसमें किसी मौलिक अधिकार पर वैध रूप से लगाए गए प्रतिबंध को उसी व्यक्ति के एक अन्य मौलिक अधिकार के तहत अमान्य माना गया था। हस्तगत मामलों में, जिस बात को पेश करने की कोशिश की जा रही है, वह एक व्यक्ति द्वारा मौलिक अधिकार के प्रयोग से उत्पन्न होने वाला एक संभावित संघर्ष है, जो इस तरह से दूसरे व्यक्ति के मौलिक अधिकार के स्वतंत्र प्रयोग का उल्लंघन करता है। लेकिन यह संघर्ष सदियों पुराना है।

40. सभी नागरिकों द्वारा सभी मौलिक अधिकारों का प्रयोग तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान करे। जैसा कि विद्वान महान्यायवादी एवं सुश्री अपराजित सिंह, विद्वान न्यायमित्र द्वारा स्वीकार किया गया है कि जब भी यह पाया गया कि किसी व्यक्ति द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रयोग, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मौलिक अधिकारों के प्रयोग के लिए उपलब्ध स्थान में घुसपैठ का कारण बनता है। इस न्यायालय ने हमेशा एक संतुलन बनाये रखा है, प्रस्तावना में भी **"बंधुत्व"** पर जोर देना इस बात का संकेत है कि सभी मौलिक अधिकारों का अस्तित्व एवं लोकतंत्र का अस्तित्व ही नागरिकों के आपसी सम्मान, समायोजन एवं शांति एवं

सौहाद्र के साथ सह-अस्तित्व की इच्छा पर निर्भर करता है। आइए अब हम कुछ उदाहरण देखें। अनुच्छेद 51-ए (ई) के तहत देश के प्रत्येक नागरिक को"धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय या सांप्रदायिक विविधताओं से परे भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और समान भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने और महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का त्याग करने" का मौलिक कर्त्तव्य भी एक संकेतक है कि कोई भी अपने मौलिक अधिकार का प्रयोग इस तरह से नहीं कर सकता है जो दूसरे के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है।

41. जैसा कि **क्रिकेट एसोसिएशन ऑफ बंगाल में जे. जीवन रेड्डी** ने स्पष्ट किया है, कोई भी अपने बोलने के अधिकार का प्रयोग इस तरह से नहीं कर सकता है जिससे किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार का उल्लंघन हो। **बंगाल क्रिकेट संघ** में निर्णय के पैराग्राफ 152 में, जे. जीवन रेड्डी ने कहाः **यह सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य हो सकता है कि यह अधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध हो एवं इसे कुछ लोगों द्वारा बाकी लोगों के नुकसान के लिए अपहृत न किया जाए। यह दायित्व हमारे संविधान की प्रस्तावना से आता है, जो अपने सभी नागरिकों को विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता सुरक्षित करने का प्रयास करता है। हमारी संवैधानिक योजना के तहत राज्य केवल भाग-III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का सम्मान करने के दायित्व के तहत नहीं है, बल्कि उन परिस्थितियों को सुनिश्चित करने के लिए भी एक समान दायित्व के तहत है, जिसमें उन अधिकारों का सभी द्वारा सार्थक एवं प्रभावी ढंग से आनंद लिया जा सके।"**

42. **बंगाल क्रिकेट संघ** के मामले में जीवन रेड्डी, जे. की राय से लिया गया उपरोक्त अंश**सहारा इंडिया रियल एस्टेट कॉर्पोरेशन लिमिटेड** के मामले में संविधान पीठ द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था।

43. ऐसे कई उदाहरण हैं जहां इस न्यायालय ने या तो संतुलन बनाया या एक के मौलिक अधिकार को दूसरे के मौलिक अधिकार से थोड़ा उपर रखा। दिलचस्प बात यह है कि उनमें से कई मामलों में अनुच्छेद 19 (1) (ए) के संदर्भ में एक व्यक्ति के अधिकार और अनुच्छेद 21 के अनुसार दूसरे के अधिकार के संदर्भ में प्रतिस्पर्धी दावे सामने आए।आइए अब उनमें से कुछ पर एक नज़र डालते हैं।

(i) **आर० राज गोपाल (सुप्रा)** में इस न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आैर अनुच्छेद 21 के तहत सरकारी अधिकारियों की गोपनीयता का अधिकार एक दूसरे के विरूद्ध खड़े अधिकार हैं।

26. अब हम उपरोक्त चर्चा से निकले व्यापक सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैंः

(1) निजता का अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा इस देश के नागरिकों को दिए गए जीवन एवं स्वतंत्रता के अधिकार में निहित है।यह "अकेले रहने का अधिकार" है।एक नागरिक को अन्य मामलों के अलावा अपनी निजता, अपने परिवार, विवाह, प्रजनन, मातृत्व, बच्चे पैदा करने एवं शिक्षा की रक्षा करने का अधिकार है।उनकी सहमति के बिना कोई भी उपरोक्त मामलों से संबंधित

कुछ भी प्रकाशित नहीं कर सकता है-चाहे वह सच्चा हो या अन्यथा एवं चाहे वह प्रशंसनीय हो या आलोचनात्मक।यदि वह ऐसा करता है, तो वह संबंधित व्यक्ति की निजता के अधिकार का उल्लंघन करेगा एवं नुकसानी के लिए कार्रवाई में उत्तरदायी होगा।हालाँकि, स्थिति अलग हो सकती है, यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से खुद को विवाद में डालता है या स्वेच्छा से किसी विवाद को आमंत्रित करता है या उठाता है।

(2) उपरोक्त नियम इस अपवाद के अधीन है कि उपरोक्त पहलुओं से संबंधित कोई भी प्रकाशन आपत्तिजनक नहीं हो जाता है यदि ऐसा प्रकाशन न्यायालय के रिकॉर्ड सहित सार्वजनिक रिकॉर्ड पर आधारित है।यही कारण है कि एक बार जब कोई मामला सार्वजनिक रिकॉर्ड का विषय बन जाता है, तो निजता का अधिकार अब नहीं रहता है एवं यह प्रेस एवं मीडिया द्वारा टिप्पणी के लिए एक वैध विषय बन जाता है। लेकिन हमारा मानना है कि शालीनता के हित में [अनुच्छेद 19 (2)] इस नियम के लिए एक अपवाद बनाया जाना चाहिए, अर्थात, एक महिला जो यौन उत्पीड़न, अपहरण, अपहरण या इसी तरह के अपराध की शिकार है, उसे उसके नाम और घटना को प्रेस/मीडिया में प्रचारित किए जाने के कारण उसके अपमान में वृद्धि नहीं किया जाना चाहिए।

(3) ऊपर (1) में दिए गए नियम का एक और अपवाद है-वास्तव में, यह एक अपवाद नहीं है बल्कि एक स्वतंत्र नियम है।सार्वजनिक अधिकारियों के

मामले में, यह स्पष्ट है, निजता का अधिकार, या उस मामले के लिए, नुकसान के लिए कार्रवाई का उपाय उनके कृत्यों एवं उनके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के लिए प्रासंगिक आचरण के संबंध में उपलब्ध नहीं है।यह तब भी है जब प्रकाशन उन तथ्यों एवं बयानों पर आधारित है जो सच नहीं हैं, जब तक कि अधिकारी यह स्थापित नहीं करता है कि प्रकाशन (प्रतिवादी द्वारा) सच्चाई की अनदेखी से किया गया था। ऐसे मामले में, प्रतिवादी (प्रेस या मीडिया के सदस्य) के लिए यह साबित करना पर्याप्त होगा कि उसने तथ्यों के उचित सत्यापन के बाद काम किया है; उसके लिए यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि उसने जो लिखा है वह सच है ।बेशक, जहां प्रकाशन गलत सिद्ध होता है एवं द्वेष या व्यक्तिगत दुश्मनी से प्रेरित होता है, तो प्रतिवादी का कोई बचाव नहीं होगा एवं वह नुकसान के लिए उत्तरदायी होगा।यह समान रूप से स्पष्ट है कि अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए प्रासंगिक मामलों में, लोक अधिकारी को किसी भी अन्य नागरिक के समान सुरक्षा प्राप्त है, जैसा कि ऊपर (1) एवं (2) में समझाया गया है।यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायपालिका, जो न्यायालय एवं संसद एवं विधानसभाओं की अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति से संरक्षित है, क्योंकि उनके विशेषाधिकार भारत के संविधान के क्रमशः अनुच्छेद 105 एवं 104 द्वारा संरक्षित हैं, इस नियम के अपवाद हैं।

(4) जहाँ तक सरकार, स्थानीय प्राधिकरण एवं सरकारी शक्तियों का प्रयोग करने वाले अन्य अंगों एवं संस्थानों का संबंध है, वे उन्हें बदनाम करने के लिए हर्जाने के लिए मुकदमा नहीं कर सकते हैं।

(5) हालांकि, नियम 3 एवं 4 का मतलब यह नहीं है कि आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम, 1923 या कानून के बल वाला कोई भी समान अधिनियम या प्रावधान प्रेस या मीडिया को बाध्य नहीं करता है।

(6) राज्य या उसके अधिकारियों को प्रेस/मीडिया पर प्रतिबंध लगाने या पूर्व प्रतिबंध लगाने का अधिकार देने वाला कोई कानून नहीं है।"

(ii) **पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) (सुप्रा)** में, जिन अधिकारों को एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा के रूप में माना जाता था, वे मतदाता के सूचना के अधिकार के तहत चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के जीवनसाथी की निजता का अधिकार था।अपनी अलग लेकिन लगभग सहमत राय में, पी. वेंकटरामा रेड्डी, जे. ने इस स्थिति को इस प्रकार व्यक्त कियाः

"121....

जब किसी व्यक्ति की निजता के अधिकार एवं नागरिक के सूचना के अधिकार के बीच प्रतिस्पर्धा होती है, तो पहले के अधिकार को बाद के अधिकार के अधीन करना पड़ता है क्योंकि यह व्यापक सार्वजनिक हित में काम करता है।"

(iii) ध्वनि प्रदूषण (v) में, रे (सुप्रा) में, जो अधिकार एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहे थे वे, अनुच्छेद 19 (1) (ए) एवं अनुच्छेद 21 में निहित अधिकार थे। टकराव लोगों एवं पड़ोस के लोगों के बीच था। इस न्यायालय ने कहाः

"11. जो लोग शोर मचाते हैं वे अक्सर अनुच्छेद 19 (1) (ए) के पीछे शरण लेते हैं जो बोलने की स्वतंत्रता एवं अभिव्यक्ति के अधिकार की गुहार लगाते हैं।निस्संदेह, बोलने की स्वतंत्रता एवं अभिव्यक्ति का अधिकार मौलिक अधिकार हैं लेकिन अधिकार निरपेक्ष नहीं हैं।लाउडस्पीकरों की मदद से अपने भाषण की आवाज़ को बढ़ाकर शोर मचाने के मौलिक अधिकार का कोई भी दावा नहीं कर सकता है। जबकि किसी को बोलने का अधिकार है, तो दूसरों को सुनने या सुनने से इनकार करने का अधिकार भी है। किसी को सुनने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है एवं कोई भी यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे अपनी आवाज़ दूसरों के कानों या दिमाग में घुसाने का अधिकार है। कोई भी शोर मचाकर आक्रामकता में शामिल नहीं हो सकता है। यदि कोई कृत्रिम उपकरणों की सहायता से अपनी वाणी की आवाज की मात्रा बढ़ाता है ताकि अप्रिय या अप्रिय स्तर तक उठाए गए शोर को सुनने के लिए अनिच्छुक व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से सुनने के लिए मजबूर किया जा सके, तो बोलने वाला व्यक्ति अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त दूसरों के शांतिपूर्ण, आरामदायक एवं प्रदूषण मुक्त जीवन की गारंटी के अधिकार का उल्लंघन कर रहा है। अनुच्छेद

19 (1) (ए) को अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार को पराजित करने के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता है।

(iv) **राम जेठमलानी** मामले में अनुच्छेद 19 (1) (ए) में निहित जानने के अधिकार एवं अनुच्छेद 21 के तहत निजता के अधिकार में संघर्ष देखा गया था। निजता के अधिकार पर अन्य देशों में बैंक खाते रखने वाले व्यक्तियों द्वारा जोर दिया गया था।न्यायालय को नागरिकों के जानने के अधिकार के साथ इसे संतुलित करना था।इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में प्रस्ताव दियाः

"84. अनुच्छेद 32 के खंड (1) के तहत मौलिक अधिकारों की सुरक्षा को प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के नागरिकों के अधिकारों को अनुच्छेद 21 के तहत नागरिकों एवं व्यक्तियों के अधिकारों के खिलाफ संतुलित किया जाना चाहिए। बाद वाले को धन के लिए बेनामी जैसी प्रणालीगत समस्याओं के तत्काल समाधान खोजने की तीव्र इच्छा के कारण त्याग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इससे खतरनाक परिस्थितियां पैदा हो जाएगी, जिसमें अन्य नागरिकों द्वारा सतर्कता जांच, पूछताछ एवं दंगा भड़काना अन्य बात बन सकती है। मौलिक अधिकारों को बनाए रखने के लिए इस न्यायालय में याचिका दायर करने का नागरिकों का अधिकार इस क्रम में दिया गया है कि नागरिक, संवैधानिक परियोजना की रक्षा के लिए राज्य के कामकाज के बारे में हमेशा सतर्क रहें। उस अधिकार को साथी नागरिकों के जांचकर्ता होने तक नहीं बढ़ाया जा सकता है ।एक जांच आदेश, जिसमें नागरिकों के निजता के मौलिक

अधिकार का साथी नागरिकों द्वारा उल्लंघन किया जाता है, सामाजिक व्यवस्था के लिए विनाशकारी है।मौलिक अधिकारों की धारणा, जैसे कि जीवन के अधिकार के हिस्से के रूप में निजता का अधिकार, केवल यह नहीं है कि राज्य को उन्हें उनसे वंचित करने से रोका गया है, इसमें समाज में दूसरों के कार्यों के खिलाफ उन्हें बनाए रखने की राज्य की जिम्मेदारी भी शामिल है, यहां तक कि उन अन्य लोगों द्वारा मौलिक अधिकारों के प्रयोग के संदर्भ में भी।"

(v) **सहारा इंडिया रियल एस्टेट कॉर्पोरेशन लिमिटेड** में प्रेस की स्वतंत्रता एवं निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार प्रतिस्पर्धी अधिकार थे।इस मामले में, संविधान पीठ इस प्रश्न पर विचार कर रही थी कि क्या न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाही के प्रकाशन को स्थगित करने का आदेश अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत प्रतिबंध का गठन करेगा एवं क्या ऐसा प्रतिबंध अनुच्छेद 19 (2) के तहत सुरक्षित है।इस प्रश्न का उत्तर संविधान पीठ ने पैरा 42 में इस प्रकार दिया थाः"

42. सबसे पहले, हमें स्थगन के ऐसे आदेशों की प्रकृति को समझना चाहिए।प्रचार स्थगन आदेशों को अनुच्छेद 19 (1) (ए) के संदर्भ में देखा जाना चाहिए, जो कि पूर्ण अधिकार नहीं है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (स्वतंत्र प्रेस सहित) एवं निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार के बीच टकराव पर आधारित अमेरिकी टकराव मॉडल भारतीय संविधान पर लागू नहीं होगा।कुछ मामलों में, यहां तक कि आरोपी भी प्रचार चाहता है (अपमानजनक अर्थों में नहीं) क्योंकि

खुलापन एवं पारदर्शिता एक निष्पक्ष सुनवाई का आधार है जिसमें न्यायाधीशों सहित मुकदमे के सभी पक्षकार जांच के दायरे में होते हैं एवं साथ ही लोगों को पता चलता है कि अदालत कक्ष के अंदर क्या चल रहा है। ये पहलू अनुच्छेद 19 (1) एवं अनुच्छेद 21 के दायरे में आते हैं। जब समान महत्व के अधिकारों का टकराव होता है, तो न्यायालयों को संतुलन तकनीकों या पुनर्संतुलन के आधार पर उपायों को विकसित करना पड़ता है, जिसके तहत दोनों अधिकारों को संवैधानिक योजना में समान स्थान दिया जाता है एवं यही "स्थगन आदेश" करता है, जो इसके बाद उल्लिखित मापदंडों के अधीन है। लेकिन, क्या होता है जब अदालतों को साथ-साथ रखे गए महत्वपूर्ण सार्वजनिक हितों को संतुलित करने की आवश्यकता होती है।उदाहरण के लिए, ऐसे मामलों में जहां खुले न्याय की उपधारणा को निर्दोषता की उपधारणा के साथ संतुलित किया जाना है, जिसे जैसा कि ऊपर कहा गया है, अब मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है।ये धारणाएँ उस समय मौजूद थीं जब संविधान बनाया गया था [अनुच्छेद 19 (2) के तहत मौजूदा कानून] एवं वे आज तक न केवल अनुच्छेद 14 के तहत कानून के शासन के हिस्से के रूप में बल्कि अनुच्छेद 21 के अधिकार के रूप में भी जारी हैं।अनुच्छेद 21 में संवैधानिक संरक्षण जो एक निष्पक्ष सुनवाई के लिए व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करता है, कानून में, अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर काम करने वाला एक वैध प्रतिबंध है, क्योंकि यह

एक संवैधानिक प्रावधान है।यह देखते हुए कि स्थगन आदेश तीसरे पक्ष की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती करते हैं, ऐसे आदेश केवल उन मामलों में पारित किए जाने चाहिए जिनमें मुकदमें की निष्पक्षता या न्याय के उचित प्रशासन के लिए पूर्वाग्रह का वास्तविक एवं पर्याप्त जोखिम है, जो न्यायमूर्ति कार्डोजो के शब्दों में "सभी कानूनों का अंत एवं उद्देश्य" है।हालांकि, स्थगन के ऐसे आदेशों को सीमित अवधि के लिए एवं प्रकाशन की सामग्री को बाधित किए बिना दिया जाना चाहिए।उन्हें केवल तभी पारित किया जाना चाहिए जब मुकदमे (अदालती कार्यवाही) की निष्पक्षता के लिए वास्तविक एवं पर्याप्त जोखिम को रोकने के लिए आवश्यक हो, यदि उचित वैकल्पिक तरीके या उपाय जैसे कि स्थान का परिवर्तन या मुकदमे को स्थगित करना उक्त जोखिम को नहीं रोकेगा एवं जब ऐसे आदेशों के हितकारी प्रभाव पूर्व प्रतिबंध से प्रभावित लोगों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के हानिकारक प्रभावों से अधिक होंगे।स्थगन का आदेश केवल उन मामलों में उपयुक्त होगा जहां संतुलन परीक्षण अन्यथा सीमित अवधि के लिए गैर-प्रकाशन का पक्षधर है।..."

(vi) **थलप्पलम सर्विस कोआॅपरेटिव बैंक लिमिटेड (सुप्रा)** में अनुच्छेद 19 (1) (ए) के हिस्से के रूप में रखे गए जानने के अधिकार एवं अनुच्छेद 21 का हिस्सा होने के कारण गोपनीयता के अधिकार को सहकारी बैंकों में खातों के धारकों एवं जनता के सदस्यों के बीच एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा के रूप में माना जाता था, जो विवरण चाहते थे।इस न्यायालय ने पैराग्राफ 64 में कहाः"

64. इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि निजता का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 का एक पवित्र पहलू है, इस कानून ने धारा 8 (जे) के तहत अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत सारे सुरक्षा उपाय किए हैं, जैसा कि पहले ही संकेत दिया गया है।यदि माँगी गई जानकारी व्यक्तिगत है एवं इसका किसी भी सार्वजनिक गतिविधि या हित से कोई संबंध नहीं है या यह बड़े सार्वजनिक हित को कम नहीं करेगा, तो सार्वजनिक प्राधिकरण या संबंधित अधिकारी उन जानकारी को प्रदान करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य नहीं है।गिरीश रामचंद्र देशपांडे बनाम केंद्रीय सूचना आयुक्त (2013) 1 एस. सी. सी. 212, मामले में इस न्यायालय के हाल के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है। जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि सूचना प्राप्त करने में कोई प्रामाणिक सार्वजनिक हित नहीं है, इसलिए उक्त जानकारी का प्रकटीकरण अधिनियम की धारा 8 (1) (जे) के तहत व्यक्ति की निजता पर अनुचित आक्रमण का कारण बनेगा। इसके अलावा, यदि प्राधिकरण को पता चलता है कि मांगी गई जानकारी को व्यापक सार्वजनिक हित में उपलब्ध कराया जा सकता है, तो अधिकारी को जानकारी प्रदान करने से पहले अपने कारणों को लिखित रूप में दर्ज करना चाहिए, क्योंकि जिस व्यक्ति से जानकारी मांगी जाती है, उसे भी संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत गोपनीयता का अधिकार प्राप्त है।"

(vi) **सुब्रमण्यम स्वामी (सुप्रा)** मामले में अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत गारंटीकृत किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद 21

के तहत गारंटीकृत किसी अन्य व्यक्ति की गरिमा आैर प्रतिष्ठा के अधिकार के बराबर प्रतिस्पर्धी अधिकार थे। इस मामले में, न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

"98. एक उत्साही लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक अत्यधिक मूल्यवान मूल्य है।लेखकों, दार्शनिकों एवं विचारकों ने इसे एक विचारशील समाज की व्यक्तिगतता एवं समग्र प्रगति के लिए एक बेशकीमती संपत्ति माना है, क्योंकि यह तर्क की अनुमति देता है, असहमति को एक सम्मानजनक स्थान देता है, एवं विपरीत रुख का सम्मान करता है।ऐसे समर्थक हैं जिन्होंने इसे जीवन से अधिक ऊंचे स्थान पर स्थापित किया है एवं इसके लिए मृत्यु का सौदा करने में संकोच नहीं किया है। कुछ लोगों ने निर्दयी व्यवहार के लिए मजबूर मौन की निंदा की है। विलियम डगलस ने रोगग्रस्त मवेशियों एवं अशुद्ध मक्खन को विनियमित करने जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के विनियमन की निंदा की है।न्यायालय के पास कई ऐसे अधिकार हैं जो इसकी बहुमूल्य प्रकृति को महसूस करते हैं एवं प्रतीत होता है कि महिमावान पवित्रता ने इसे एक सावधानीपूर्वक संरचित पिरामिड में डाल दिया है।बोलने की स्वतंत्रता को सबसे स्वतंत्र व्यक्ति के विचार के रूप में माना जाता है जिसने अपने विचारों को कृत्रिम रूप से विकसित सामाजिक मानदंडों के लिए गिरवी नहीं रखा है, एवं इसके उल्लंघन को मूर्खता के रूप में नहीं माना जाता है।जोर देने की आवश्यकता नहीं है, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को विशिष्ट महत्व की अनुमति दी

जानी चाहिए, लेकिन सवाल यह है कि क्या इसे इतना दिखावटी या उचित माना जाना चाहिए कि यह किसी अन्य व्यक्ति या समूह या व्यक्तियों के समूह की प्रतिष्ठा को पूरी तरह से धूमिल कर दे, ताकि यह माना जाए कि मानहानि के कारण आपराधिक मुकदमा चलाना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आैर विचारों की अभिव्यक्ति के अधिकार का उल्लंघन है ..."

(viii) आशा रंजन (सुप्रा) मामले में, आरोपी बनाम पीड़ित के स्वतंत्र सुनवार्इ के अधिकार पर विचार किया गया। न्यायालय ने अनुच्छेद 61 में प्रतिपादित किया-

"61. जैसा कि कहा गया है, ऐसी परिस्थितियाँ उभर सकती हैं, जिनमें अंतर-मौलिक अधिकारों के बीच संतुलन के लिए आवश्यक हो सकता हैं। यह स्पष्ट रूप से समझा गया है कि दो मौलिक अधिकारों या अंर्तमौलिक अधिकारों क बीच संतुलन स्थापित करते समय जो परीक्षण लागू किया जाना है, उसमें लागू सिद्धांत समान मौलिक अधिकारों के बीच अंर्तसंघर्ष में लागू किए जाने वाले सिद्धांत से भिन्न हो सकते हैं। विस्तार से, जैसा कि इस मामले में है, अभियुक्त को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निष्पक्ष सुनवाई का मौलिक अधिकार है। इसी तरह, जो पीड़ित सीधे प्रभावित होते हैं एवं सामूहिक घटक का हिस्सा भी होते हैं, उन्हें निष्पक्ष सुनवाई का मौलिक अधिकार है।इस प्रकार, अधिकार का दावा करने या दावा करने के लिए वैधता रखने वाले दो व्यक्ति हो सकते हैं।वैधता का तथ्य एक प्राथमिक विचार है।यह याद रखना होगा कि कोई

भी मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं है एवं कुछ परिस्थितियों में इसकी सीमाएँ हो सकती हैं।इस प्रकार, राज्य द्वारा अनुमेय सीमाएँ लगाई जाती हैं।उक्त सीमाएँ कानून की सीमा के भीतर होनी चाहिए।हालांकि, जब एक ही अनुच्छेद के तहत प्रदत्त अधिकार का अंतर संघर्ष होता है, जैसे कि इस मामले में निष्पक्ष सुनवाई, जिस परीक्षण को लागू करने की आवश्यकता होती है, तो हम यह सोचने के लिए तैयार होते हैं कि यह "सर्वोपरि सामूहिक हित" या "न्याय वितरण प्रणाली में जनता के विश्वास का निर्वाह होगा। एक उदाहरण दिया जा सकता है।"वर्ग सम्मान" के नाम पर व्यक्तियों का एक समूह, जैसा कि विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में कहा गया है, (2016) 9 एस. सी. सी. 541: (2016) 3 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 621], एक महिला की पसंद को कम या खत्म नहीं कर सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जीवन में अपने साथी को चुनने में महिला का चयन एक वैध संवैधानिक अधिकार है।यह व्यक्तिगत पसंद पर आधारित है जिसे अनुच्छेद 19 के तहत संविधान में मान्यता प्राप्त है, एवं इस तरह के अधिकार से "वर्ग सम्मान" या "सामूहिक सोच" की अवधारणा के आगे झुकने की उम्मीद नहीं की जाती है।ऐसा इसलिए है क्योंकि वर्ग सम्मान की भावना की कोई वैधता नहीं है, भले ही इसका अभ्यास सामूहिक रूप से किसी प्रकार की धारणा के तहत किया जाए।इसलिए, यदि सामूहिक हित या सार्वजनिक हित जो सार्वजनिक हित की सेवा करता है एवं आगे किसी मौलिक अधिकार का दावा करने या जोर देने की वैधता रखता

है, तो ही वह यह कह सकता है कि उनका अधिकार संरक्षित होना चाहिए। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए पीड़ितों के अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अविभाज्य पहलू है एवं जब वे खुद के साथ-साथ सामूहिक रूप से इस अधिकार पर जोर देते हैं, तो जनहित की अवधारणा को बल मिलता है।ऐसी परिस्थितियों में सार्वजनिक हित को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि यह "कानून के शासन" को आगे बढ़ाता है एवं बढ़ावा देता है।..."

(ix) **भारतीय संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले रेलवे बोर्ड बनाम निरंजन सिंह (1969) 1 एस०सी०सी० 502** में एक ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता, पर नियोक्ता द्वारा जारी निर्देशों का उल्लंघन करते हुए रेलवे परिसर के भीतर बैठकों को संबोधित करने के कदाचार का आरोप लगाया गया था। जब उन्होंने अनुच्छेद 19 (1) के खंड (ए), (बी) एवं (सी) के तहत सुरक्षा मांगी, तो न्यायालय ने इसे यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि "जैसे ही किसी आैर के उसकी संपत्ति रखने के अधिकार में हस्तक्षेप होगा, उन स्वतंत्रताआें का प्रयोग समाप्त हो जाएगा।" इस न्यायालय ने आगे कहा कि "उस सीमा की वैधता को अनुच्छेद 19 के उप-अनुच्छेद (2) एवं (3) में निर्धारित परीक्षण द्वारा नहीं आंका जाना चाहिए।

(x) **भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम प्रो. मनुभाई डी. शाह (1992) 3 एस०सी०सी० 637,** में दो मौलिक अधिकार एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा या

संघर्ष में नहीं थे।लेकिन सिनेमेटोग्राफ अधिनियम, 1952 के तहत सेंसरशिप के संदर्भ में एवं एक राज्य संस्थान द्वारा एक आंतरिक पत्रिका में एक लेख प्रकाशित करने से इनकार करने के संदर्भ में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं अपने विचारों के प्रचार के अधिकार पर सवाल उठाए गए थे।रिपोर्ट के पैराग्राफ 23 में, इस न्यायालय ने कहाः" हर अधिकार से संबंधित एक अनुरूप कर्तव्य या दायित्व है एवं इसी तरह भाषण एवं अभिव्यक्ति का मौलिक अधिकार है। इसलिए अनुच्छेद 19 (1 (ए) द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है जैसा कि शायद यू. एस. प्रथम संशोधन के मामले में हैःयह अपने साथ साथी नागरिकों एवं बड़े पैमाने पर समाज के प्रति कुछ जिम्मेदारियों को वहन करता है। एक नागरिक **जो इस अधिकार का प्रयोग करता है, उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके साथी नागरिक को भी ऐसा ही अधिकार है।इसलिए, अधिकार का प्रयोग इस तरह से किया जाना चाहिए कि यह किसी अन्य नागरिक के अधिकार के साथ सीधे टकराव में न आए।"**

44. ऊपर चर्चा किए गए निर्णयों की श्रृंखला से पता चलता है कि जब भी दो या दो से अधिक मौलिक अधिकार या तो टकराव के रास्ते पर प्रतीत होते हैं या एक दूसरे पर वरीयता चाहते हैं, तो इस न्यायालय ने अच्छी तरह से स्थापित कानूनी उपकरणों को लागू करके उनसे निपटा है। इसलिए, हमारा विचार है कि अन्य मौलिक अधिकारों को लागू करने की आड़ में, किसी के मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर अनुच्छेद 19 (2) में निर्धारित प्रतिबंध के अतिरिक्त प्रतिबंध नहीं लगाए जा सकते हैं।

45. हम प्रश्न संख्या 1 का उत्तर निम्नलिखित तरीके से देते हैंः "अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए अनुच्छेद 19 (2) में दिए गए आधार व्यापक हैं। अन्य मौलिक अधिकारों को लागू करने की आड़ में या एक दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्धी दावा करने वाले दो मौलिक अधिकारों की आड़ में, अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले अतिरिक्त प्रतिबंध किसी भी व्यक्ति पर अनुच्छेद 19 (1) (ए) द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर नहीं लगाए जा सकते हैं।"

<u>प्रश्न संख्या 2</u>

46. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा सकता है ? दरअसल, सवाल "दावे" का नहीं लेकिन "प्रवर्तनीयता" का है।

47. कानून के दार्शनिकों द्वारा अपनाए गए वाक्यांश का उपयोग करने के लिए, **सवाल यह है कि क्या संविधान के भाग III का "ऊर्ध्वाधर" या "क्षैतिज" प्रभाव है। जहाँ भी संवैधानिक अधिकार** केवल सरकार एवं सरकारी तंत्रों के आचरण को विनियमित एवं प्रभावित करते हैं, निजी व्यक्तियों के साथ उनके व्यवहार में, उन्हें "एक ऊर्ध्वाधर प्रभाव" कहा जाता है। लेकिन जहां भी संवैधानिक अधिकार निजी व्यक्तियों के बीच संबंधों को भी प्रभावित करते हैं, उन्हें कहा जाता है "एक क्षैतिज प्रभाव" है।

48. उनके विद्वतापूर्ण लेख, "संवैधानिक अधिकारों का क्षैतिज प्रभाव", मिशिगन लॉ रिव्यू (खंड 2) अंक 3,2003) में प्रकाशित हुआ। स्टीफन गार्डबाम का कहना है कि

आयरलैंड, कनाडा, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका एवं यूरोपीय संघ में क्षैतिज स्थिति को अलग-अलग डिग्री में अपनाया गया है। विद्वान लेखक के अनुसार, यह मुद्दा 1993 के मानवाधिकार अधिनियम के अधिनियमन के बाद यूनाइटेड किंगडम में निरंतर बहस का विषय भी रहा है।

49. दुनिया में कोई भी न्याय क्षेत्र, कम से कम आज तक, विशुद्ध रूप से ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण या पूरी तरह से क्षैतिज दृष्टिकोण को अपनाता हुआ नहीं दिखता है। एक ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण व्यक्तिगत स्वायत्तता, पसंद एवं गोपनीयता को महत्व प्रदान करता है, जबकि क्षैतिज दृष्टिकोण सभी व्यक्तियों में संवैधानिक मूल्यों को आत्मसात करने का प्रयास करता है।ये दृष्टिकोण जो द्विध्रुवीय विपरीत प्रतीत होते हैं, 'व्यक्तिगत बनाम समाज' के सदियों पुराने सवाल को उठाते हैं।

50. यहां तक कि उन देशों में भी जहां व्यक्ति सर्वोच्च शासन करता है, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में, गुलामी एवं अनैच्छिक दासता को एक दंडनीय अपराध बनाने वाले तेरहवें संशोधन ने वास्तव में व्यक्तिगत स्वायत्तता में प्रवेश किया है।इसलिए, कुछ विद्वानों का मानना है कि तेरहवें संशोधन ने सीधे तरीके से 'विशुद्ध रूप से ऊर्ध्वाधर' दृष्टिकोण से बदलाव प्रदान किया।इसके बाद, अमेरिकि सर्वोच्च न्यायालय के कुछ फैसलों में क्षैतिजता का एक अप्रत्यक्ष प्रभाव पाया गया, जिनमें से दो दिलचस्प हैं।

51. अमेरिकी गृहयुद्ध (1861-1865) के बाद, संयुक्त राज्य अमेरिका में पुनर्निर्माण युग शुरू हुआ।इस अवधि के दौरान, चौदहवाँ संशोधन आया (1866-1868) जिसके बाद नागरिक अधिकार अधिनियम, 1875 (जिसे प्रवर्तन अधिनियम या बल

अधिनियम भी कहा जाता है) आया।यह नागरिक अधिकार अधिनियम, 1875 नस्ल या रंग की परवाह किए बिना सभी को आवास, सार्वजनिक परिवहन एवं थिएटर तक पहुंचने का अधिकार देता है। यह देखते हुए कि अधिनियम के बावजूद, उन्हें होटल, थिएटर आदि में "केवल गोरों" के लिए सुविधाओं से बाहर रखा गया था, भेदभाव के पीड़ितों (अफ्रीकी-अमेरिकियों) ने मामले दर्ज किए। उन सभी पाँच मामलों को एक साथ जोड़ा गया एवं अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने (वर्ष 1883) में निर्णय दिया जिसे **"नागरिक अधिकार मामलों" 109 यू०एस० 3 (1883)** के रूप में जाना जाने लगा कि तेरहवें एवं चौदहवें संशोधन ने कांग्रेस को निजी व्यक्तियों द्वारा नस्लीय भेदभाव को गैरकानूनी बनाने का अधिकार नहीं दिया। लेकिन लगभग 85 वर्षों के बाद, **जोन्स बनाम अल्फ्रेड एच. मेयर कंपनी 392 यू०एस० 409 (1968)** में इस निर्णय को पलट दिया गया, जिसमें यह माना गया कि कांग्रेस नस्लीय भेदभाव को रोकने के लिए निजी संपत्ति की बिक्री को विनियमित कर सकती है। यह 42 यू. एस. कोड 1982 के संदर्भ में किया गया था, जो संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी नागरिकों को प्रत्येक राज्य एवं क्षेत्र में समान अधिकार देता है, जैसा कि उसके गोरे नागरिकों को विरासत में पाने, खरीदने, पट्टे पर देने, बेचने, रखने एवं वास्तविक एवं व्यक्तिगत संपत्ति को हस्तांतरित करने का अधिकार है।

52. लेकिन **जोन्स (सुप्रा)** में निर्णय देने से 20 साल पहले, अमेरिकि सर्वोच्च् न्यायालय के पास संविदात्मक अधिकारों आैर संवैधानिक अधिकारों के बीच टकराव पर विचार करने का अवसर था। यह **शैली (सुप्रा)** में था, जहां एक अफ्रीकी-अमेरिकि परिवार

(शेलीज) जिसने सेंट लुइस, मिसौरी के पड़ोस में एक संपत्ति खरीदी थी, को वर्ष 1911 के एक समझौते में निहित एक नस्लीय प्रतिबंधात्मक वाचा के कारण कब्जा करने से रोका गया था, जिसके लिए के अधिकांश संपत्ति मालिक पक्षकार थे। वाचा ने अफ्रीकी-अमेरिकियों एवं एशियाई-अमेरिकियों को 50 साल की अवधि के लिए किसी भी संपत्ति या उसके हिस्से की बिक्री को प्रतिबंधित कर दिया। मिसौरी सर्वोच्च न्यायालय ने नस्लीय रूप से प्रतिबंधित वाचा को बरकरार रखा। लेकिन अमेरिकि सर्वोच्च न्यायालय ने इसे यह मानते हुए उलट दिया कि इस तरह की वाचाओं के प्रवर्तन ने चौदहवें संशोधन के समान संरक्षण खंड का उल्लंघन किया है। दूसरे शब्दों में संविदात्मक अधिकारों को संवैधानिक दायित्वों द्वारा पछाड़ दिया गया था।

53. इसके बाद **न्यूयॉर्क टाइम्स बनाम सुलिवन 376 यू०एस० 254 (1964)** में निर्णय आया।यह एक ऐसा मामला था जिसमें मोंटगोमेरी, अलबामा में नगर आयुक्त ने एक सशुल्क विज्ञापन में कथित रूप से मानहानिकारक बयान प्रकाशित करने के लिए न्यूयॉर्क टाइम्स के खिलाफ मानहानि का मुकदमा दायर किया था। जूरी ने हर्जाने का फैसला सुनाया एवं अलबामा के सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले की पुष्टि की। हालाँकि, अमेरिकि सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय को उलट दिया एवं कहा कि पहला संशोधन जो एक सार्वजनिक अधिकारी को वास्तविक द्वेष के मामले को छोड़कर सार्वजनिक अधिकारी के आधिकारिक आचरण से संबंधित मानहानिकारक झूठ के लिए हर्जाने की वसूली करने से रोकता है, वादी को अपने निजी अधिकार का प्रयोग करने से रोकता है।

54. अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों को विद्वानों द्वारा 'विशुद्ध रूप से ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण' से 'क्षैतिज दृष्टिकोण' में बदलाव के संकेत के रूप में देखा गया था।

55. जबकि अमेरिकी संविधान(शुरू में) ने विशुद्ध रूप से ऊर्ध्वाधर दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था, आयरिश संविधान को स्पेक्ट्रम के विपरीत दिशा में पाया गया, जिसमें प्रदान किए गए अधिकारों का क्षैतिज प्रभाव था। आयरिश संविधान का अनुच्छेद 40 व्यक्तिगत अधिकारों से संबंधित है, जिसके अंतर्गत "मौलिक अधिकार" के अध्याय अनुच्छेद 40 का उप-अनुच्छेद (3) यह कहता है कि **"राज्य अपने कानूनों में सम्मान की गारंटी देता है, एवं , यथासंभव, अपने कानूनों द्वारा नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा एवं पुष्टि करने की गारंटी देता है।** दूसरे शब्दों में, दो अधिकारों की गारंटी है- (i) नागरिक के व्यक्तिगत अधिकारों का सम्मान; एवं (ii) अपने नागरिक के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा एवं पुष्टि करना।

56. आयरिश संविधान के अनुच्छेद 40 के उप-अनुच्छेद (3) का दूसरा खंड में कहा गया है कि "राज्य, विशेष रूप से, अपने कानूनों द्वारा अन्यायपूर्ण हमले से यथासंभव सर्वोत्तम सुरक्षा करेगा एवं अन्याय के मामले में, प्रत्येक नागरिक के जीवन, व्यक्ति, अच्छे नाम एवं संपत्ति के अधिकारों की रक्षा करेगा।

57. उपरोक्त प्रावधानों की व्याख्या आयरिश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा एवं उन्हें लागू करने के लिए न्यायालयों सहित सभी राज्य तंत्रों पर एक सकारात्मक दायित्व लागू करने के रूप में की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि

आयरिश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संघ की स्वतंत्रता, लिंग भेदभाव से स्वतंत्रता एवं आजीविका कमाने के अधिकार जैसे संवैधानिक अधिकारों को पूर्ण क्षैतिज प्रभाव दिया गया था। उदाहरण के लिए, आयरिश सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 40.61 द्वारा गारंटीकृत संघों एवं संघों के गठन के लिए नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों पर **जॉन मेस्केल** के मामले में विचार करने का अवसर मिला था। यह मामला कुछ ट्रेड यूनियनों एवं नियोक्ता के बीच सभी श्रमिकों की सेवाओं को समाप्त करने एवं उन्हें इस शर्त पर फिर से नियुक्त करने के लिए हुए एक समझौते से उत्पन्न हुआ कि वे हर समय निर्दिष्ट ट्रेड यूनियनों के सदस्य होने के लिए सहमत हों। एक कर्मचारी जिसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था, उसे फिर से नियुक्त नहीं किया गया था, क्योंकि उसने विशेष शर्त को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। इसलिए, उन्होंने कंपनी पर हर्जाने के लिए मुकदमा दायर किया एवं एक घोषणा का दावा किया कि उनकी बर्खास्तगी संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन है। **यह मानते हुए कि संघों एवं संघों के गठन के लिए नागरिकों के संवैधानिक अधिकार को अनिवार्य रूप से संघो एवं संघो में शामिल होने से दूर रहने के एक सहसंबंधी अधिकार को मान्यता दी गई थी।**आयरिश सर्वोच्च न्यायालय ने इस आधार पर हर्जाना दिया कि गैर-राज्य तंत्रों ने वास्तव में वादी के संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन किया है।दूसरे शब्दों में, संवैधानिक अधिकारों का क्षैतिज प्रभाव माना जाता था।

58. दक्षिण अफ्रीका गणराज्य का संविधान, 1996 भी कुछ अधिकारों को क्षैतिज प्रभाव प्रदान करता है। उक्त संविधान की धारा 8.2 में कहा गया हैः **"अधिकारों**

के विधेयक का एक प्रावधान प्राकृतिक रूप से बाध्य करता है या एक न्यायिक व्यक्ति यदि, एवं उस सीमा तक, जहां तक यह लागू होता है, तो अधिकार की प्रकृति एवं अधिकार द्वारा लगाए गए किसी भी कर्तव्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए।"

59. जिस तरीके से धारा 8.2 को लागू किया जाना है, वह धारा 8.3 में वर्णित है। वही इस प्रकार पढ़ता हैः

> 3. उप-धारा (2) के संदर्भ में किसी प्राकृतिक या न्यायिक व्यक्ति पर अधिकार विधेयक के प्रावधान को लागू करते समय, एक न्यायालय- विधेयक में किसी अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए, सामान्य कानून को इस हद तक लागू करना चाहिए या यदि आवश्यक हो तो विकसित करना चाहिए कि कानून उस अधिकार को प्रभावित नहीं करता है; एवं
>
> ख. अधिकार को सीमित करने के लिए सामान्य कानून के नियम विकसित कर सकते हैं, बशर्ते कि सीमा धारा 36 (1) के अनुसार हो।"

60. दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान की धारा 9 कानून के समक्ष समानता एवं समान संरक्षण एवं सभी के लिए कानून के लाभ की गारंटी देती है। **धारा 9.3 राज्य को नस्ल, लिंग, लिंग, गर्भावस्था, वैवाहिक स्थिति, जातीय या सामाजिक मूल, रंग, यौन अभिविन्यास, आयु, विकलांगता, धर्म, विवेक, विश्वास, संस्कृति, भाषा एवं जन्म सहित एक या अधिक आधारों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी के साथ अनुचित भेदभाव नहीं करने का आदेश देती है। यदि धारा** 9.3 राज्य के खिलाफ एक आदेश है, तो धारा

9.4 में जो आता है, वह प्रत्येक व्यक्ति के खिलाफ एक आदेश है। धारा 9.4 इस प्रकार है:

"9. समानता

4. कोई भी व्यक्ति उप-धारा (3) के संदर्भ में एक या अधिक आधारों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी के साथ अनुचित तरीके से भेदभाव नहीं कर सकता है।अनुचित भेदभाव को रोकने या रोकने के लिए राष्ट्रीय कानून बनाया जाना चाहिए।"

61. एक बार फिर, धारा 10 मानव गरिमा के अधिकार को मान्यता देती है। जबकि ऐसा करते हुए, यह एक ऐसी भाषा का उपयोग करता है, जो गैर-राज्य तंत्रों पर भी लागू होती है। धारा 10 में कहा गया है कि "हर किसी को अंतर्निहित गरिमा है एवं उसे अपनी गरिमा का सम्मान करने एवं संरक्षित करने का अधिकार है।"

62. अप्रैल 1994 से फरवरी 1997 की अवधि के दौरान, जब दक्षिण अफ्रीका गणराज्य में एक अंतरिम संविधान था, दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय को **डु प्लेसिस एवं अन्य बनाम डी क्लर्क एवं अन्य 1996 जेड०ए०सी०सी० 10 के मामले में** मानहानि की कार्रवाई से निपटने का अवसर मिला था। यूनिटा (नेशनल यूनियन फॉर द टोटल इंडिपेंडेंस ऑफ अंगोला) को हथियारों की गैरकानूनी आपूर्ति में एयरलाइन को शामिल करने वाले एक लेख को प्रकाशित करने के लिए एक एयरलाइन कंपनी द्वारा एक समाचार पत्र के खिलाफ मानहानि की कार्रवाई शुरू की गई थी।अंतरिम संविधान के लागू होने के बाद, प्रतिवादी-समाचार पत्र ने बचाव किया कि उन्हें संविधान की धारा 15 के

तहत मानहानि की कार्रवाई के खिलाफ संरक्षण दिया गया था, जो प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करता है। उच्चतम न्यायालय के ट्रान्स्वाल प्रांतीय प्रभाग ने दो मुद्दों को संवैधानिक न्यायालय को भेजा।एक मुद्दा यह था कि क्या **संविधान का अध्याय 3 (मौलिक अधिकार) निजी पक्षों के बीच कानूनी संबंधों पर लागू होता था। न्यायालय ने (11:2) के बहुमत से** अभिनिर्धारित किया कि अध्याय 3 को निजी पक्षों के बीच कार्यों में सीधे सामान्य कानून पर लागू नहीं किया जा सकता है।लेकिन उन्होंने इस सवाल को खुला छोड़ दिया कि क्या अध्याय के कुछ विशेष प्रावधान थे जिन्हें इस तरह लागू किया जा सकता था। हालांकि, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अंतरिम संविधान की धारा 35 (3) के संदर्भ में, न्यायालय सामान्य कानून के अनुप्रयोग एवं विकास में अध्याय 3 की भावना, उद्देश्य एवं उद्देश्यों को उचित सम्मान देने के लिए बाध्य हैं।बहुमत ने माना कि धारा 35 (3) द्वारा आवश्यक सामान्य कानून को लागू करना एवं विकसित करना सर्वोच्च न्यायालय का कार्य था। 591996ZACC10

63. दिलचस्प बात यह है कि क्रिगलर, जे. द्वारा दी गई असहमती की राय बहुत सारी अकादमिक बहस का विषय बन गई।शुरुआत में, जे. क्रीगलर ने इस विचार को खारिज कर दिया कि बहस "ऊर्ध्वाधरता बनाम क्षैतिजता" में से एक थी। उन्होंने कहा कि अध्याय 3 के अधिकार केवल राज्य के खिलाफ नहीं हैं, बल्कि क्षैतिज रूप से उन व्यक्तियों के बीच भी हैं जहां क़ानून शामिल हैं।"प्रत्यक्ष क्षैतिजता" को एक बोगीमैन बताते हुए, जे. क्रीगलर ने इस प्रकार कहाः

"इस अध्याय का निजी व्यक्तियों या संघों के बीच सामान्य संबंधों से कोई लेना-देना नहीं है।हालाँकि, यह जो कुछ भी नियंत्रित करता है, वह सभी कानून है, जिसमें निजी संबंधों पर लागू होने वाला कानून भी शामिल है। जब तक कानून का सहारा नहीं लिया जाता है, तब तक निजी व्यक्तियों को मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के संबंध में अपने निजी मामलों का ठीक वैसा ही संचालन करने की स्वतंत्रता है जैसा वे चाहते हैं।जहाँ तक अध्याय का सवाल है, **संबंधित मकान मालिक नस्ल, लिंग या किसी भी कारण से किसी को फ्लैट देने से इनकार करने के लिए स्वतंत्र है; एक सफेद धर्मांध किसी रंग के व्यक्ति को संपत्ति बेचने से इनकार कर सकता है; एक सामाजिक क्लब चाहे तो यहूदियों, कैथोलिकों या अफ्रीकी लोगों को ब्लैक-बॉल कर सकता है।एक नियोक्ता को कर्मचारियों की नियुक्ति में नस्लीय आधार पर भेदभाव करने की स्वतंत्रता है; एक होटल व्यवसायी एक समलैंगिक के लिए एक कमरा देने से इनकार कर सकता है; एक चर्च किसी विशेष रंग या वर्ग के शोक मनाने वालों के लिए अपने दरवाजे बंद कर सकता है।लेकिन उनमें से कोई भी अपनी कट्टरता को लागू करने या उसकी रक्षा करने के लिए कानून का आह्वान नहीं कर सकता है।कोई भी किसी अनुबंध को रद्द करने या उसके विशिष्ट प्रदर्शन का दावा नहीं कर सकता है यदि ऐसा दावा, सामान्य कानून में अच्छी तरह से स्थापित होने के बावजूद, अध्याय 3 के किसी कानून का उल्लंघन करता है।** कानून में किसी दावे के लिए कोई बचाव नहीं कर सकता है यदि ऐसा बचाव किसी संरक्षित अधिकार या स्वतंत्रता के साथ संघर्ष में है।निजी संबंधों के पूरे दायरे को अछूता छोड़ दिया जाता है। लेकिन राज्य, कानूनों के निर्माता, कानूनों के

प्रशासक एवं कानून के व्याख्याकार एवं प्रर्वतनकर्ता के रूप में, अध्याय 3 के चार कोनों के भीतर रहने के लिए बाध्य है।**इस प्रकार, यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी को पीटने, अपनी बेटी को दासता में बेचने या अपने बेटे के साथ दुर्व्यवहार करने का अधिकार होने का दावा करता है, तो उसे किसी दिवानी दावे या आपराधिक आरोप के बचाव के रूप में यह बात उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, जो वह सामान्य कानून, प्रथागत कानून या किसी कानून या अनुबंध के संदर्भ में करने का हकदार है। यह राज्य द्वारा निजी संबंधों पर अपना हाथ रखने की परछाईं से बहुत दूर है।** इसके विपरीत, यदि वह विधान या प्रशासनिक कार्रवाई द्वारा ऐसा करने का प्रयास करता है, तो धारा 4,7 (1) एवं पूरा अध्याय 3 व्यक्तिगत अधिकारों का गढ़ बन जाएगा।"

64. अंतिम संविधान को स्वीकार किए जाने एवं 4 फरवरी, 1997 को लागू होने के बाद, इस मुद्दे पर पहला मामला **खुमालो बनाम होलोमिसा (2002) जेड०ए०सी०सी० 12** सामने आया। इस मामले में, दक्षिण अफ्रीकी विपक्षी राजनीतिक दल के नेता बंटू होलोमिसा ने एक लेख प्रकाशित करने के लिए एक समाचार पत्र पर मुकदमा दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया था कि वह बैंक लुटेरों के एक गिरोह के साथ अपनी संलिप्तता के लिए पुलिस अन्वेषण के दायरे में है। इस मामले में **डू प्लेसिस (सुप्रा)** में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय के बहुमत के फैसले पर भारी निर्भरता रखी गई थी। लेकिन जैसा कि पहले बताया गया है, **डु प्लेसिस** एक ऐसा मामला था जिसका फैसला ऐसे समय में किया गया था जब दक्षिण अफ्रीका में केवल एक अंतरिम संविधान था। इसलिए **खुमालो (सुप्रा)** से निपटते समय दक्षिण अफ्रीका के

संवैधानिक न्यायालय ने अंतिम संविधान लागू किया, क्योंकि यह तब तक लागू हो चुका था। हमारे उद्देश्य के लिए जो प्रासंगिक है वह अनुच्छेद 33 में संवैधानिक न्यायालय की राय है जो गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ अधिकारों के प्रवर्तन से संबंधित है। अनुच्छेद 33 इस प्रकार हैः

"[33] इस मामले में, आवेदक मीडिया के सदस्य हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संवैधानिक अधिकारों के वाहक के रूप में पहचाना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि मानहानि का कानून अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रभावित करता है। **विचाराधीन संवैधानिक अधिकार की तीव्रता को देखते हुए, उस अधिकार पर संभावित आक्रमण जो राज्य या राज्य के अंगों के अलावा अन्य व्यक्तियों द्वारा दिए गए अवसर पर, हो सकता है। यह स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार इस मामले में सीधे क्षैतिज रूप से लागू होता है जैसा कि संविधान की धारा 8 (2) द्वारा विचार किया गया है।पहला सवाल जो हमें** यह निर्धारित करना है कि क्या मानहानि का सामान्य कानून अनुचित रूप से उस अधिकार को सीमित करता है। यदि ऐसा होता है, तो संविधान की धारा 8 (3) द्वारा अनुज्ञात तरीके से सामान्य कानून का विकास करना आवश्यक होगा।"

65. जुमा **मस्जिद प्राथमिक विद्यालय एवं अन्य बनाम निबंध एन. ओ. एवं अन्य (सी॰सी॰टी॰ 29/10) (2011) जेड॰ए॰सी॰सी॰ 13; 2011 (8) बी॰सी॰एल॰आर॰ 761 (सी॰सी॰) जिसमें** शासी निकाय में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय द्वारा क्षैतिज प्रभाव को एक और चरम सीमा पर ले जाया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित

किया गया था कि एक निजी भूमि जिस पर एक सार्वजनिक विद्यालय स्थित था, के मालिक द्वारा प्राप्त बेदखली आदेश, को लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह दक्षिण अफ्रीकी संविधान (धारा 28 एवं 29) के तहत छात्रों के बुनियादी शिक्षा के अधिकार एवं बच्चों के सर्वोत्तम हितों को प्रभावित करेगा। न्यायालय ने कहा कि एक निजी भूमि मालिक एवं गैर-राज्य तंत्र का संवैधानिक दायित्व है कि वह संविधान की धारा 29 के तहत बुनियादी शिक्षा के अधिकार को बाधित न करे। प्रासंगिक भाग इस प्रकार हैः

> "[57] यह निर्धारित करने के लिए कि क्या धारा 29 (1) (ए) के संदर्भ में बुनियादी शिक्षा का अधिकार न्यास को बाध्य करता है, धारा 8 (2) में यह अपेक्षा की गई है कि बुनियादी शिक्षा के लिए शिक्षार्थियों के अधिकार की प्रकृति एवं उस अधिकार द्वारा अधिरोपित कर्तव्य को ध्यान में रखा जाए।अधिकार की सामान्य प्रकृति एवं इसके संबंध में एम. ई. सी. के दायित्व के पिछले पैराग्राफ में चर्चा से, सामने आता है कि न्यासियों पर बुनियादी शिक्षा का अधिका कर्त्तव्य के रूप में अधिरोपित है। यह स्पष्ट है कि शिक्षार्थियों को बुनियादी शिक्षा प्रदान करने के लिए न्यास पर कोई प्राथमिक सकारात्मक दायित्व नहीं है।यह प्राथमिक सकारात्मक दायित्व एम. ई. सी. पर निर्भर करता है। एक सार्वजनिक विद्यालय के रूप में उपयोग के लिए एम. ई. सी. को अपनी संपत्ति उपलब्ध कराने का भी न्यास पर कोई दायित्व नहीं था।हालाँकि, एक निजी भूमि मालिक अधिनियम की धारा 14 (1) के अनुसार ऐसा कर सकता है, जिसमें प्रावधान है

कि केवल एम. ई. सी. एवं संपत्ति के मालिक के बीच एक समझौते के संदर्भ में ही निजी संपत्ति प सार्वजनिक विद्यालय प्रदान किया जा सकता है।

[58] इस न्यायालय ने संविधान सभा के पूर्व अध्यक्ष के मामले में कहाःदक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान के पुनः प्रमाणीकरण में, यह स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक-आर्थिक अधिकारों (जैसे बुनियादी शिक्षा का अधिकार) को अनुचित आक्रमण से नकारात्मक रूप से संरक्षित किया जा सकता है।इस दायित्व का उल्लंघन सीधे तब होता है जब अधिकार का सम्मान करने में विफलता होती है, या अप्रत्यक्ष रूप से, जब किसी अन्य द्वारा अधिकार के प्रत्यक्ष उल्लंघन को रोकने में विफलता होती है या उस सुरक्षा को कम करने वाले उपाय करके अधिकार के मौजूदा संरक्षण का सम्मान करने में विफलता होती है।हालांकि इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि संविधान की धारा 8 (2) का उद्देश्य निजी स्वायत्तता में बाधा डालना या किसी अधिकारों के विधेयक की रक्षा करने में राज्य के कर्तव्यों को निजी पक्षों पर लागू करना नहीं है। बल्कि यह निजी पक्षों से यह अपेक्षा करना है कि वे किसी अधिकार के आनंद में हस्तक्षेप न करें, उसे कम न करें। इसका अनुप्रयोग विचाराधीन संवैधानिक अधिकार की तीव्रता पर भी निर्भर करता है, जो उस अधिकार के संभावित आक्रमण के साथ होता है जो राज्य या राज्य के अंगों के अलावा अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है।"

66. यूनाइटेड किंगडम आकर, उन्होंने 1951 में मानवाधिकारों पर यूरोपीय समझौते की पुष्टि की।लेकिन सम्मेलन द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लंबे समय तक केवल यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय में ब्रिटिश नागरिकों द्वारा लागू किया जाना था।यह पाते हुए कि सभी घरेलू उपचारों के समाप्त होने के बाद यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय में मुकदमा दायर करने में औसतन पांच साल लग गए एवं यह भी पता चला कि औसतन, इसकी लागत 30,000 पाउंड थी, 1997 में "अधिकार घर लाए गए" शीर्षक के तहत एक श्वेत पत्र प्रस्तुत किया गया था।इसके परिणामस्वरूप यूनाइटेड किंगडम की संसद द्वारा मानवाधिकार अधिनियम, 1998 लागू किया गया।यह 2.10.2000 (संयोग से गांधी जयंती दिवस) पर लागू हुआ।इस अधिनियम ने घरेलू कानून, यूरोपीय सम्मेलन द्वारा प्रदत्त अधिकारों को शामिल करने का प्रयास किया, ताकि नागरिकों को स्ट्रासबर्ग में यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय में जाने की आवश्यकता न पड़े। मानवाधिकार अधिनियम के अधिनियमन के बाद, कन्वेंशन राइट्स का क्षैतिज प्रभाव कई मामलों में बहस का विषय बन गया।

67. उदाहरण के लिए, **डगलस बनाम हैलो! लिमिटेड (2001) क्यू०बी० 967** एक ऐसा मामला था जिसमें किसी व्यक्ति की निजता के अधिकार को अभिव्यक्ति एवं स्वतंत्रता के अधिकार के खिलाफ खड़ा किया गया था।उस मामले में, ओके नामक एक पत्रिका को न्यूयॉर्क में हुए एक सेलिब्रिटी जोड़े के शादी के रिसेप्शन की तस्वीरों को प्रकाशित करने का विशेष अधिकार दिया गया था। शादी के दिन, कुछ पपराज़ो ने कार्यक्रम स्थल में घुसपैठ की थी एवं कुछ अनाधिकृत तस्वीरें लीं, जिन्हें संभावित

प्रतिस्पर्धी अर्थात् हैलो! लिमिटेड (एक अन्य पत्रिका) के साथ साझा किया गया। हैलो! ने अपनी पत्रिका के अगले अंक में तस्वीरें प्रकाशित की इससे पहले कि आेके इसे प्रकाशित कर सके। अपील न्यायालय (सिविल डिवीजन) के समक्ष सवाल यह था कि क्या गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन हुआ है एवं क्या इसे किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ लागू किया जा सकता है। न्यायालय ने कहाः

> "49. यह इस प्रकार है कि ई. सी. टी. एच. आर. ने सदस्य देशों पर एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति द्वारा निजी जीवन के अनुचित आक्रमण से बचाने के दायित्व को मान्यता दी है एवंकिसी सदस्य राज्य की अदालतों पर कानून की व्याख्या इस तरह से करने का दायित्व है, जिसे वह परिणाम प्राप्त हो।
>
> 50. कुछ लोग जैसे कि स्वर्गीय प्रोफेसर सर विलियम वेड, वेड एंड फोर्सिथ एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ (8 वीं संस्करण) पृष्ठ 983 में, एवं जोनाथन मॉर्गन, गोपनीयता, विश्वास एवं क्षैतिज प्रभाव मेंः" हैलो ट्रबल (2003) सी. एल. जे. 443 में तर्क देते है कि मानवाधिकार अधिनियम को **'पूर्ण, प्रत्यक्ष, क्षैतिज प्रभाव' दिया जाना चाहिए। अदालतें इस हद तक जाने के लिए तैयार नहीं हैं।...**
>
> **102. इस स्तर पर हम हमारे निष्कर्ष को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैंःओके अनुबंध के प्रभाव को नजरअंदाज करते हुए हम इस बात से संतुष्ट हैं कि डगलस दंपत्ति द्वारा उनकी निजता के उल्लंघन का दावा अंग्रेजी गोपनीयता कानून के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए। उस कानून ने, निजी आैर**

व्यक्तिगत जानकारी को कव्हर करने के लिए विस्तारित रूप में, डगलस दंपत्ति की शादी के बारे में जानकारी को संरक्षित किया।

68. **एक्स बनाम वार्ड (2004) ईडब्लूसीए सीआईव्ही 662** में, अपील न्यायालय ने एक कर्मचारी एक्स के मामले पर विचार किया, जिसे पुलिस ने सार्वजनिक शौचालय में किसी अन्य पुरुष के साथ यौन अपराध करने के लिए चेतावनी दी थी। यह अपराध तब हुआ जब एक्स ड्यूटी से बाहर था। घटना के बारे में पता चलने पर, नियोक्ता वार्ड० ने एक्स को निलंबित कर दिया एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद उसे बर्खास्त कर दिया।बर्खास्तगी को कन्वेंशन अधिकारों के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी गई थी।एक तर्क दिया गया कि ये अधिकार निजी पक्षों के खिलाफ लागू करने योग्य नहीं हैं।यद्यपि तथ्यों के आधार पर, बर्खास्त कर्मचारी के दावे को खारिज कर दिया गया था, लेकिन न्यायालय द्वारा कानूनी मुद्दे को इस प्रकार व्यक्त किया गया थाः

> "55. आवेदक ने निजी कानून में कार्रवाई के अपने कारण के संबंध में कन्वेंशन के अनुच्छेद 8 एवं 14 का आव्हान किया।
>
> (1) जैसा कि उपरोक्त धारा सी में उद्धृत अधिकारियों से प्रतीत होता है, अनुच्छेद 8 व्यक्तियों एवं **राज्य एवं सार्वजनिक प्राधिकरण के अधिकारियों** के बीच संबंधों तक सीमित नहीं है।**स्ट्रासबर्ग न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या निजी व्यक्तियों के बीच अधिकार के पालन एवं आनंद को सुरक्षित करने के लिए राज्य पर एक सकारात्मक दायित्व लागू करने के रूप में की है।**

(2) यदि मामले के तथ्य अनुच्छेद 8 के दायरे में आते हैं, तो राज्य अनुच्छेद 14 के तहत निजी व्यक्तियों को बिना भेदभाव के अधिकार का आनंद सुनिश्चित करने के लिए एक सकारात्मक दायित्व के तहत है जिसमें यौन अभिविन्यास के आधार पर भेदभाव भी शामिल है।

(3) किसी व्यक्ति का यौन अभिविन्यास एवं निजी यौन जीवन निजी जीवन के सम्मान के लिए कन्वेंशन के अधिकार (एडीटी बनाम यूके [2000] 2 एफएलआर 697 देखें) एवं उस अधिकार के संबंध में गैर-भेदभाव के अधिकार के दायरे में आता है। अनुच्छेद 8.1 के अंतर्गत अधिकार में हस्तक्षेप को अनुच्छेद 8.2 के तहत उचित ठहराया जाना चाहिए।"

69. प्लेटफ़ॉर्म में "आर्ज़्टे फ़ुर दास लेबेन" बनाम ऑस्ट्रिया (1988), ईइ०सी०एच०आर० 15 में गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ सभा की स्वतंत्रता के अधिकार की प्रवर्तनीयता के बारे में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ, जिन्होंने सभा को बाधित किया। मामला इन तथ्यों से उत्पन्न हुआ।28 दिसंबर 1980 को, गर्भपात विरोधी गैर सरकारी संगठन "आर्जटे फर दास लेबेन" (जीवन के लिए चिकित्सक) ने धार्मिक सेवा का आयोजन किया आैर स्टैडल-पौरा में गर्भपात करने वाले एक डॉक्टर के क्लिनिक तक मार्च का आयोजन किया। कई प्रति-प्रदर्शनकारियों ने मार्च करने वालों के साथ मिलकर एवं उनके पाठ को चिल्लाना बंद करके पहाड़ी की ओर मार्च को बाधित कर दिया। समारोह के अंत में, विशेष दंगा-नियंत्रण इकाइयाँ-जो तब तक खड़ी थीं-ने विरोधी समूहों के बीच एक घेरा बनाया।अंडा फेंकने के कृत्य में पकड़े गए एक व्यक्ति पर जुर्माना लगाया गया।

एसोसिएशन ने प्रदर्शन को बचाने में विफल रहने के लिए पुलिस के खिलाफ अनुशासनात्मक शिकायत दर्ज की, जिसे अस्वीकार कर दिया गया।जब इस मामले को संवैधानिक न्यायालय में ले जाया गया, तो उसने माना कि इस मामले पर उसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसलिए, एसोसिएशन ने मानवाधिकारों पर यूरोपीय कन्वेंशन के अनुच्छेद 9 (विवेक एवं धर्म), 10 (अभिव्यक्ति), 11 (संगठन) एवं 13 (प्रभावी उपचार) के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए 13 सितंबर 1982 को यूरोपीय आयोग में आवेदन किया।मानवाधिकारों पर यूरोपीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया।

> "32. एक प्रदर्शन उन विचारों या दावों का विरोध करने वाले व्यक्तियों को परेशान या अपमानित कर सकता है जिन्हें वह बढ़ावा देना चाहता है। हालाँकि, प्रतिभागियों को इस डर के बिना प्रदर्शन करने में सक्षम होना चाहिए कि वे अपने विरोधियों द्वारा शारीरिक हिंसा के अधीन होंगे; इस तरह का डर समुदाय को प्रभावित करने वाले अत्यधिक विवादास्पद मुद्दों पर खुले तौर पर अपनी राय व्यक्त करने से सामान्य विचारों या हितों का समर्थन करने वाले संघों या अन्य समूहों को रोकने के लिए उत्तरदायी होगा। लोकतंत्र में विरोध प्रदर्शन करने का अधिकार प्रदर्शन करने के अधिकार के प्रयोग को बाधित करने तक नहीं बढ़ सकता है।
>
> **इसलिए, शांतिपूर्ण सभा की वास्तविक, प्रभावी स्वतंत्रता को राज्य की ओर से हस्तक्षेप न करने के केवल कर्तव्य तक सीमित नहीं किया जा सकता हैःविशुद्ध रूप से नकारात्मक अवधारणा अनुच्छेद 11 (अनुच्छेद 11) के**

उद्देश्य एवं प्रयोजन के साथ संगत नहीं होगी। अनुच्छेद 8 (अनुच्छेर 8) की तरह अनुच्छेद 11 (अनुच्छेद 11) कभी-कभी सकारात्मक उपाय किए जाने की आवश्यकता होती है, यहां तक कि यदि आवश्यकता न हो तो व्यक्तियों के बीच संबंधों के क्षेत्र में भी(देखें, उत्परिवर्तन, 26 मार्च 1985 का एक्स एवं वा ्ई बनाम नीदरलैंड का निर्णय, श्रृंखला ए नं। 91,पी. 11, §23)"

70. **एक्स एवं वाई बनाम नीदरलैंड (1985) ्इ०सी०एच०आर० 4,** में मानसिक विकलांग बच्चों के लिए एक निजी रूप से संचालित घर पर इस आधार पर मुकदमा चलाया गया था कि एक 16 वर्षीय कैदी पर यौन उत्पीड़न किया गया था। जब घरेलू न्यायालय ने एक तकनीकी याचिका पर मामला खारिज कर दिया, तो पीड़ित के पिता ने यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। ई. सी. एच. आर. ने निजी व्यक्तियों के खिलाफ भी जीवन के अधिकार की सुरक्षा पर राज्य के दायित्व की सीमा को निम्नानुसार रेखांकित कियाः

"23. न्यायालय स्मरण कराता है कि यद्यपि अनुच्छेद 8 का उद्देश्य (अनुच्छेद 8) अनिवार्य रूप से सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा मनमाने हस्तक्षेप से व्यक्ति की रक्षा करना है, लेकिन यह राज्य को केवल इस तरह के हस्तक्षेप से दूर रहने के लिए मजबूर नहीं करता हैःइस मुख्य रूप से नकारात्मक उपक्रम के अलावा, निजी या पारिवारिक जीवन के लिए एक प्रभावी सम्मान में निहित सकारात्मक दायित्व हो सकते हैं (9

अक्टूबर 1979 का ऐरी निर्णय, श्रृंखला ए संख्या 32,पी. 17, पैरा. 32 देखें)

32). इन दायित्वों में व्यक्तियों के आपसी संबंधों के क्षेत्र में भी निजी जीवन के लिए सम्मान प्राप्त करने के लिए बनाए गए उपायों को अपनाना शामिल हो सकता है।

71. "ऊर्ध्वाधरता बनाम क्षैतिजता" के सैद्धांतिक पहलू एवं अन्य क्षेत्राधिकारों में संवैधानिक न्यायालयों के दृष्टिकोण का अवलोकन करने के बाद, आइए अब हम भारतीय संदर्भ में वापस आते हैं।

72. भारतीय संविधान का भाग-3 अनुच्छेद 12 से शुरू होता है, जो 'राज्य' की परिभाषा देना है, जिसमें भारत की सरकार एवं संसद एवं प्रत्येक राज्य की सरकार एवं विधानमंडल एवं भारत के क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण में सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण शामिल है।

73. अनुच्छेद 12 में "राज्य" अभिव्यक्ति को परिभाषित करने एवं संविधान के अनुच्छेद 13 के तहत मौलिक अधिकारों के साथ असंगत या अपमान करने वाले सभी कानूनों को शून्य घोषित करने के बाद, संविधान का भाग III अधिकारों से निपटने के लिए आगे बढ़ाता है। भाग III में कुछ अनुच्छेद हैं, जहां सीधे राज्य को दिया गया है एवं अन्य अनुच्छेद हैं, जहां राज्य को आदेश दिए बिना, कुछ अधिकारों को देश के नागरिकों में या व्यक्तियों में अंतर्निहित माना जाता है। वास्तव में, द्विभाजन के दो समूह हैं, जो भाग III में निहित अनुच्छेदो में स्पष्ट हैं। द्वैतवाद का एक समूह (i) राज्य के खिलाफ

क्या निर्देशित किया गया है, एवं (ii) राज्य के संदर्भ के बिना प्रत्येक व्यक्ति में निहित के रूप में क्या लिखा गया है, के बीच है। दूसरा द्विभाजन (i) नागरिकों एवं (ii) व्यक्तियों के बीच है। इसके निम्नानुसार एक तालिका के रूप में आसानी से चित्रित किया जा सकता है।

क्रमांक	**राज्य को अधिदेश देने वाले प्रावधान**	**राज्य के संदर्भ के बिना व्यक्तियों के अधिकारों की घोषणा करने वाले प्रावधान**	**अधिकार किसे प्रदान किया गया है।**
01	अनुच्छेद 14 राज्य को यह अधिकार देता है कि वह भारत के राज्य क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।		कोई व्यक्ति
02	अनुच्छेद 15(1) राज्य को यह अधिकार देता है कि वह किसी भी नागरिक विरूद्ध केवल मूलवंश, जाति लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।		कोई नागरिक
03		अनुच्छेद 15(2) में यह प्रावधान है कि किसी भी नागरिक को (i) दुकान, सार्वजनिक रेस्त्रां, होटलों आैर	नागरिक

		सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर पहुंच के संबंध में या (ii) तालाबों, स्नानघाटों, कुआें, सड़कों आैर सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के संबंध में जो पूरी तरह या आंशिक रूप से राज्य के धन से बनाए गए हैं या आम जनता के उपयोग के लिए समर्पित हैं, किसी भी प्रकार की अक्षमता, दायित्व, प्रतिबंध या शर्त के अधीन नहीं किया जाएगा। केवल धर्म, मूलवंश, जाति, मूल स्थान या इनमें से किसी के आधार पर	
04	अनुच्छेद 16(1) घोषित करता है कि रोजगार या किसी भी कार्यालय में नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नगरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।		केवल नागरिकों को
05	अनुच्छेद 16(2) में कहा गया है कि कोई भी नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान, निवासी या इनमें से किसी के आधार पर राज्य के तहत किसी भी रोजगार या कार्यलय के अयोग्य नहीं		नागरिक

	होगा, या उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा।		
06		अनुच्छेद 17 अश्पृश्यता को समाप्त करता है आैर किसी भी रूप में इसके अभ्यास पर रोक लगाता है आैर इसे दण्डनीय अपराध घोषित करता है।	अनुच्छेद 17 में न तो नागरिक आैर न ही व्यक्ति शब्द का उल्लेख किया गया है, इसका अर्थ है कि जो समाप्त किया गया है, वह प्रथा है आैर इस निषेधाज्ञा का उल्लंघन दण्डनीय है।
07		अनुच्छेद 19(1) में 06 प्रकार के अधिकार सूचीबद्ध हैं, जो सभी नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं।	नागरिकों को
08	अनुच्छेद 20 तीन अलग-अलग अधिकार प्रदान करता है, अर्थात् (i) अपराध के समय लागू कानून के आवेदन के अलावा दोषी नहीं ठहराया जाना। (ii) एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार मुकदमा नहीं चलाया जाएगा आैर दंडित नहीं किया जाएगा। (iii) आत्मदोषारोपण के विरूद्ध अधिकार।		व्यक्तियों को
09		अनुच्छेद 21 सभी व्यक्तियों के जीवन आैर स्वतंत्रता की रक्षा	व्यक्तियों को

		करता है।	
10	अनुच्छेद 21(ए) राज्य को 06 से 14 वर्ष तक आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा।		बच्चे
11	अनुच्छेद 22 आमतौर पर गिरफ्तारी आैर निरोध के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है आैर कुछ सीमाआें के साथ निवारत् निरोध से बचाता है।		विदेशी शत्रु को छोड़कर सभी व्यक्तियों को (अनुच्छेद 22(3) (ए) विदेशी शत्रु पर यह प्रावधान लागू नहीं करता है)
12		अनुच्छेद 23 मानव तस्करी आैर बेगार आैर इसी तरह के अन्य जबरन श्रम पर रोक लगाता है, इसके किसी भी उल्लंघन को दण्डनीय अपराध बनाया गया है।	कोई व्यक्ति
13		अनुच्छेद 24 किसी भी कारखाने में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर रोक लगाता है।	बच्चे
14		अनुच्छेद 25(1) सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता आैर धर्म को मानने, आचरण करने आैर प्रचार करने की स्वतंत्रता का अधिकार घोषित करता है।	व्यक्तियों
15		अनुच्छेद 26 प्रत्येक धार्मिक	धार्मिक सम्प्रदाय

		संप्रदाय या उसके किसी भी वर्ग को चार अलग-अलग प्रकार के अधिकार प्रदान करता है।	
16	अनुच्छेद 27 किसी विशेष धर्म के प्रचार के लिए किसी भी कर का भुगतान करने के लिए मजबूर नहीं किए जाने का अधिकार देता है।		व्यक्ति
17		अनुच्छेद 28(1) किसी भी बंदोबस्ती या ट्रस्ट के तहत संस्थानों को छोड़कर पूरी तरह से राज्य निधि से संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्थान में धार्मिक निर्देश प्रदान करने पर रोक लगाता है।	व्यक्ति
18		राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान में दिए जाने वाले किसी भी धार्मिक निर्देश में भाग न लेने का अधिकार अनुच्छेद 28(3) द्वारा प्रदान किया गया है।	व्यक्ति
19		भारत के किसी भी हिस्से की विशिष्ट भाषा लिपि या संस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार अनुच्छेद 29(1) द्वारा प्रदान किया गया है।	नागरिकों पर
20	राज्य द्वारा संचालित या	यह राज्य द्वारा संचालित	नागरिक

	राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले किसी भी शैक्षणिक संस्थान में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर प्रवेश से इंकार न करने का अधिकार अनुच्छेद 29 (2) द्वारा प्रदान किया गया है।	संस्थानों या यहां तक कि राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने वाले संस्थानों पर भी लागू होता है।	
21	01. धर्मिक आैर भाषायी अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना आैर प्रशासन करने का अधिकार अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदान किया गया है। 02. राज्य को अनुच्छेद 30 (2) के तहत सहायता प्रदान करते समय किसी भी शैक्षणिक संस्थान के साथ भेदभाव नहीं करने का आदेश दिया गया है।		धार्मिक आैर भाषीय अल्पसंख्यक
22		भाग-3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार अनुच्छेद 32 के तहत गारंटीकृत है।	अनुच्छेद 32 में राज्य, नागरिक या व्यक्ति शब्दों का उल्लेख नहीं किया गया है, जिससे यह संकेत मिलता है कि अधिकार सभी के लिए उपलब्ध हैं। यह इस बात पर निर्भर

			करता है कि किस अधिकार को लागू किया जाना है।

74. उपरोक्त तालिका से पता चलेगा कि भाग-III के कुछ अनुच्छेद राज्य को निर्देश के रूप में हैं, जबकि अन्य नहीं हैं।यह एक संकेत है कि भाग-III द्वारा प्रदत्त कुछ अधिकारों को गैर-राज्य तंत्रों द्वारा सम्मानित किया जाना है एवं उनके खिलाफ भी लागू किया जाना है।

75. उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 15 (2) (ए) एवं (बी), 17,20 (2), 21,23,24,29 (2) आदि द्वारा प्रदत्त अधिकार स्पष्ट रूप से गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ भी लागू करने योग्य हैं।एक दुकान, सार्वजनिक रेस्तरां, होटल या मनोरंजन स्थल का मालिक, एक गैर-राज्य तंत्र अनुच्छेद 15 (2) (ए) को देखते हुए केवल धर्म, नस्ल आदि के आधार पर भारत के नागरिक को प्रवेश से इनकार नहीं कर सकता है। अनुच्छेद 15 (2) (बी) को ध्यान में रखते हुए, कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों एवं सार्वजनिक समग्राम के स्थानों के मामले में भी ऐसा ही है जो पूरी तरह से या आंशिक रूप से राज्य के धन से बनाए गए हैं या आम जनता के उपयोग के लिए समर्पित हैं।अस्पृश्यता से उत्पन्न होने वाली किसी भी विकलांगता के साथ लागू नहीं होने का अधिकार अनुच्छेद 17 के तहत गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ उपलब्ध है।दोहरे खतरे के खिलाफ अधिकार, एवं अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (2) एवं (3) के तहत उपलब्ध आत्म-दोषारोपण के खिलाफ अधिकार निजी शिकायतों पर अभियोजन के मामले में गैर-राज्य

तंत्रों के खिलाफ भी उपलब्ध हो सकता है।हमें अधिक विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऊपर दी गई तालिका सभी अधिकारों को परिप्रेक्ष्य में रखती है।

76. यह हमें इस सवाल की ओर ले जाता है कि भारत में न्यायालयों ने उन मामलों से कैसे निपटा है जहां गैर-राज्य तंत्रों द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की शिकायतें थीं, जो ऊपर पैरा 73 में तालिका के कॉलम 2 में शामिल हैं।शुरुआत में, यह न्यायालय निजी व्यक्तियों के खिलाफ मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को बढ़ाने से थक गया था। लेकिन यह अनिच्छा समय के साथ बदल गई।आइए अब देखते हैं कि कानून कैसे विकसित हुआः

(i) **पी०डी० शयदासानी (सुप्रा)** में, इस न्यायालय की पांच सदस्यी पीठ अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका पर विचार कर रही थी, जो एक एेसे व्यक्ति द्वारा दायर की गई थी, जो सेंट्रल बैंक आॅफ इंडिया लिमिटेड के खिलाफ कई दीवानी आैर अन्य कार्यवाही हार गया था, जो उस समय कंपनी अधिनियम के तहत शामिल एक कंपनी थी। उस मामले में याचिकाकर्ता की शिकायत यह थी कि कंपनी में उसके द्वारा रखे गए शेयरों को बैंक ने ऋण की वसूली के लिए गृहणाधिकार के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए बेच दिया। इसलिए याचिकाकर्ता ने अनुच्छेद 19(1) (एक) आैर अनुच्छेद 31(1) (जो उस समय उपलब्ध था) के तहत अपना दावा पेश किया। लेकिन अनुच्छेद 31 (1) (जैसा कि यह उस समय था) एवं अनुच्छेद 21 के बीच तुलना करते हुए, दोनों में एक ही नकारात्मक रूप में घोषणा थी, इस

न्यायालय ने **पी. डी. शामदासानी में निम्नलिखित टिप्पणी की यहाँ अनुच्छेद 21 में राज्य का कोई स्पष्ट संदर्भ नहीं है। लेकिन क्या इस कारण से यह सुझाव दिया जा सकता है कि उस अनुच्छेद का उद्देश्य निजी व्यक्तियों द्वारा उल्लंघन के खिलाफ जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सुरक्षा प्रदान करना था?"कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्द स्पष्ट रूप से इस तरह के सुझाव को बाहर करते हैं।**

(ii) **पी. डी. शामदासानी** में उपरोक्त सिद्धांत को इस न्यायालय की एक अन्य पांच सदस्यीय पीठ ने श्रीमती. विद्या **वर्मा बनाम डॉ. शिव नारायण वर्मा** AIR **1956 एस०सी० 108 में दोहराया है, जिसमें कहा गया था कि** अनुच्छेद 31 (1) एवं अनुच्छेद 21 की भाषा समान है एवं वे किसी निजी व्यक्ति द्वारा किसी अधिकार के आक्रमण पर लागू नहीं होते हैं एवं इसके परिणामस्वरूप ऐसे मामलों में कोई रिट नहीं होगी।

(iii) **सुखदेव सिंह बनाम भगतराम सरदार सिंह रघुवंशी (1975) 1 एस०सी०सी० 421** में इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष दो प्रश्न उठे। इन प्रश्नों में से एक यह था कि क्या किसी वैधानिक निगम का कर्मचारी इस आधार पर निगम के खिलाफ अनुच्छेद 14 एवं 16 के संरक्षण का हकदार है कि ये वैधानिक निगम अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर प्राधिकरण हैं। अपनी अलग लेकिन सहमत राय में, न्यायमूर्ति मैथ्यू ने बताया कि हाल के वर्षों में राज्य की अवधारणा में भारी बदलाव आया है एवं आज राज्य की कल्पना

केवल अधिकार की गर्जना करने वाले एक बलकारी तंत्र के रूप में नहीं की जा सकती है। विद्वान न्यायाधीश ने **मार्श बनाम अलबामा 326 यू०एस० 501 (1946)** में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया, जहां एक व्यक्ति जो जेहोवा का साक्षी था, को निगम के स्वामित्व वाले कंपनी शहर में अतिक्रमण करने एवं पर्चे वितरित करने के लिए गिरफ्तार किया गया था। यद्यपि विचाराधीन संपत्ति निजी थी, लेकिन न्यायालय ने कहा कि एक शहर का संचालन एक सार्वजनिक कार्य है एवं इसलिए, निगम के निजी अधिकारों का प्रयोग संवैधानिक सीमाओं के भीतर किया जाना चाहिए।मार्श में निर्णय का हवाला देने के बाद, के. के. मैथ्यू, जे. ने आगे कहाः"

95. लेकिन यह विस्तार कितना आगे जा सकता है? बहुत कम मामलों को छोड़कर, हमारा संविधान अपने बल से निजी कार्रवाई पर कोई सीमा निर्धारित नहीं करता है। अनुच्छेद 13 (2) में प्रावधान है कि कोई भी राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा जो भाग 3 द्वारा गारंटीकृत अधिकारों को छीन या कम कर दे। यह एक विशेष प्रकृति की राज्य कार्रवाई है जो निषिद्ध है। व्यक्तिगत अधिकार पर व्यक्तिगत आक्रमण, आम तौर पर, अनुच्छेद 13 (2) के अंतर्गत नहीं आता है। दूसरे शब्दों में, यह राज्य की कार्रवाई के खिलाफ है कि मौलिक अधिकारों की गारंटी दी जाती है। कानून, रीति-रिवाज, या न्यायिक या कार्यकारी कार्यवाही के रूप में राज्य प्राधिकरण द्वारा असमर्थित गलत व्यक्तिगत कार्य निषिद्ध नहीं हैं। अनुच्छेद 17, 23 एवं 24 में कहा गया है कि निजी व्यक्तियों द्वारा मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया जा सकता

है एवं अनुच्छेद 32 के तहत उनके खिलाफ उपाय उपलब्ध हो सकता है। लेकिन, कुल मिलाकर, जब तक राज्य द्वारा किसी भी तरह से किसी कार्य को मंजूरी नहीं दी जाती है, तब तक वह कार्रवाई राज्य की कार्रवाई नहीं होगी। दूसरे शब्दों में, जब तक कोई कानून पारित नहीं किया जाता है या राज्य के अधिकारियों या एजेंटों के माध्यम से कुछ कार्रवाई नहीं की जाती है, तब तक राज्य द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जाती है।

(iv) **पीपुल्स युनियन फॉर डेमोक्रॉसी राइट्स (सुप्रा)** में इस न्यायालय ने बताया कि अनुच्छेद 24 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार ठेकेदारों सहित सभी के खिलाफ लागू करने योग्य है।न्यायालय ने एक कदम आगे बढ़ते हुए कहा कि भारत संघ, दिल्ली प्रशासन एवं दिल्ली विकास प्राधिकरण का कर्तव्य है कि वे यह सुनिश्चित करें कि ठेकेदारों द्वारा इस संवैधानिक दायित्व का पालन किया जाए।आगे बढ़ते हुए, इस न्यायालय ने कहा कि कुछ मौलिक अधिकार जैसे कि अनुच्छेद 17,23 एवं 24 में पाए गए अधिकार पूरी दुनिया के खिलाफ लागू किए जा सकते हैं।

(v) **एस० रंगराजन (सुप्रा)** एक एेसा मामला था, जिसमें मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने एक तमिल फीचर फिल्म को जारी 'यू प्रमाण पत्र' इस आधार पर रद्द कर दिया था कि यह आरक्षण नीति का उल्लंघन करती है। तमिलनाडु सरकार ने इस आधार पर उच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन किया कि तमिलनाडु में कई संगठन आंदोलन कर रहे थे कि फिल्म पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए, क्योंकि यह आरक्षित श्रेणियों से संबंधित

लोगों की भावनाओं को आहत करता है। यह इंगित करने के बाद **कि यह न्यायालय राज्य सरकार द्वारा अपनाये गए रुख से खुश एवं परेशान था, इस न्यायालय ने संकेत दिया कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है क्योंकि यह राज्य के खिलाफ दी गई स्वतंत्रता है एवं राज्य शत्रुतापूर्ण दर्शकों की समस्या से निपटने में अपनी असमर्थता का बहाना नहीं कर सकता है। यह मानते हुए कि राज्य** कानून के शासन को नकार नहीं सकता एवं ब्लैकमेल एवं धमकी के सामने आत्मसमर्पण नहीं कर सकता, इस न्यायालय ने कहा कि इसे रोकना एवं स्वतंत्रता की रक्षा करना न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है।

(vi) **श्रीमती नीलाबती** मामले में इस न्यायालय ने **निम्नलिखित के बीच अंतर किया (i) कस्तुरी लाल मामले में लिया गया निर्णय जिसमें राज्य के अपने कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए संप्रभु उन्मुक्ति की दलील को बरकरार रखा गया था, जो अपकृत्य मं उत्तरदायित्व के क्षेत्र तक ही सीमित थी, एवं (ii) मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए राज्य का दायित्व, जिसके लिए संप्रभु प्रतिरक्षा के सिद्धांत का संवैधानिक योजना में कोई अनुप्रयोग नहीं है, पैराग्राफ 34 में,** जिसमें डॉ. ए. एस. आनंद, जे. की अलग लेकिन सहमत राय है, कानून का सारांश इस प्रकार दिया गया थाः-

"34. सार्वजनिक कानून की कार्यवाही निजी कानून की कार्यवाही की तुलना में एक अलग उद्देश्य की पूर्ति करती है। संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत

गारंटीकृत अपूरणीय अधिकार के स्थापित उल्लंघन के लिए इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 32 के तहत या उच्च न्यायालयों द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में अनुकरणीय नुकसान के रूप में मौद्रिक मुआवजे की राहत सार्वजनिक कानून में उपलब्ध एक उपाय है एवं यह नागरिक के गारंटीकृत बुनियादी एवं अपूरणीय अधिकारों के उल्लंघन के लिए सख्त दायित्व पर आधारित है। सार्वजनिक कानून का उद्देश्य न केवल सार्वजनिक शक्ति को सभ्य बनाना है, बल्कि नागरिकों को यह भी आश्वस्त करना है कि वे एक ऐसी कानूनी प्रणाली के तहत रहते हैं जिसका उद्देश्य उनके हितों की रक्षा करना एवं उनके अधिकारों की रक्षा करना है।इसलिए, जब न्यायालय मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन या संरक्षण की मांग करने वाले संविधान के अनुच्छेद 32 या 226 के तहत कार्यवाही में "मुआवजा" देकर राहत प्रदान करता है, तो वह सार्वजनिक कानून के तहत गलत करने वाले को दंडित करने एवं राज्य पर जनता के गलत दायित्व को तय करने के माध्यम से ऐसा करता है जो नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के अपने सार्वजनिक कर्तव्य में विफल रहा है। ऐसे मामलों में मुआवजे के भुगतान को वैसा नहीं समझा जाना चाहिए, जैसा कि इसे आम तौर पर निजी कानून के तहत नुकसान के लिए दीवानी कार्रवाई में समझा जाता है। लेकिन नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा नहीं करने के सार्वजनिक कर्तव्य के उल्लंघन के कारण की गई गलती के लिए सार्वजनिक कानून के तहत 'मौद्रिक क्षतिपूर्ति' करने के आदेश द्वारा

राहत प्रदान करने के व्यापक अर्थ में। क्षतिपूर्ति गलत करने वाले के विरूद्ध उसके सार्वजनिक कानून कर्तव्य के उल्लंघन के लिए दिए गए 'अनुकरणीय हर्जाने' की प्रकृति में है एवं पीड़ित पक्ष को सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय में स्थापित मुकदमे के माध्यम से या/एवं दंडात्मक कानून के तहत अपराधी पर मुकदमा चलाने के लिए निजी कानून के तहत मुआवजे का दावा करने के लिए उपलब्ध अधिकारों से स्वतंत्र है।"

(vii) **लखनऊ विकास प्राधिकरण बनाम एम. के. गुप्ता (1994) 1 एस०सी०सी० 243 में** इस न्यायालय ने बताया कि सार्वजनिक प्राधिकरणों के मनमाने एवं यहां तक कि अधिकार से परे कार्यों के लिए जवाबदेही के प्रशासनिक कानून ने कई कदम उठाए हैं एवं अब इस न्यायालय एवं अंग्रेजी न्यायालयों दोनों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि राज्य अपने कर्मचारियों के मनमाने कार्यों के कारण किसी नागरिक को हुए नुकसान या चोट की भरपाई करने के लिए उत्तरदायी है।

(viii) **बोधिसत्व गौतम (सुप्रा)** में निर्णय विशेष परिस्थितियों में आया। एक कॉलेज की एक छात्रा ने एक व्याख्याता के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 312,420,493,496 एवं 498-ए के तहत कथित अपराधों के लिए शिकायत दर्ज कराई। शिकायत को रद्द करने के लिए व्याख्याता ने धारा 482 दं०प्र०सं० के तहत उच्च न्यायालय का रुख किया।उच्च न्यायालय ने रद्द करने की याचिका को खारिज कर दिया।जब व्याख्याता ने एक विशेष अनुमति याचिका

दायर की, तो इस न्यायालय ने न केवल एसएलपी को खारिज कर दिया, बल्कि इस सवाल पर स्वतः संज्ञान लेते हुए नोटिस भी जारी किया कि उसे अभियोजन पक्ष के लंबित रहने के दौरान उचित मासिक भरण-पोषण का भुगतान करने के लिए क्यों नहीं कहा जाना चाहिए।अंत में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने के बाद मासिक अंतरिम मुआवजे के भुगतान का आदेश दिया कि क्या वह**अनुच्छेद 21 के तहत प्रदत्त महिलाओं के मौलिक अधिकार का उल्लंघन था एवं इसलिए इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 32 के तहत एक उपाय प्रदान किया जा सकता है, यहां तक कि गैर-राज्य तंत्र (अर्थात् अभियुक्त) के विरूद्ध भी।** इस निर्णय का उल्लेख अनुमोदन के साथ अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड और अन्य बनाम चंद्रिमा दास (श्रीमती) और अन्य (2000) 2 **एस०सी०सी०** 465 में किया गया था।

(ix) जैसा कि विद्वान न्यायमित्र द्वारा सही ढंग से रेखांकित किया गया है, इस न्यायालय ने पर्यावरण कानून व्यवस्था के तहत गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ हर्जाना दिया है, जब भी वे अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार का उल्लंघन करते पाए गए हैं।उदाहरण के लिए यह न्यायालय **एम. सी. मेहता बनाम कमल नाथ (1997) 1 एस०सी०सी० 388** एक मामले से संबंधित था। जहाँ एक कंपनी ने ब्यास नदी के तट पर एक क्लब बनाया, जिसे आंशिक रूप से सरकार से पट्टे पर लिया गया था एवं आंशिक रूप से वन भूमि में अतिक्रमण करके एवं नदी के मार्ग को वस्तुतः बदल दिया गया था। वेल्लोर**सिटिजन्स वेलफेयर**

फोरम बनाम भारत संघ (1996) 5 एस०सी०सी० 647 में वर्णित "प्रदूषक भुगतान सिद्धांत" आैर "एहतियाती सिद्धांत" को लागू करते हुए आैर भारतीय पर्यावरण कानूनी कार्यवाही परिषद बनाम भारत संघ (1996) 3 एस०सी०सी० 212 में भी लागू किया गया, इस न्यायालय ने निजी मोटल के मालिक को क्षेत्र की पारिस्थितिकी की बहाली की लागत के लिए मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया। इसके बाद, मोटल को कारण बताआे नोटिस जारी किया गया कि उन्हें खराब पर्यावरण के लिए मुआवजे का भुगतान करने के लिए क्यों नहीं कहा जाना चाहिए एवं प्रदूषण के लिए जुर्माना क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए। जवाब में, मोटल ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि हालांकि अनुच्छेद 32 के तहत कार्यवाही में यह न्यायालय उन पीड़ितों को मुआवजा देने के लिए स्वतंत्र है, जिनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया था या जो मनमाने ढंग से कार्यकारी कार्रवाई के शिकार हैं या सार्वजनिक अधिकारियों के क्रूर व्यवहार के शिकार हैं, न्यायालय उन लोगों पर कोई जुर्माना नहीं लगा सकती है जो उस कार्रवाई के दोषी हैं।मोटल ने यह भी तर्क दिया कि जुर्माना आपराधिक न्यायशास्त्र का एक घटक है एवं इसलिए जुर्माना लगाना अनुच्छेद 20 एवं 21 का उल्लंघन होगा।इस न्यायालय ने, जहां तक जुर्माने के घटक का संबंध है, उक्त तर्क को स्वीकार करते हुए, पहले से दिए गए हर्जाने के अलावा, अनुकरणीय हर्जाना क्यों नहीं दिया जाए, इसका कारण दिखाने के लिए मोटल को नए सिरे से नोटिस जारी करने का निर्देश दिया।

इसके बाद, इस न्यायालय ने एम. सी. मेहता बनाम कमल नाथ (सुप्रा फुटनोट no.15 पर) निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया इस प्रकार है:-

"10. अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के मामले में, सार्वजनिक कानून क्षेत्र के तहत, न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उन लोगों के खिलाफ हर्जाना घोषित किया गया है जो उद्योगों को चलाकर या किसी अन्य गतिविधि से पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ने के लिए जिम्मेदार हैं, जिसका पर्यावरण में प्रदूषण पैदा करने का प्रभाव पड़ता है। न्यायालय हर्जाना देते समय "प्रदूषक भुगतान सिद्धांत" को भी लागू करता है, जिसे प्रदूषण एवं नियंत्रण की लागत के भुगतान के साधन के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है।दूसरे शब्दों में कहें तो गलत काम करने वाला, प्रदूषक, पर्यावरण को हुए नुकसान की भरपाई करने के लिए बाध्य है।"

(x) **उपभोक्ता शिक्षा और अनुसंधान केंद्र और अन्य बनामभारत संघ एवं अन्य (1995) 3 एस०सी०सी० 42** में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उपयुक्त मामलों में न्यायालय नियोक्ता को, चाहे वह राज्य हो या उसका उपक्रम या निजी नियोक्ता, जीवन के अधिकार को सार्थक बनाने, कार्यस्थल के प्रदूषण को रोकने, पर्यावरण की सुरक्षा, श्रमिकों के स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं लोगों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए मुक्त एवं अप्रदूषित पानी को संरक्षित करने के लिए उचित निर्देश दे सकता है।न्यायालय उस मामले में एस्बेस्टस

उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों को होने वाले पेशागत स्वास्थ्य खतरों एवं बीमारियों से निपट रहा था। रिपोर्ट के अनुच्छेद 29, इस न्यायालय ने कहा, "इसलिए यह स्थापित कानून है कि सार्वजनिक कानून में मुआवजे का दावा मौलिक एवं मानवाधिकारों के प्रवर्तन एवं संरक्षण के लिए अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के तहत उपलब्ध एक उपाय है। यह राज्य, उसके कर्मचारियों, उसके उपकरणों, एक कंपनी या किसी व्यक्ति द्वारा अपनी शक्तियों के कथित प्रयोग और कानून के तहत या कानून के तहत जारी लाईसेंस के तहत दावा किए गए अधिकारों के प्रवर्तन या संविधान या कानून के तहत किसी अधिकार या कर्त्तव्य के प्रवर्तन के लिए किए गए उल्लंघन के लिए उपलब्ध निवारण का एक व्यावहारिक एवं सस्ता तरीका है।

(xi) **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) 6 एस०सी०सी० 241** में इस न्यायालय ने कामकाजी महिलाओं के लैंगिक समानता के अधिकार को लागू करने के लिए एक वर्ग कार्यवाही याचिका में दिशानिर्देश निर्धारित किए। जो कामकाजी महिलाओं के मौलिक अधिकारों को लागू करने एवं कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए दायर की गई थी। दिशानिर्देशों ने सार्वजनिक एवं निजी दोनों नियोक्ताओं पर अनुच्छेद 14,15,19 (1) (जी) एवं 21 के तहत कामकाजी महिलाओं को गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करने का दायित्व लगाया। **मेधा कोतवाल लेले और अन्य बनाम संघ (2013) 1 एस०सी०सी० 297** में इस न्यायालय ने नोट किया कि विशाखा

(सुप्रा) में फैसले के 15 साल बाद भी कई राज्यों ने आवश्यक संशोधन नहीं किए। इस न्यायालय ने पैराग्राफ 44.4 में एक निर्देश जारी कियाः

"44.4 राज्य के पदाधिकारी एवं निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों/संगठनों/निकायों/संस्थानों आदि कोविशाखा का पूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त तंत्र स्थापित करना होगा कि [विशाखा बनाम राजस्थान राज्य, (1997) 6 एस. सी. सी. 241:1997 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 932] के दिशानिर्देशों का पालन किया जाना चाहिए और आगे यह प्रावधान है कि यदि कथित उत्पीड़क दोषी पाया जाता है, तो शिकायतकर्ता पीड़ित को ऐसे उत्पीड़क के साथ/उसके तहत काम करने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए एवं जहां उपयुक्त एवं संभव हो, कथित उत्पीड़क का स्थानांतरण किया जाना चाहिए। इसके अलावा यह प्रावधान किया जाना चाहिए कि साक्षियों एवं शिकायतकर्ताओं को परेशान करने एवं डराने-धमकाने के लिए गंभीर अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाएगी।"

(xii) **गीता हरिहरन (सुश्री) और अन्य बनाम भारतीय रिजर्व बैंक एवं अन्य (1999) 2 एस०सी०सी० 228** में, यह न्यायालय हिंदू अल्पसंख्यक एवं संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 (ए) एवं अभिभावक एवं वार्ड अधिनियम, 1890 की धारा 19 (बी) को चुनौती दे रहा था, जिसमें पिता को नाबालिग बेटे एवं अविवाहित बेटी के व्यक्ति एवं संपत्ति का प्राकृतिक संरक्षक घोषित किया गया था। इन प्रावधानों के तहत 'पिता के बाद' माँ को प्राकृतिक

संरक्षक के रूप में मान्यता दी गई थी। इन प्रावधानों के परिणामस्वरूप बच्चों के साथ व्यवहार करते समय एक-दूसरे से अलग हुए पति-पत्नी को कठिनाई हुई। सी. ई. डी. ए. डब्ल्यू. जैसे कुछ अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के तहत राज्य के दायित्वों को महिलाआें की गरिमा आैर लैंगिक समानता के अधिकार में पढ़ते हुए, जो अनुच्छेद 21 तथा 14 से पता चलता है, इस तरह की व्याख्या करके इस न्यायालय ने कुटुंब विधि के क्षेत्र में एक शब्द की व्याख्या करने के लिए मौलिक अधिकारों का आह्वान किया।

(xiii) **भारतीय चिकित्सा संघ बनाम भारतीय संघ (2011) 7 एस०सी०सी० 179 में** आर्मी कॉलेज ऑफ मेडिकल साइंसेज की प्रवेश परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर केवल उन लोगों को प्रवेश देने की नीति चुनौती के दायरे में थी जो सेना के कर्मियों के बच्चे हैं।विचार के लिए जो सवाल आया वह यह था कि क्या किसी निजी संस्था द्वारा यह भेदभावपूर्ण व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 15 का उल्लंघन होगा।

"187. जिस प्रकार शिक्षा, टी. एम. ए. पाई [(2002) 8 एस. सी. सी. 481] के अनुसार, अनुच्छेद 19 के खंड (1) के उपखंड (जी) के तहत एक व्यवसाय है, एवं यह एक ऐसी सेवा है जो एक शुल्क के लिए दी जाती है जो उस सेवा को प्रदान करने में शैक्षणिक संस्थान के सभी खर्चों के साथ-साथ एक उचित अधिशेष का ध्यान रखती है, एवं आम जनता में से उन सभी को दी जाती है, जो अन्यथा योग्य हैं, तो ऐसे शैक्षणिक संस्थान भी अनुच्छेद 15

के खंड (2) के अनुशासन के अधीन होंगे। इस संबंध में, **अनुच्छेद 15 के खंड (2) के उपरोक्त व्याख्या का तात्पर्य, जब अनुच्छेद 14,15,16 एवं अनुच्छेद 38 में निहित समतावादी न्यायशास्त्र के संदर्भ में पढ़ा जाता है, एवं एक ऐसे समाज की स्थापना की हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं के साथ पढ़ा जाता है जिसमें स्थिति एवं अवसर की समानता, एवं सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, इसका अर्थ यह होगा कि ऐसी सुविधाएं प्रदान करने वाले निजी क्षेत्र को अपने कार्यों का संचालन इस तरह से नहीं करना चाहिए जो मौजूदा भेदभाव एवं नुकसान को बढ़ावा देता है।"**

(xiv) **सोसायटी फॉर अनएडेड प्रार्इवेट स्कूल्स आॅफ राजस्थान (सुप्रा)** में बच्चों के लिए निःशुल्क् आैर अनिवार्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 की धारा 12 की संवैधानिक वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गर्इ थी कि यह निजी क्षेत्र में स्कूल स्थापित करने वालों के लिए अनुच्छेद 19(1)(जी) आैर 30 का उल्लंघन करता है। इस प्रावधान की संवैधानिकता को बरकरार रखते हुए, जिसमें निजी एवं राज्य द्वारा वित्त पोषित सभी स्कूलों को वंचित पृष्ठभूमि के छात्रों के लिए अपने प्रवेश का 25 प्रतिशत आरक्षित करने की आवश्यकता थी, इस न्यायालय ने कहाः

"222. ऊपर उल्लिखित प्रावधानों एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के अन्य प्रावधानों से संकेत मिलता है कि बच्चों को अधिकारों की गारंटी दी गई है एवं उन अधिकारोें के साथ बच्चों के अधिकारों का सम्मान करने, उनकी रक्षा

करने एवं उन्हें पूरा करने के लिए राज्य के दायित्व भी जुड़े हुए हैं। सुरक्षा **के दायित्व का तात्पर्य क्षैतिज अधिकार से है जो राज्य पर यह दायित्व डालता है कि वह देखे कि गैर-राज्य तंत्रों द्वारा इसका उल्लंघन न किया जाए। गैर-राज्य तंत्रों के लिए बच्चों के अधिकारों का सम्मान करना बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए अहिंसक कर्तव्य है एवं दूसरों द्वारा बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए उन पर एक सकारात्मक कर्तव्य अधिरोपित करता है एवं बच्चों के अधिकारों को पूरा करने एवं प्रगतिशील सुधार के लिए उपाय करने के लिए भी। दूसरे शब्दों में, गैर-राज्य गतिविधि के क्षेत्रों में बच्चों के अधिकारों का कोई उल्लंघन नहीं किया जाएगा।**

(xv) **जीजा घोष बनाम भारत संघ (2016) 7 एस०सी०सी० 761** में, याचिकाकर्ता, सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित एक विकलांग व्यक्ति था, को अक्षमता के कारण उड़ान चालक दल द्वारा स्पाइसजेट के विमान से उतारने का आदेश दिया गया था।याचिका यह सुनिश्चित करने के लिए एक प्रणाली स्थापित करने के लिए दायर की गई थी कि मानव गरिमा का एेसा उल्लंघन एवं असमानता, समान स्थिति वाले व्यक्तियों के साथ न हो। इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी कीः

"10. याचिकाकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि भारत संघ (प्रतिवादी 1) का यह सुनिश्चित करने का दायित्व है कि उसके नागरिक इस तरह के मनमाने एवं अपमानजनक भेदभाव के अधीन न हों।यह उनके

मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, जिसमें जीवन का अधिकार, समानता का अधिकार, भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने का अधिकार एवं स्वतंत्रतापूर्वक अपने पेशे का अभ्यास करने का अधिकार शामिल है। इन अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करना राज्य का दायित्व है- विशेष रूप से विकलांग लोगों के लिए।..."इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता को निजी एयरलाइन के खिलाफ इस आधार पर मुआवजा दिया कि एयरलाइन, हालांकि एक निजी उद्यम है, उसे अपने मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए था।

(xvi) **ज़ी टेलीफिल्म्स लिमिटेड बनाम.भारत संघ (2005) 4 एस०सी०सी० 649, में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया** कि यद्यपि बी. सी. सी. आई. "राज्य" शब्द के दायरे में नहीं आता है, तथापि यह सार्वजनिक कर्तव्यों का निर्वहन करता है एवं इसलिए भले ही अनुच्छेद 32 के तहत कोई उपाय उपलब्ध न हो, पीड़ित पक्ष हमेशा सामान्य अदालतों के समक्ष या अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका के माध्यम से उपचार की मांग कर सकता है। इस न्यायालय ने कहा कि संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन करने वाला केवल इसलिए मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि वह एक राज्य नहीं है।उक्त तर्क को इस न्यायालय द्वारा **जेनेट जयपॉल बनाम एस. आर. एम. विश्वविद्यालय (2015) 16 एस०सी०सी० 530** में एक "मानद विश्वविद्यालय" के लिए इस आधार पर विस्तारित किया गया था कि हालांकि यह एक निजी विश्वविद्यालय है, लेकिन यह शिक्षा प्रदान करके "सार्वजनिक कार्यों" का निर्वहन कर रहा था।

77. उपरोक्त सभी निर्णयों से पता चलता है कि मामले-दर-मामले के आधार पर, इस न्यायालय ने उल्लंघन किए गए अधिकार की प्रकृति एवं उल्लंघनकर्ता की ओर से दायित्व की सीमा को ध्यान में रखते हुए क्षैतिज प्रभाव लागू किया।लेकिन न्यायालयों को ऐसे मामलों से निपटने के लिए कुछ बुनियादी दिशानिर्देश रखने में सक्षम बनाने के लिए, इस न्यायालय ने **न्यायमूर्ति के. एस. पुट्टास्वामी** के रूप में एक उपकरण विकसित किया। निजता के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में पुष्टि करते हुए, इस न्यायालय ने परिदृश्य को निम्नानुसार निर्धारित कियाः

> "397. एक बार जब हम मौलिक अधिकारों की प्रकृति की इस समझ पर पहुंच जाते हैं, तो हम संघ के तर्क की एक मूल धारणा को समाप्त कर सकते हैं- **कि एक अधिकार या तो एक सामान्य कानून होना चाहिए या मौलिक अधिकार।** अधिकार के दो वर्गों के बीच एकमात्र भौतिक अंतर-जिनमें से प्रकृति एवं सामग्री समान हो सकती है-अधिकार का सम्मान करने के कर्तव्य की घटना में एवं उस मंच में निहित है जिसमें ऐसा करने में विफलता का निवारण किया जा सकता है।**सामान्य कानून के अधिकार उनके संचालन में क्षैतिज होते हैं जब उनका उल्लंघन किसी के साथी व्यक्ति द्वारा किया जाता है, तो उनका नाम लिया जा सकता है एवं कानून के एक सामान्य न्यायालय में उनके खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है। दूसरी ओर, संवैधानिक एवं मौलिक अधिकार, एक अमूर्त इकाई के रूप में "राज्य" द्वारा एक मूल्यवान हित के उल्लंघन के खिलाफ उपचार प्रदान करते हैं। चाहे वह**

कानून के माध्यम से हो या अन्यथा, साथ ही पहचान योग्य सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा, जो राज्य की शक्तियों से लैस व्यक्तियों द्वारा एक मूल्यवान हित के उल्लंघन के विरूद्ध उपचार प्रदान करते हैं। हित के लिए एक साथ एक सामान्य कानून अधिकार एवं मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देना पूरी तरह से संभव है।जहां किसी मान्यता प्राप्त हित में हस्तक्षेप राज्य या अनुच्छेद 12 द्वारा मान्यता प्राप्त किसी अन्य संस्था द्वारा किया जाता है, वहां मौलिक अधिकार के उल्लंघन का दावा किया जाएगा।जहाँ एक समान हस्तक्षेप का लेखक एक गैर-राज्य तंत्र है, वहां सामान्य कानून में एक कार्रवाई एक सामान्य न्यायालय में होगी।

398. निजता की प्रकृति एक सामान्य कानून अधिकार के साथ-साथ एक मौलिक अधिकार दोनों होने की है। इसकी सामग्री, दोनों रूपों में, समान है। बस आैर इतना है कि प्रत्येक रूप के लिए बोझ की मात्रा एवं प्रवर्तन के लिए मंच अलग-अलग है।"

78. इस प्रकार प्रश्न संख्या 2 का उत्तर आंशिक रूप से **न्यायमूर्ति के. एस. पुट्टास्वामी** के मामले में 9 में न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय में पाया जाता है। हमने ऊपर सूचीबद्ध न्यायिक घोषणाओं की श्रृंखला से देखा है कि **ए०के० गोपालन बनाम मद्रास ए०आर्इ०आर० 1950 एस०सी० 27 राज्य** के मामले में अपनी पकड़ खोने के बाद, इस न्यायालय ने स्वास्थ्य, पर्यावरण, परिवहन, शिक्षा एवं कैदी जीवन आदि जैसे कई क्षेत्रों में अनुच्छेद 21 का विस्तार किया है। जैसा कि विवियन बोस, जे. ने कहा

एस. कृष्णन बनाम मद्रास राज्य ए०आर्इ०आर० 1951 एस०सी० 301 में काव्यात्मक भाषा में कहा था, "एक पल के लिए कानून की संकीर्णता को दरकिनार कर दें एवं इसके बारे में एवं उसके बारे में सभी विद्वान विवादों को भूल जाएं, एवं "एवं "या" या ", "या" हो सकता है "एवं" चाहिए"। शब्दों के केवल शब्दजाल से आगे देखें एवं उनके हृदय एवं आत्मा में गहराई से प्रवेश करें। इस न्यायालय की मूल सोच कि इन अधिकारों को केवल राज्य के खिलाफ ही लागू किया जा सकता है, समय के साथ बदल गई।"राज्य" से "प्राधिकरणों" में "राज्य के उपकरणों" से "सरकार की एजेंसी" में परिवर्तन "सरकारी चरित्र से प्रभावित से "राज्य द्वारा प्रदत्त एकाधिकार स्थिति का आनंद" से "गहरा एवं व्यापक नियंत्रण" **(आर०डी० सेट्टी विरूद्ध अंतर्राष्ट्रीय हवार्इ अड्डा प्रबंधन (1979) 3 एस०सी०सी० 489) से** "किए गए कर्तव्यों/कार्यों की प्रकृति" में परिवर्तन हुआ" **एन्डी मुक्ता विरूद्ध व्ही०आर० रूदानी (1989) 2 एस०सी०सी० 691**. इसलिए, हम प्रश्न संख्या 2 का उत्तर इस प्रकार देंगेः

अनुच्छेद 19/21 के तहत एक मौलिक अधिकार को राज्य या उसके तंत्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है ।

<u>प्रश्न संख्या 3</u>

79. "क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो?" यह तीसरा प्रश्न है जिसका हमें उल्लेख किया गया है

80. इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, एक छोटा सा सुधार करना आवश्यक है। अनुच्छेद 21 का अधिकार न केवल नागरिकों के लिए बल्कि सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध है।इसलिए प्रश्न संख्या 3 में उल्लिखित 'नागरिक' शब्द को 'व्यक्ति' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

81. जैसा कि हमने उपरोक्त अनुच्छेद 73 के तहत तालिका में बताया है, अनुच्छेद 21 में "राज्य" अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं किया गया है।यह अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति को गारंटी देता है कि उसे कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।भाग-III की योजना के अनुसार, जिसे हमने पूर्ववर्ती पैराग्राफ एवं पैराग्राफ 73 में तालिका दोनों में रेखांकित किया है, यह स्पष्ट है कि राज्य के दो दायित्व हैं, (i) किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं करना; एवं (ii) यह सुनिश्चित करना कि किसी व्यक्ति का जीवन एवं स्वतंत्रता अन्यथा भी वंचित न हो। **अनुच्छेद 21 यह नहीं कहता कि "राज्य किसी व्यक्ति को उसके जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं करेगा", लेकिन यह कहता है कि "किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा"।**

82. जब संविधान को अपनाया गया था, तो "जीवन" एवं "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" शब्दों के बारे में हमारी समझ वैसी नहीं थी जैसी पिछले सात दशकों में विकसित हुई है। इसी तरह, उस समय यह कल्पना या धारणा नहीं की गई थी कि राज्य के अलावा कोई अन्य व्यक्ति किसी व्यक्ति के जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता से

वंचित करने में सक्षम है, सिवाय एक दंडनीय अपराध करने के।लेकिन कानून, जीवन एवं स्वतंत्रता की हमारी दार्शनिक समझ के बढ़ते क्षितिज एवं विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ, हमें एहसास हुआ है कि "जीवन एक खाली सपना नहीं है" एवं "हमारे दिल कब्र तक अंतिम संस्कार के जुलूसों को बजाते हुए बंद ड्रम नहीं हैं",(एच०डब्लू लान्गफेलो की 'जीवन एक भजन') न ही "जीवन एक मूर्ख द्वारा बताई गई कहानी है, जो ध्वनि एवं क्रोध से भरी हुई है जो कुछ भी नहीं दर्शाती है" (शेक्सपियर की मैकबेथ)।

83. समय के साथ, इस न्यायालय ने 'जीवन के अधिकार' की व्याख्या करते हुए कहा है, (i) आजीविका; (ii) जीवन के वे सभी पहलू जो किसी व्यक्ति के जीवन को सार्थक, पूर्ण एवं जीने लायक बनाते हैं; (iii) केवल जीवित रहने या पशु अस्तित्व से कुछ अधिक; (iv) मानव गरिमा के साथ जीने (एवं मरने) का अधिकार; (v) भोजन, पानी, सभ्य वातावरण, चिकित्सा देखभाल एवं आश्रय आदि का अधिकार।; ((vii) वह सब जो किसी व्यक्ति के जीवन को अर्थ देता है, जैसे कि उसकी परंपरा, संस्कृति, विरासत एवं उस विरासत की पूर्ण मात्रा में सुरक्षा; एवं (vii) निजता का अधिकार।कुछ ऐसे क्षेत्राधिकार हैं जिन्होंने "भूल जाने का अधिकार" या "याद न किए जाने का अधिकार" को शामिल करने के लिए लिया है।

84. जब "जीवन" शब्द का अर्थ केवल भौतिक अस्तित्व समझा जाता था, तो इसका अभाव आम तौर पर केवल राज्य द्वारा ही संभव माना जाता था, सिवाय उन मामलों के जहां किसी ने दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध किया हो।लेकिन

जिस क्षण अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार को अधिकारों के गुलदस्ते के रूप में विकसित किया गया एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की घुसपैठ हुई, गैर-राज्य तंत्रों द्वारा भी अधिकार से वंचित होना संभव हो गया।पिछले 3 से 4 दशकों में एक और विकास यह हुआ है कि सरकार के कई कार्यों को या तो गैर-राज्य तंत्रों को आउटसोर्स किया गया है या सार्वजनिक-निजी भागीदारी को सौंपा गया है। यही कारण है कि उच्च न्यायालयों एवं इस न्यायालय ने अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के तहत किसी कार्रवाई की स्थिरता का पता लगाने के लिए आवेदन किए जाने वाले परीक्षणों को संशोधित किया।एक समय पर, अनुच्छेद 32/226 के तहत एक याचिका की रखरखाव इस बात पर निर्भर करता था कि "प्रतिवादी कौन था"। बाद में अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के लिए उसकी उपयुक्तता का पता लगाने के लिए "प्रत्यर्थी द्वारा किए गए कर्तव्यों/कार्यों की प्रकृति, पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

85. जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता दो अलग-अलग चीजें हैं, भले ही वे समग्र का एक अभिन्न अंग हों एवं उनके अलग-अलग अर्थ हैं। प्रश्न संख्या 3 इस तरह से लिखा गया है कि 'जीवन से वंचित' होने पर ध्यान केंद्रित नहीं किया गया है। लेकिन (i) 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित' एवं वह भी किसी अन्य व्यक्ति या निजी एजेंसी के कृत्यों या चूक; से एवं (ii) राज्य का कर्त्तव्य है कि वह इसकी सकारात्मक रूप से रक्षा करेगा। इसलिए, हम अपनी चर्चा में दो पहलुओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करेंगे, अर्थात् (i) गैर-राज्य तंत्रों द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करना; एवं (ii) राज्य का

कर्तव्य।**"व्यक्तिगत स्वतंत्रता"** अभिव्यक्ति एवं यूनानी सभ्यता में इसकी उत्पत्ति का एक विस्तृत विवरण **सिद्धराम सतलिंगप्पा मेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 1 एस०सी०सी० 694** में इस न्यायालय के फैसले में पाया जा सकता है।यह हमारे उद्देश्य के लिए कहने के लिए पर्याप्त है कि इस निर्णय में, इस न्यायालय ने रिपोर्ट के पैराग्राफ 53 में पहचान की कि अनुच्छेद 21 दो अधिकारों की गारंटी देता है, अर्थात्, (i) जीवन का अधिकार; एवं (ii) व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार। इसलिए, जिस तरह से प्रश्न संख्या 3 तैयार किया गया है, उसके कारण हम अपनी चर्चा को व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक सीमित रखने की कोशिश करेंगे, हालांकि कभी-कभी दोनों एक-दूसरे से मेल खा सकते हैं या आपस में बदल सकते हैं।

86. अनुच्छेद 21 में वर्णित "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" का अर्थ इस न्यायालय में **ए०के० गोपालन (सुप्रा)** में किसी व्यक्ति को कारावास या अन्यथा शारीरिक रूप से प्रतिबंधित करने से स्वतंत्र माना था। हालाँकि, "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति की समझ **खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए०आर्इ०आर० 1963 एस०सी० 1295** में व्यापक हुर्इ। यह एक ऐसा मामला था जिसमें एक व्यक्ति जिस पर मूल रूप से डकैती के अपराध का आरोप लगाया गया था एवं बाद में सबूतों के अभाव में रिहा कर दिया गया था, उसे पुलिस द्वारा निगरानी में रखा गया था एवं उसका नाम उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के तहत इतिहास-पत्रक में शामिल किया गया था।नतीजतन, उन्हें बार-बार पुलिस स्टेशन जाना पड़ता था।कभी-कभी पुलिस रात में उनके घर का दौरा करती थी।वे दरवाजा खटखटाते थे, उसकी नींद में खलल डालते थे एवं जब भी

वह गाँव से बाहर जाता तो पुलिस को सूचित करने के लिए कहते थे। हांलाकि संविधान पीठ ने बहुमत से **खड़क सिंह (सुप्रा)** में माना कि घर-घर जाकर मुलाकात करने की अनुमति देने वाला नियत असंवैधानिक है, लेकिन बहुमत ने पुलिस निगरानी को इस आधार पर बरकरार रखा कि (उस समय) निजता का अधिकार मौलिक अधिकारों का हिस्सा नहीं बना था। लेकिन के. सुब्बा राव, जे. ने अपने एवं जे. सी. शाह, जे. के लिए बोलते हुए कहा कि अनुच्छेद 21 में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा निजता को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक है।**ए. के. गोपालन** में यह विचार परिलक्षित हुआ कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन करने के लिए शारीरिक संयम आवश्यक था, जिसे के. सुब्बा राव, जे. ने **खरक सिंह** में अपनी अल्पमत राय में पूरी तरह से बदल दिया था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को एक पूरी तरह से नया आयाम देते हुए, जे. के. सुब्बा राव ने कहाः

> "(31) यह अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि इसमें अपनी गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबंधों से मुक्त होने का अधिकार भी शामिल है। आधुनिक युग में"जबरदस्ती" अभिव्यक्ति को संकीर्ण रूप में नहीं लिया जा सकता है। **एक ऐसे असभ्य समाज में जहां कोई बाधा नहीं है, केवल शारीरिक प्रतिबंध व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कम कर सकते हैं, लेकिन जैसे-जैसे सभ्यता आगे बढ़ती है, मनोवैज्ञानिक प्रतिबंध शारीरिक प्रतिबंधों की तुलना में अधिक प्रभावी होते हैं। मनुष्य के मन को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किए जाने वाले वैज्ञानिक तरीके वास्तविक अर्थों में शारीरिक प्रतिबंध हैं, क्योंकि वे शारीरिक भय पैदा**

करते हैं जो किसी के कार्यों को प्रत्याशित एवं अपेक्षित खांचे के माध्यम से संचालित करते हैं।तो भी ऐसी स्थितियों का निर्माण जो आवश्यक रूप से अवरोध एवं भय जटिलताओं को उत्पन्न करते हैं, उन्हें शारीरिक प्रतिबंधों के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसके अलावा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में न केवल उसकी गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबंधों से मुक्त होने का अधिकार शामिल है, बल्कि उसके निजी जीवन पर अतिक्रमण से मुक्त होने का अधिकार भी शामिल होता है। यह सच है कि हमारे संविधान स्पष्ट रूप से निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में घोषित नहीं करता है, लेकिन उक्त अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता का एक अनिवार्य घटक है। **प्रत्येक लोकतांत्रिक देश घरेलू जीवन को पवित्र बनाता है; उससे उसे आराम, शारीरिक सुख, मन की शांति आैर सुरक्षा मिलने की अपेक्षा की जाती है।** अंतिम उपाय में, एक व्यक्ति का घर, जहाँ वह अपने परिवार के साथ रहता है, उसका "महल" है; यह उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के खिलाफ उसकी प्राचीर है। उस प्रसिद्ध न्यायाधीश, फ्रैंकफर्टर जे., (1948) 338 यू. एस. 25 में, पुलिस द्वारा मनमाने ढंग से घुसपैठ के खिलाफ किसी की गोपनीयता की सुरक्षा के महत्व की ओर इशारा करते हुए, एक अमेरिकी घर से एक भारतीय घर के लिए कम लागू नहीं हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति की गतिविधियों पर शारीरिक प्रतिबंध उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं, तो उसके निजी जीवन पर शारीरिक अतिक्रमण इसे बड़े पैमाने पर प्रभावित करेगा।वास्तव में, एक आदमी

की शारीरिक खुशी एवं स्वास्थ्य के लिए उसकी निजता में एक सुनियोजित हस्तक्षेप से अधिक हानिकारक कुछ भी नहीं है। **इसलिए हम अनुच्छेद 21 में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को किसी व्यक्ति के अपने व्यक्ति पर प्रतिबंधों या अतिक्रमणों से मुक्त होने के अधिकार के रूप में परिभाषित करेंगे। चाहे वे प्रतिबंध या अतिक्रमण प्रत्यक्ष रूप से लगाए गए हों या अप्रत्यक्ष रूप से सोचे समझे उपायों द्वारा लाए गए हों।** यह इस प्रकार समझा गया कि विनियमन 236 के तहत निगरानी के सभी कार्य संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हैं।"

जैसा कि जे. रोहिंटन नरीमन ने **मोहम्मद आरिफ उर्फ अशफाक बनाम पंजीयक, भारत का सर्वोच्च न्यायालय और अन्य (2014) 9 एस०सी०सी० 737 में बताया।** सुब्बा राव एवं शाह, जे. जे. का अल्पमत का निर्णय अंततः **रुस्तम कावासजी कूपर बनाम भारत संघ (1970) 1 एस०सी०सी० 248 (बैंक राष्ट्रीयकरण मान्यता)** में कानून बन गया। जहां 11 वें न्यायाधीशों की पीठ ने अंततः ए. के. गोपालन में व्यक्त विचार को खारिज कर दिया एवं कहा कि विभिन्न अनुच्छेदों में निहित विभिन्न मौलिक अधिकार पारस्परिक रूप से अनन्य नहीं हैं।

87. यदि यू. पी. पुलिस विनियमों को **खड़क सिंह** में चुनौती दी गई थी, तो मध्य प्रदेश राज्य द्वारा जारी किए गए समान विनियमों को **गोबिंद बनाम मध्य**

प्रदेश राज्य (1975) 2 एस०सी०सी० 148 में चुनौती दी गई।यद्यपि इस न्यायालय ने विवादित विनियमों को बरकरार रखा, लेकिन के. के. मैथ्यू, जे. ने बतायाः"

25. संविधान में नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं को इस बात की गारंटी देने के लिए निर्धारित किया गया है कि व्यक्ति, उसका व्यक्तित्व एवं उसके व्यक्तित्व से जुड़ी चीजें आधिकारिक हस्तक्षेप से मुक्त होंगी, सिवाय इसके कि हस्तक्षेप के लिए एक उचित आधार मौजूद हो। "प्रोफेसर कॉर्विन द्वारा गढ़ा गया वाक्यांश "सरकार के खिलाफ स्वतंत्रता" इस विचार को जोरदार ढंग से व्यक्त करता है।इस अर्थ में, नागरिकों के कई मौलिक अधिकारों को निजता के अधिकार में योगदान के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

*** *** ***

27. घर की गोपनीयता की रक्षा के लिए दो संभावित सिद्धांत हैं।पहला यह है कि घर में की जाने वाली गतिविधियाँ दूसरों को केवल इस हद तक नुकसान पहुंचाती हैं कि वे केवल इस विचार से उत्पन्न होने वाले अपराध का कारण बनती हैं कि व्यक्ति ऐसी गतिविधियों में शामिल हो सकते हैं एवं इस तरह का 'नुकसान' राज्य द्वारा संवैधानिक रूप से संरक्षित नहीं है। दूसरा **यह है कि व्यक्तियों को एक ऐसे शरणस्थली की आवश्यकता होती है जहाँ वे सामाजिक नियंत्रण से मुक्त हो सकें। इस तरह की शरणस्थली का महत्व यह है कि व्यक्ति मुखौटा उतार सकते हैं, कुछ समय के लिए दुनिया में उस छवि को पेश करने से बच सकते हैं जिसे वे खुद के रूप में स्वीकार करना चाहते हैं, एक**

ऐसी छवि जो उनके स्वभाव की वास्तविकताओं के बजाय उनके साथियों के मूल्यों को प्रतिबिंबित कर सकती है।

(देखें 26, स्टेनफोर्ड लॉ रेव. 1161, 1187)

88. इस प्रकार **ए०के० गोपालन** ने इस न्यायालय की समझ कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए शारीरिक संयम की आवश्यकता होती है, **खड़क सिंह आैर गोविन्द (सुप्रा)** में बदल गयी। वहाँ से, कानून **सतवंत सिंह साहनी बनाम डी रामारत्नम, सहायक पासपोर्ट अधिकारी, नई दिल्ली ए०आर्इ०आर० 1967 एस०सी० 1836** में अगले चरण में चला गया। जहां इस न्यायालय की संविधान पीठ ने बहुमत से अभिनिर्धारित किया कि **व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में अवागमन का अधिकार एवं विदेश यात्रा करने का अधिकार शामिल था।**उक्त निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि **हमारे संविधान में "स्वतंत्रता" का वही व्यापक अर्थ है जो अमेरिकी संविधान के 5 वें एवं 14 वें संशोधनों द्वारा"स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति को दिया गया है एवं अनुच्छेद 21 में "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति केवल संविधान के अनुच्छेद 19 में निहित "स्वतंत्रता" के तत्वों को बाहर करती है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" की अभिव्यक्ति में अवागमन एवं विदेश यात्रा करने के अधिकार शामिल है, लेकिन भारत के सभी क्षेत्रों में जाने का अधिकार इसके दायरे में नहीं आता है क्योंकि यह विशेष रूप से अनुच्छेद 19 में प्रदान किया गया है।"**

89. **सतवंत सिंह (सुप्रा)** एक व्यवसायी का मामला था, जिसे निर्यात आैर आपात नियंत्रण अधिनियम के तहत उसके खिलाफ लंबित जांच के कारण भारत से बाहर यात्रा करने से रोकने के उद्देश्य से अपना पासपोर्ट सरेंडर करने का निर्देश दिया गया था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि मामला पासपोर्ट अधिनियम 1967 के अधिनियमित होने के पहले का था।

90. पासपोर्ट अधिनियम लागू होने के बाद, **मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) 1 एस०सी०सी० 248** के मामले में 7-न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय आया। इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विदेश यात्रा करने का अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा है एवं इसे कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा वंचित नहीं किया जा सकता है।

91. इसके बाद **बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ और अन्य (1984) 3 एस०सी०सी० 161** में निर्णय आया। यह एक ऐसा मामला था, जिसमें एक गैर सरकारी संगठन द्वारा न्यायालय को संबोधित एक पत्र, जिसमें अमानवीय परिस्थितियों में पत्थर की खदानों में काम करने वाले व्यक्तियों की दुर्दशा को उजागर किया गया था, जिसे एक जनहित याचिका के रूप में माना गया था। उन श्रमिकों में से कुछ वास्तव में बंधुआ मजदूर थे।इस न्यायालय द्वारा राज्य सरकारों एवं खदानों के पट्टेदारों को नोटिस जारी करने के बाद, रिट याचिका की स्थिरता के बारे में एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी।प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने मोटे तौर पर संकेत दिया कि उन बंधुआ मजदूरों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन कैसे किया गया

एवं उस प्रकृति के मामलों में राज्य एवं न्यायालय के कर्तव्य क्या थे।निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है।

> "9. ... हमें यह सोचना चाहिए था कि यदि कोई नागरिक न्यायालय के समक्ष यह शिकायत करता है कि बड़ी संख्या में किसान या श्रमिक बंधुआ मजदूर हैं या कुछ खदान पट्टेदारों या ठेकेदारों या नियोक्ताओं द्वारा शोषण का शिकार हो रहे हैं या समाज कल्याण कानूनों के लाभों से वंचित किया जा रहा है, तो राज्य सरकार, जो हमारी संवैधानिक योजना के तहत एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था लाने के मिशन के साथ काम करती है, जहां सभी के लिए सामाजिक एवं आर्थिक न्याय होगा एवं सभी के लिए स्थिति एवं अवसर की समानता होगी, न्यायालय द्वारा जांच का स्वागत करेगी, ताकि यदि यह पाया जाए कि वास्तव में बंधुआ मजदूर हैं या यहाँ तक कि यदि श्रमिकों को बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 में परिभाषित शब्द के सख्त अर्थों में बंधुआ नहीं किया जाता है, लेकिन उन्हें जबरन श्रम प्रदान करने के लिए बनाया जाता है या उन्हें पूरी तरह से अभाव एवं अपमान के जीवन के लिए मजबूर किया जाता है, तो ऐसी स्थिति को राज्य सरकार द्वारा ठीक किया जा सकता है। भले ही राज्य सरकार अपनी स्वयं की जांच से संतुष्ट हो कि श्रमिक बंधुआ नहीं हैं एवं जबरन श्रम प्रदान करने के लिए मजबूर नहीं हैं एवं उन्हें प्रदान की गई जीवन की सभी बुनियादी आवश्यकताओं के साथ सभ्य परिस्थितियों में रह रहे हैं एवं काम कर रहे हैं, तो भी राज्य सरकार को किसी

नागरिक द्वारा शिकायत किए जाने पर न्यायालय द्वारा जांच को टालना नहीं चाहिए, बल्कि न्यायालय एवं न्यायालय के माध्यम से देश के लोगों को संतुष्ट करने के लिए उत्सुक होना चाहिए कि वह अपने संवैधानिक दायित्व का निष्पक्ष एवं पर्याप्त रूप से निर्वहन कर रहा है एवं श्रमिकों को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय सुनिश्चित किया जा रहा है।..."

92. इस प्रकार तीन बड़ी सफलताएं हुईं, पहली **खड़क सिंह** में, दूसरी **सतवंत सिंह और मेनका गांधी (सुप्रा)** में और तीसरी **बंधुआ मुक्ति मोर्चा (सुप्रा)** में। पहली सफलता, यह थी कि हालांकि यह एक अल्प मत राय थी कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित होने के लिए शारीरिक संयम एक आवश्यक अनिवार्य शर्त नहीं थी एवं यह कि एक मनोवैज्ञानिक संयम भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित होने के बराबर हो सकता है।दूसरी सफलता **सतवंत सिंह एवं मेनका गांधी** में यह राय थी कि अवागमन एवं विदेश यात्रा करने का अधिकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा है। तीसरी सफलता **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** में यह राय थी कि अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होने पर राज्य का यह दायित्व है कि वह सुधारात्मक उपाय करे।

93. **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य (1996) 1 एस०सी० 742,** इस न्यायालय को एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जहां निजी नागरिकों, अर्थात् अरुणाचल प्रदेश छात्र संघ ने चकमाओं को राज्य से जबरन बाहर निकालने की धमकी दी।राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने स्वयं अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका दायर की।रिट याचिका को स्वीकार करते हुए एवं

निर्देश जारी करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में राज्य की भूमिका का संकेत दियाः

> "20. ... **इस प्रकार राज्य प्रत्येक मनुष्य के जीवन एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए बाध्य है, चाहे वह नागरिक हो या अन्य,** एवं वह ऐसा नहीं कर सकता कि किसी भी निकाय या व्यक्तियों के समूह, जैसे कि एएपीएसयू को चकमा लोगों को राज्य छोड़ने की धमकी देने की अनुमति दें। अन्यथा उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर किया जायेगा। कोई भी राज्य सरकार व्यक्तियों के एक समूह द्वारा व्यक्तियों के दूसरे समूह को दी जाने वाली इस तरह की धमकियों को बर्दाश्त नहीं कर सकती, संकटग्रस्त समूह को इस तरह के हमलों से बचाना उसका कर्तव्य है एवं यदि वह ऐसा करने में विफल रहती है, तो वह अपने संवैधानिक एवं वैधानिक दायित्वों का पालन करने में विफल रहेगी।इस तरह की धमकी देने वालों से कानून के अनुसार निपटा जाएगा।राज्य सरकार को निष्पक्ष रूप से कार्य करना चाहिए एवं स्थानीय राजनीति से बाधित हुए बिना राज्य में रहने वाले चकमाओं के जीवन, स्वास्थ्य एवं कल्याण की रक्षा के लिए अपने कानूनी दायित्वों का पालन करना चाहिए।..."

94. **श्री 'एक्स' बनाम अस्पताल 'जेड' (1998) 8 एस०सी०सी० 296** में, अपीलार्थी एक रोगी के साथ इलाज के लिए अस्पताल गया था एवं शल्य चिकित्सा के उद्देश्य से रक्तदान करने की पेशकश की थी।उन्हें रक्तदान करने की अनुमति देने से पहले, "एक्स" से नमूने लिए गए थे।पता चला कि वह एचआईवी पॉजिटिव था। इस

तथ्य का कि श्री"एक्स" का सकारात्मक परीक्षण आया, अस्पताल द्वारा श्री "एक्स" की मंगेतर को बताया गया।इसलिए, शादी के प्रस्ताव को रद्द कर दिया गया एवं श्री "एक्स" को समुदाय द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया।श्री "एक्स" ने निजता के अधिकार एवं उनके साथ उनके संबंधों में अस्पताल की गोपनीयता के कर्तव्य पर अपना दावा करते हुए अस्पताल पर हर्जाने के लिए मुकदमा दायर किया।हालांकि यह न्यायालय आंशिक रूप से श्री "एक्स" से सहमत था, लेकिन न्यायालय ने पाया कि अस्पताल द्वारा किए गए प्रकटीकरण ने वास्तव में एक महिला की जान बचाई। लेकिन अस्पताल (एक निजी अस्पताल) के संबंध में अनुच्छेद 21 के तहत एक अधिकार पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दियाः-

> **"27. निजता का अधिकार, अनुबंध के अलावा, एक विशेष विशिष्ट संबंध से भी उत्पन्न हो सकता है जो वाणिज्यिक, वैवाहिक या राजनीतिक भी हो सकता है।** जैसा कि पहले ही ऊपर चर्चा की गई है कि डॉक्टर-रोगी संबंध, हालांकि मूल रूप से वाणिज्यिक है, पेशेवर रूप से, विश्वास का विषय है एवं इसलिए, डॉक्टर नैतिक एवं नैतिक रूप से गोपनीयता बनाए रखने के लिए बाध्य हैं।ऐसी स्थिति में, यहां तक कि सच्चे निजी तथ्यों का सार्वजनिक प्रकटीकरण गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन के बराबर हो सकता है जो कभी-कभी एक व्यक्ति के "अकेले रहने के अधिकार" और दूसरे व्यक्ति के सूचित होने के अधिकार के टकराव का कारण बन सकता है।

28. यहाँ तक कि सच्चे निजी तथ्यों का खुलासा करने से भी व्यक्ति की शांति भंग होने की प्रवृत्ति होती है।यह उसके भीतर कई जटिलताएँ पैदा कर सकता है एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण भी बन सकता है। हो सकता है, इसके बाद, जीवन में उथल-पुथल मच जाए। इन संभावनाओं के बावजूद, एवं जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पहले ही ऊपर उल्लिखित अपने विभिन्न निर्णयों में कहा गया है, निजता का अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा परिकल्पित जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य घटक है। हालाँकि, यह अधिकार निरपेक्ष नहीं है एवं अपराध अव्यवस्था की रोकथाम या स्वास्थ्य या नैतिकता की सुरक्षा या दूसरों के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए कानूनी रूप से प्रतिबंधित हो सकता है।"

95. **पं० परमानंद कटारा (सुप्रा)** में एक मानवाधिकार कार्यकर्ता ने अनुच्छेद 32 के तहत यह रिट याचिका दायर की, जिसमें भारत संघ को यह निर्देशित देने की मांग की गई कि अस्पताल में इलाज के लिए लाए गए प्रत्येक घायत व्यक्ति को जीवन बचाने के लिए तुरंत चिकित्सा सहायता दी जानी चाहिए और उसके बाद प्रक्रियात्मक आपराधिक कानून को काम करने दिया जाना चाहिए। उक्त रिट याचिका का आधार एक स्कूटर चालक के बारे में एक रिपोर्ट थी जो एक सड़क यातायात दुर्घटना में घायल हो गया था, जिसे पास के अस्पताल द्वारा इस आधार पर वापस कर दिया गया था कि वे चिकित्सा-कानूनी मामलों को संभालने के लिए अधिकृत नहीं थे।इससे पहले कि पीड़ित को 20 किलोमीटर दूर स्थित एक अधिकृत अस्पताल ले जाया जाता, उसकी मृत्यु हो

गई, जिस कारण रिट याचिका दायर की गयी। निर्देश जारी करते समय, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 8 में न्यायालय के सकारात्मक कर्तव्य के बारे में निम्नलिखित राय व्यक्त कीः-

> **"8. संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन को बचाने के राज्य के दायित्व को निर्धारित करता है-** इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में बताए गए प्रावधान ने उस स्थिति पर धीरे-धीरे बढ़ते जोर के साथ दोहराया है। इसलिए, राज्य के इस दायित्व को पूरा करने के लिए तैनात सरकारी अस्पताल में एक डॉक्टर का कर्तव्य है कि वह जीवन को बचाने के लिए चिकित्सा सहायता प्रदान करे। **प्रत्येक डॉक्टर चाहे वह सरकारी अस्पताल में हो या अन्यथा उसका पेशेवर दायित्व है कि वह अपनी सेवाओं को उचित समय पर उचित विशेषज्ञता से जीवन की रक्षा के लिए सेवाएं दें।** चिकित्सा पेशे के सदस्यों पर लगाए गए सर्वोच्च दायित्व के निर्वहन से बचने/देरी करने के लिए कोई भी कानून या राज्य की कार्रवाई हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।**दायित्वपूर्ण निरपेक्ष एवं सर्वोपरि है, प्रक्रिया के कानून, चाहे वे क़ानूनों में हों या अन्यथा, जो इस दायित्व के निर्वहन में हस्तक्षेप करते हैं, बनाए नहीं रखे जा सकते हैं एवं इसलिए उन्हें छोड़ दिया जाना चाहिए।..."**

पं० परमानंद कटारा मामले में यह स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन को संरक्षित करने में मदद करने का दायित्व राज्य का है। परमानंद कटारा।जीवन पर जो लागू होता है वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर

भी समान रूप से लागू होता है।ऐसा इसलिए है क्योंकि जीवन के अधिकार के साथ-साथ स्वतंत्रता दोनों से जुड़े मामले हो सकते हैं।

96. उदाहरण के लिए, **सुचिता श्रीवास्तव और अन्य बनाम चंडीगढ़ प्रशासन (2009) 9 एस०सी०सी० 1,** इस न्यायालय के पास मानसिक रूप से विकलांग महिला के प्रजनन अधिकारों पर विचार करने का अवसर था। इस अधिकार को अनुच्छेद 21 के तहत जीवन एवं स्वतंत्रता के अधिकार के हिस्से के रूप में पढ़ा गया था। **देविका विश्वास बनाम भारत संघ (2016) 10 एस०सी०सी० 726,** में इस न्यायालय ने राज्य सरकारों के तत्वावधान में या तो शिविरों में या मान्यता प्राप्त केंद्रों में नसबंदी प्रक्रियाओं के संचालन एवं प्रबंधन की पूरी श्रृंखला से संबंधित कुछ मुद्दों पर विचार किया एवं कहा कि किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं प्रजनन अधिकारों का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार का हिस्सा है।ऐसा करते समय, इस न्यायालय ने **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** के निर्णय को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया, जिसमें यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य के दायित्व को रेखांकित किया गया था कि समाज के कमजोर वर्गों के मौलिक अधिकारों का शोषण न हो।

97. भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम, 1885 की धारा 5 (2) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए टेलीफोन की **टैपिंग पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी. यू. सी. एल.) बनाम भारत संघ (1997) 1 एस०सी०सी० 301,** में चुनौती का विषय बन गया। इस न्यायालय ने माना कि टेलीफोन पर बातचीत एक व्यक्ति के निजी जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है एवं टेलीफोन की टैपिंग अनुच्छेद 21 का उल्लंघन

करेगी। कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार को छोड़कर तकनीकी जासूसी को न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। यह एक ऐसे समय में था जब मोबाइल फोन आम बात नहीं बन गया था एवं राज्य के एकाधिकार को अभी तक निजी खिलाड़ियों जैसे मध्यस्थों/सेवा प्रदाताओं द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया गया था।आज, निजता के अधिकार का उल्लंघन ज्यादातर निजी खिलाड़ियों द्वारा किया जाता है एवं यदि गैर-राज्य तंत्रों के खिलाफ मौलिक अधिकारों को लागू नहीं किया जा सकता है, तो यह अधिकार बेकार जाएगा।

98. **जिला पंजीयक एवं कलेक्टर, हैदराबाद एवं अन्य बनाम केनरा बैंक एवं अन्य (2005) 1 एस०सी०सी० 496,** में चुनौती दी गई थी, कि आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 में संशोधन किया गया, जो एक सार्वजनिक अधिकारी को किसी भी परिसर में रखे गए रजिस्टरों, पुस्तकों, कागजातों एवं दस्तावेजों का निरीक्षण करने का अधिकार देता है, जिसमें एक निजी स्थान भी शामिल है जहां ऐसे रजिस्टर, किताबें आदि रखे जाते हैं। आर. राजगोपाल एवं मेनका गांधी के मामले में दिए गए निर्णय से संकेत लेते हुए, इस न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 55 एवं 56 में निम्नलिखित मत दियाः-

> "55. आन्ध्र प्रदेश संशोधन कलेक्टर द्वारा उन दस्तावेजों तक पहुंच के साथ निरीक्षण करने की अनुमति देता है जो हैं- निजी अभिरक्षा में अर्थात सार्वजनिक अधिकारी के अलावा अन्य अभिरक्षा में है। यह स्पष्ट है कि यह प्रावधान उस व्यक्ति के घर पर आक्रमण करने का अधिकार देता है जिसके

कब्जे में धारा73 में बताए गए विभिन्न तथ्यों से संबंधित या उन तक ले जाने वाले दस्तावेज मौजूद हैं एवं धारा 73 संभावित या उचित कारण या उचित आधार या सामग्री के रूप में किसी भी सुरक्षा उपायों के बिना है, जो घर एवं व्यक्ति दोनों की निजता के अधिकार का उल्लंघन करता है। हम पहले ही आर. राजगोपाल मामले [(1994) 6 एस. सी. सी. 632] का उल्लेख कर चुके हैं, जिसमें विद्वान न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का अर्थ भी कानून में अस्थिर अतिक्रमणों से मुक्त जीवन है, एवं ऐसा अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 से आता है।

56. मेनका गांधी बनाम भारत संघ ((1978) 1 एस. सी. सी. 248) में सात-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय, में पी. एन. भगवती, जे. (उस समय उनके स्वामी के रूप में) ने अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" की अभिव्यक्ति व्यापक है एवं इसमें विभिन्न प्रकार के अधिकार शामिल हैं जो मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का गठन करते हैं एवं उनमें से कुछ को विशिष्ट मौलिक अधिकारों के दर्जा तक दिया गया है एवं अनुच्छेद 19 (जोर दिया गया) के तहत अतिरिक्त संरक्षण दिया गया है। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने वाले किसी भी कानून को तीन परीक्षणों को पूरा करना होगाः (i) इसे एक प्रक्रिया निर्धारित करनी होगी, (ii) प्रक्रिया को अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त एक या अधिक मौलिक अधिकारों के परीक्षण का सामना करना होगा, जो किसी दी गई स्थिति में लागू हो सकता है; एवं

(iii) इसे अनुच्छेद 14 के संदर्भ में परीक्षण के लिए भी उत्तरदायी होना चाहिए। जैसा कि अनुच्छेद 14 द्वारा प्रस्तावित परीक्षण अनुच्छेद 21 में भी व्याप्त है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं निजता के अधिकार में हस्तक्षेप को अधिकृत करने वाला कानून एवं प्रक्रिया भी सही एवं न्यायपूर्ण एवं निष्पक्ष होनी चाहिए एवं मनमाना, काल्पनिक या दमनकारी नहीं होनी चाहिए। यदि निर्धारित प्रक्रिया अनुच्छेद 14 की आवश्यकता को पूरा नहीं करती है तो यह अनुच्छेद 21 के अर्थ के भीतर कोई प्रक्रिया नहीं होगी।"

99. **भारतीय महिला द्वारा कहा गया है कि ग्राम न्यायालय के आदेश पर सामूहिक बलात्कार किया गया, जो दिनांक 23-1-2014 के बिजनेस एवं फाइनेंशियल न्यूज में प्रकाशित हुआ था। (2014) 4 एस०सी०सी० 786** यह न्यायालय एक महिला के सामूहिक बलात्कार से संबंधित एक स्वतः संज्ञान रिट याचिका पर विचार कर रहा था, जो एक अलग समुदाय के पुरुष के साथ संबंध रखने के लिए सजा के रूप में एक सामुदायिक पंचायत के आदेश के तहत की गई थी। जो पहले के दो फैसलों पर ध्यान देने के बाद, एक **लता सिंह बनाम यू. पी. राज्य (2006) 5 एस०सी०सी० 475** में जो अंतरजातीय, अंतर धार्मिक विवाह में शामिल युवाओं की ऑनर किलिंग से संबंधित है एवं दूसरा **अरुमुगम सरवाई बनाम तमिलनाडु राज्य (2011) 6 एस०सी०सी० 405** में, जो खाप पंचायतों से संबंधित था, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 16 में इस प्रकार राय दीः-

"16. अंततः, इस न्यायालय द्वारा जिस प्रश्न पर विचार एवं मूल्यांकन किया जाना चाहिए, वह यह है कि क्या राज्य पुलिस तंत्र संभवतः उक्त घटना को रोक सकता था।जवाब निश्चित रूप से **"हाँ" है। राज्य अपने नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए कर्तव्यबद्ध है एवं संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अंतर्निहित पहलू विवाह में पसंद की स्वतंत्रता होगी।** इस तरह के अपराध राज्य की अक्षमता या अपने नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने में असमर्थता के परिणामस्वरूप होते हैं।" वास्तव में, इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में कहा कि मुआवजे के भुगतान पर राज्य का दायित्व समाप्त नहीं होता है एवं ऐसी प्रकृति के पीड़ितों का पुनर्वास आवश्यक है।

100. शक्ति वाहिनी बनाम भारत संघ और अन्य (2018) 7 एस०सी०सी० 192, में राज्य सरकारों एवं केंद्र सरकार को सम्मान अपराधों से निपटने के लिए निवारक उपाय करने एवं एक राष्ट्रीय/राज्य कार्य योजना प्रस्तुत करने का निर्देश देने की मांग करने वाली एक रिट याचिका पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने राज्य सरकारों को दंडात्मक एवं उपचारात्मक दोनों तरह के उपाय करने का निर्देश देते हुए कई निर्देश जारी किए, इस आधार पर कि व्यक्तियों के जीवन एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए राज्य का सकारात्मक दायित्व है। पैराग्राफ 49 में इस न्यायालय ने कहा, "हम ऐसा सोचने के लिए तैयार हैं, क्योंकि यह राज्य का दायित्व है कि वह ऐसा वातावरण बनाए जहाँ नागरिकअपने मौलिक अधिकारों का लाभ उठाने की स्थिति

में हों। **एस० रंगराजन (सुप्रा)** में पिछले निर्णय को उद्धुत करने के बाद, जो एक सिनेमेटोग्राफ फिल्म के संबंध में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के उल्लंघन से उत्पन्न हुआ था, इस न्यायालय ने **शक्ति वाहिनी (सुप्रा)** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया-

> "49. ...**हम इस बात से पूरी तरह अवगत हैं कि उपरोक्त अनुच्छेद में एक अलग मौलिक अधिकार के संबंध में कहा गया है, लेकिन जब व्यक्तियों का जीवन एवं स्वतंत्रता शामिल होती है तो उक्त सिद्धांत अधिक कड़ाई से लागू होता है। हम ऐसा राज्यों को नागरिकों के मौलिक अधिकारों को बनाए रखने के लिए उनके संवैधानिक दायित्वों की याद दिलाते हुए ऐसा कहते हैं कि वे किसी भी शत्रुतापूर्ण समूह को उन मौलिक अधिकारों में किसी भी प्रकार की खाई बनाने की अनुमति ने दें।"**

101. अंत में, निजता के अधिकार पर विचार करते हुए, **न्यायमूर्ति के. एस. पुट्टास्वामी के मामले में, इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि, "यह एक ऐसा अधिकार है जो राज्य एवं गैर-राज्य दोनों प्रकार से तंत्रों के हस्तक्षेप से आंतरिक क्षेत्र की रक्षा करता है।**

102. इस अध्याय को समाप्त करने से पहले, हमें यह इंगित करना होगा कि कुछ शिक्षाविदों को लगता है कि न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त सभी अधिकारों के लिए राज्य द्वारा उल्लंघन के लिए समान स्तर का औचित्य समस्याग्रस्त हो जाता है (अनुप सरेन्द्रनाथ ने द आक्सफोर्ड हैण्डबुक ऑफ द इंडियन कान्सिट्यूशन (साउथ एशिया संस्करण) 2016 में अपने लेख "जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता") एवं अधिकारों के

पदानुक्रम के विचार, जैसा कि दास, जे. द्वारा **ए. के. गोपालन** में व्यक्त किया गया है, की जांच करनी चाहिए। वास्तव में, **जे. रोहिंटन नरीमन ने मोहम्मद आरिफ (सुप्रा)** में इस विचार को व्यक्त किया था, जहां सवाल यह था कि क्या सुप्रीम कोर्ट में समीक्षा के लिए याचिका पर कम से कम मृत्युदंड के मामलों में खुली अदालत में सुनवार्इ की जानी चाहिए। विद्वान न्यायाधीश ने कहाः

> **"36. यदि एक पिरामिडनुमा संरचना की कल्पना की जाए, जिसके शीर्ष पर जीवन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता (एवं नए सिद्धांत के तहत इसमें शामिल सभी अधिकार) एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नीचे अन्य मौलिक अधिकार हैं, तो यह स्पष्ट है कि यह निर्णय केवल मौत की सजा के मामलों पर लागू होगा।** अधिकतर मामलों में, न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर, द्वारा बताए गए कारक विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय के अति व्यस्त कार्यसूची एवं यह तथ्य कि एक आपराधिक अपील के गुणदोष के आधार पर फैसले से पहले एक पूर्ण मौखिक सुनवाई हुई है, संतुलन को दूसरी तरफ झुका सकते हैं।"
>
> इसलिए अनुच्छेद 19 आैर 14 के तहत गारंटीकृत अन्य सभी अधिकारों के अलावा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के महत्व पर शायद ही अधिक जोर दिया जाए।

103. **इसलिए, प्रश्न संख्या 3 का हमारा उत्तर यह होगा कि जब भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए खतरा उत्पन्न हो यहां तक कि गैर राज्य तंत्र के माध्यम से भी तब**

भी राज्य का कर्तव्य है कि वह अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करे ।

<u>प्रश्न संख्या 4</u>

104. हमें संदर्भित प्रश्न संख्या 4 यह हैः "क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया कोई बयान, जो राज्य के किसी भी मामले से संबंधित हो या राज्य की सुरक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?"

105. उपरोक्त प्रश्न एक मंत्री की भूमिका एवं जिम्मेदारी एवं उसके द्वारा दिए गए किसी भी बयान के प्रति सरकार के प्रत्यावर्ती दायित्व/जिम्मेदारी के इर्द-गिर्द घूमता है।उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें अपनी संवैधानिक योजना के तहत एक मंत्री की भूमिका को समझने की आवश्यकता हो सकती है।

106. "संघ" से संबंधित मामलों का प्रावधान करने वाले संविधान के भाग 5 में क्रमशः पाँच अध्याय हैं, जो (i) कार्यपालिका; (ii) संसद; (iii) राष्ट्रपति की विधायी शक्तियाँ; (iv) केंद्रीय न्यायपालिका; एवं (v) भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक से संबंधित हैं। "राज्यों" से संबंधित संविधान के भाग VI में क्रमशः छह अध्याय हैं, जो (i) परिभाषाओं वाले सामान्य प्रावधान; (ii) कार्यपालिका; (iii) राज्य विधानमंडल; (iv) राज्यपाल की विधायी शक्ति; (v) राज्यों में उच्च न्यायालय; एवं (vi) अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित हैं।

107. जबकि अनुच्छेद 74 एवं 75 में (i) 'राष्ट्रपति की सहायता एवं सलाह के लिए मंत्रिपरिषद'; एवं (ii) 'मंत्रियों के संबंध में अन्य प्रावधान', जहां तक केंद्र का संबंध है, अनुच्छेद 163 एवं 164 में (i) 'राज्यपाल की सहायता एवं सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद'; एवं (ii) 'मंत्रियों के संबंध में अन्य प्रावधान', जहां तक राज्यों का संबंध है, का प्रावधान है।इसी तरह, अनुच्छेद 77 में भारत सरकार के कार्य संचालन का प्रावधान है एवं अनुच्छेद 166 में राज्य सरकार के कार्य संचालन का प्रावधान है। प्रधान मंत्री के कर्तव्यों के बारे में अनुच्छेद 78 में बताया गया है एवं मुख्यमंत्रियों के कर्तव्यों के बारे में अनुच्छेद 167 में बताया गया है।

108. अनुच्छेद 75 (3) में कहा गया है कि **"मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी।"** इसी तरह, अनुच्छेद 164(2) राज्य "मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से राज्य की विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगी"।

109. आम तौर पर, भारत सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाईयां अनुच्छेद 77 (1) के तहत राष्ट्रपति के नाम पर की जाएगी। तथापि, भारत सरकार के कार्य के अधिक सुविधाजनक संचालन के लिए, राष्ट्रपति नियम बनाएंगे। इन नियमों में मंत्रियों के बीच कार्य के आवंटन का भी प्रावधान होगा। यह अनुच्छेद 77 (3) के तहत है। इसी तरह के प्रावधान अनुच्छेद 166 के उप-अनुच्छेद (1) एवं (3) में पाए जाते हैं।

110. प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्रियों को क्रमशः अनुच्छेद 78 और 167 के अंतर्गत विशेष कर्तव्य सौंपे गए हैं।

111. अनुच्छेद 166(3) की योजना पर विचार करते हुए , इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **ए. संजीवी नायडू बनाम मद्रास राज्य (1970) 1 एस सी सी 443** मामले में बताया कि हमारे संविधान के अंतर्गत राज्यपाल अनिवार्य रूप से एक संवैधानिक प्रमुख है और राज्य का प्रशासन मंत्रिपरिषद द्वारा चलाया जाता है। चूंकि मंत्रिपरिषद के लिए सरकार के समक्ष आने वाले प्रत्येक मामले से निपटना असंभव है, इसलिए राज्यपाल को अनुच्छेद 166(3) के अंतर्गत राज्य सरकार के कामकाज के अधिक सुविधाजनक संचालन और सरकार के कामकाज को उसके मंत्रियों के बीच आवंटित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार है। *उक्त निर्णय के पैराग्राफ 10 में , संविधान पीठ ने सामूहिक उत्तरदायित्व के बारे में नहीं बल्कि "संयुक्त उत्तरदायित्व" के बारे में बात की।* पैराग्राफ 10 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"10. मंत्रिमंडल किसी भी मंत्रालय में की गई हर कार्यवाही के लिए विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है। यही संयुक्त *उत्तरदायित्व* का सार है। इसका मतलब यह नहीं है कि हर निर्णय मंत्रिमंडल द्वारा लिया जाना चाहिए। मंत्रिपरिषद की राजनीतिक जिम्मेदारी मंत्रिपरिषद की सभी या किसी भी सरकारी कार्य को पूरा करने की व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं है और न ही हो सकती है। इसी तरह एक व्यक्तिगत मंत्री अपने मंत्रालय में की गई या नहीं की गई हर कार्यवाही के लिए विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है। यह फिर से एक राजनीतिक जिम्मेदारी है न कि व्यक्तिगत जिम्मेदारी। ..."

112. "*सामूहिक उत्तरदायित्व*" शब्द का कुछ हद तक संघ के संबंध में अनुच्छेद 75(3) और राज्यों के संबंध में अनुच्छेद 164(2) में उल्लेख किया जा सकता है। लेकिन दोनों

अनुच्छेदों में मंत्रिपरिषद को लोक सभा/राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी बताया गया है। ***आम तौर पर मंत्रिपरिषद की लोक सभा या विधानसभा के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी को मंत्रिपरिषद के निर्णयों और कार्यों से संबंधित समझा जाना चाहिए, न कि प्रत्येक मंत्री द्वारा दिए गए प्रत्येक वक्तव्य से।***

113. कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ (1970) 1 एससीसी 443 में , इस न्यायालय की एक सात सदस्य वाली संविधान पीठ, एक चुनौती पर विचार करते हुए कर्नाटक राज्य द्वारा अनुच्छेद 131 के तहत एक दीवानी मुकदमे के रूप में, केंद्र सरकार द्वारा कर्नाटक के मुख्यमंत्री के खिलाफ एक जांच आयोग की नियुक्ति के लिए, अनुच्छेद 164 (2) में दिखाई देने वाले " सामूहिक उत्तरदायित्व" शब्दों के स्पष्टीकरण पर विचार करने का अवसर था।यह संकेत देने के बाद कि सामूहिक जिम्मेदारी है मूल रूप से उत्पत्ति एवं संचालन के तरीके में राजनीतिक, बेग, सी. जे. की राय उक्त मामले में इस प्रकार हैः

"46. सामूहिक उत्तरदायित्व का उद्देश्य सामूहिक रूप से मंत्री पद धारण करने वाले व्यक्तियों के पूरे निकाय को बनाना है, या, यदि कोई इसे ऐसा कहे, तो दूसरों के ऐसे कार्यों के लिए "परोक्ष रूप से" जिम्मेदार है जो उनकी सामूहिक इच्छा के लिए संदर्भित हैं ताकि, भले ही कोई व्यक्ति इसके लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार न हो, फिर भी, उसे उन लोगों के साथ जिम्मेदारी साझा करने वाला माना जाएगा जिन्होंने वास्तव में कुछ गलत किया हो।...

47. प्रत्येक मंत्री अपने स्वयं के निर्णयों एवं कार्यों एवं चूक के लिए भी अलग से जिम्मेदार हो सकता है एवं हो सकता है।लेकिन, चूंकि मंत्रिपरिषद तभी तक पद पर रह

सकती है जब तक उसे राज्य के विधानमंडल के अधिकांश सदस्यों का समर्थन एवं विश्वास प्राप्त हो, इसलिए पूरी मंत्रिपरिषद को प्रत्येक मंत्री एवं उसके विभाग के निर्णयों एवं नीतियों के लिए राजनीतिक रूप से जिम्मेदार माना जाना चाहिए, जिसे पूरे मंत्रालय का समर्थन माना जा सकता है।इसलिए, कम से कम नीतिगत मामलों से जुड़े मुद्दों पर, पूरे मंत्रालय को एक इकाई के रूप में माना जाना चाहिए, जहां तक मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करने वाली विधानसभा के प्रति इसकी जवाबदेही का संबंध है।संविधान के अनुच्छेद 164 (2) में अंतर्निहित सिद्धांत का यही अर्थ है।इस प्रावधान का उद्देश्य तथ्यों का पता लगाना या किसी विशेष निर्णय या सरकारी कार्यों के लिए मुख्यमंत्री या किसी अन्य मंत्री या मंत्री की वास्तविक जिम्मेदारी स्थापित करना नहीं है।यह अधिक उपयुक्त रूप से किया जा सकता है, जब अधिनियम के तहत पूछताछ के माध्यम से गलत कार्यों या निर्णयों की शिकायत की जाती है। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया गया है, हर कानूनी या नैतिक रूप से गलत कार्य की जांच करने के लिए संसदीय समितियों की प्रक्रिया असंतोषजनक एवं अनुचित पाई गई।व्यक्तिगत एवं साथ ही सामूहिक मंत्रिस्तरीय जिम्मेदारी का सिद्धांत केवल तभी सबसे कुशलता से काम कर सकता है जब अधिनियम की धारा 3 के तहत नियुक्त आयोग के समक्ष कार्यवाही में उचित जांच एवं साक्ष्य के मूल्यांकन एवं शामिल प्रश्नों की चर्चा की आवश्यकता होती है, जहां इसकी आवश्यकता होती है।

48. संवैधानिक कानून पर पाठ्यपुस्तक लेखकों ने संकेत दिया है कि संसद के प्रति सामूहिक मंत्री जिम्मेदारी, जिसका अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक उद्देश्य एवं प्रभाव

है, संसद के प्रति मंत्रियों की व्यक्तिगत जिम्मेदारी से बाद में कैसे विकसित हुई, जो मूल एवं संचालन में भी राजनीतिक थी।यह सच है कि एक व्यक्तिगत मंत्री, इंग्लैंड में, जहां मंत्रियों की व्यक्तिगत एवं सामूहिक जिम्मेदारी का सिद्धांत विकसित किया गया था, या तो पूरे मंत्रिमंडल या सम्राट के अधिकार के बिना उनके द्वारा किए गए गलत कार्यों के लिए जिम्मेदार हो सकता है, या राजा के आदेश के तहत जो कानून की नजर में कोई गलत नहीं कर सकता था।लेकिन, एक महाभियोग के अलावा, जो अप्रचलित हो गया है, या एक सदन की अवमानना के लिए सजा, जो केवल एक सीमित प्रकार के अपराधों का गठन करती है, संसद अपराधी को दंडित नहीं करती है। उसके कानूनी दायित्व को स्थापित करने के लिए कानून की सामान्य अदालतों का सहारा लेना अनिवार्य है।"

114 . संवैधानिक कानून प र वेड एवं फिलिप्स का हवाला देते हुए , इस न्यायालय ने कर्नाटक राज्य (पूर्वोक्त) में बताया कि " उत्तरदायित्व " **संसद के आने का मतलब केवल यह है कि मंत्री को परंपरा द्वारा इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया जा सकता है।"**

115. उपरोक्त निर्णय में इस बात का भी संकेत दिया गया है कि सामूहिक जिम्मेदारी को किस हद तक लागू किया जा सकता हैः

"50. जिम्मेदारी का पूरा सवाल मंत्री या सरकार के पद पर बने रहने से संबंधित है। एक मंत्री के अपने कार्य या चूक या उसके प्रभारी विभाग में अन्य लोगों के कार्य, जिनके लिए वह नैतिक रूप से जिम्मेदार महसूस कर सकता है, या जिसके लिए

अन्य लोग उसे नैतिक रूप से जिम्मेदार ठहरा सकते हैं, उसे इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर सकते हैं। इसके विस्तार से पहले तो अलग-अलग मंत्रियों पर लागू तर्क "सामूहिक जिम्मेदारी" के सिद्धांत के रूप में उभरा, जिसे हम अपने संविधान के अनुच्छेद 75 (2) एवं 164 (2) में अधिनियमित पाते हैं।इसके प्रवर्तन के लिए एकमात्र मंजूरी जनमत का दबाव है जो विशेष रूप से संसद या राज्य विधानमंडल के सदस्यों द्वारा राजनीतिक समर्थन वापस लेने के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है।"

116. दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय ने संकेत दिया कि जबकि एक मंत्री को अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया जा सकता है या आयोग, सामूहिक जिम्मेदारी के प्रवर्तन के लिए एकमात्र मंजूरी "जनमत का दबाव" है।

117. **आर. के. जैन बनाम भारत संघ (1993) 4 एससीसी 119** में, यह न्यायालय सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क एवं स्वर्ण नियंत्रण अपीलीय न्यायाधिकरण के कामकाज से संबंधित एक जनहित याचिका से संबंधित था।उस समय न्यायाधिकरण के अध्यक्ष का पद छह महीने से अधिक समय से खाली था।लेकिन पहली रिट याचिका में नियम निसी जारी होने के बाद, सरकार ने किसी को न्यायाधिकरण का अध्यक्ष नियुक्त किया।तुरंत, नियुक्ति एवं नियुक्ति से संबंधित कुछ भर्ती नियमों को चुनौती देते हुए एक दूसरी रिट याचिका दायर की गई।नियुक्ति से संबंधित फाइल को एक सीलबंद लिफाफे में पेश किया गया था एवं सरकार ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 123 एवं संविधान के अनुच्छेद 74 (2) के संदर्भ में विशेषाधिकार का दावा किया था।राष्ट्रपति की कार्यकारी शक्ति एवं मंत्रिपरिषद की भूमिका से निपटने के

दौरान, K.Ramasamy, जे. ने कहा, "मंत्री जिम्मेदारी के सिद्धांत के विभिन्न अर्थ हैं जो सटीक एवं अस्पष्ट, प्रामाणिक एवं अस्पष्ट हैं।"

आर.के. जैन (पूर्वोक्त) में रिपोर्ट के पैरा 29 एवं 30 को उपयोगी रूप से निम्नानुसार सार हैः

"29. इस प्रकार यह माना जाएगा कि अनुच्छेद 75 (3) के तहत प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मंत्रिपरिषद के रूप में जाना जाने वाला मंत्रिमंडल देश के शासन के लिए जिम्मेदार संचालन एवं संचालन निकाय है।वे संसद के विश्वास का आनंद लेते हैं एवं तब तक पद पर बने रहते हैं जब तक कि वे बहुमत का विश्वास बनाए रखते हैं।वे संसद के प्रति जवाबदेह हैं एवं लोगों के प्रति जवाबदेह हैं।वे सामूहिक जिम्मेदारी निभाते हैं एवं गोपनीयता बनाए रखने के लिए बाध्य होंगे।उनके कार्यकारी कार्य में नीति के निर्धारण के साथ-साथ इसे निष्पादन में लाना, कानून की शुरुआत, व्यवस्था बनाए रखना, सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देना, विदेश नीति की दिशा दोनों शामिल हैं।संक्षेप में भारत संघ के मामलों के सामान्य प्रशासन का संचालन या पर्यवेक्षण जिसमें राजनीतिक गतिविधि एवं सभी व्यापारिक गतिविधियों को चलाना, संपत्ति का अधिग्रहण, धारण एवं निपटान एवं किसी भी उद्देश्य के लिए अनुबंध करना शामिल है।संक्षेप में, मंत्रिमंडल का प्राथमिक कार्य राष्ट्र के शासन के लिए संविधान के निर्देशक सिद्धांतों के अनुरूप सरकार की नीतियों को तैयार करना है; इसे स्वीकृति के लिए संसद के समक्ष रखना एवं संविधान एवं कानूनों के प्रावधानों के अनुसार राज्य के कार्यकारी कार्य को जारी रखना है।

30. संविधान के अनुच्छेद 75 (3) के तहत सामूहिक उत्तरदायित्व गोपनीयता बनाए रखने की है जैसा कि संविधान की अनुसूची III में निर्धारित पद एवं गोपनीयता की शपथ में कहा गया है कि मंत्री प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी व्यक्ति या व्यक्ति को किसी भी मामले को संप्रेषित या प्रकट करें जिसे उसके विचार के तहत लाया जाएगा या उसे मंत्री के रूप में जाना जाएगा, सिवाय इसके कि "मंत्री के रूप में उसके कर्तव्य के उचित निर्वहन" के लिए आवश्यक हो।इसके महत्व का आधार एवं मूल अभिधारणा असाधारण है।लेकिन गोपनीयता की आवश्यकता एवं प्रभाव को न केवल अनुच्छेद 75 (3) द्वारा परिकल्पित सामूहिक जिम्मेदारी की राजनीतिक अनिवार्यताओं से बल्कि इसकी व्यावहारिकता से भी पोषित किया जाना चाहिए।"

118. **आर. के. जैन** की रिपोर्ट के पैराग्राफ 33 में, इस न्यायालय ने संकेत दिया कि राष्ट्रपति को दी गई सलाह एवं उनके प्रत्येक विभाग के कामकाज के संचालन के लिए समग्र रूप से मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से जिम्मेदार है।यह सवाल कि क्या होता है जब एक व्यक्तिगत मंत्री मंत्रिमंडल के सामूहिक निर्णय से पूरी तरह असहमत होता है, **आर. के. जैन** में भी निम्नलिखित शब्दों में लिखा गया थाः

"33. .....मंत्रिमंडल के प्रत्येक सदस्य की अपनी अंतरात्मा के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी है एवं सरकार के प्रति भी जिम्मेदारी है।

चर्चा एवं अनुनय असहमति को कम कर सकते हैं, सर्वसम्मति तक पहुँच सकते हैं, या इसे अपरिवर्तित छोड़ सकते हैं।असहमति की दृढ़ता के बावजूद, यह एक निर्णय है, हालांकि कुछ सदस्य इसे दूसरों की तुलना में कम पसंद करते हैं।व्यावहारिक राजनीति एवं अच्छी सरकार दोनों के लिए आवश्यक है कि जो लोग इसे कम पसंद करते हैं, उन्हें अभी भी सार्वजनिक रूप से इसका समर्थन करना चाहिए।यदि इस तरह का समर्थन किसी मंत्री की अंतरात्मा पर बहुत अधिक दबाव डालता है या प्रतिबद्धता की उसकी धारणाओं के अनुरूप नहीं है एवं उसे निर्णय का समर्थन करना मुश्किल लगता है, तो उसके लिए इस्तीफा दे सकता है। इसलिए मंत्रिमंडल कार्यालय की स्वीकृति की कीमत मंत्रिमंडल के निर्णयों का समर्थन करने की जिम्मेदारी की धारणा है।उस जिम्मेदारी का भार सभी पर है।"

119. सचिव, जयपुर विकास प्राधिकरण, जयपुर (पूर्वोक्त), भूखंडो के आवंटन के मामले में शहरी विकास एवं आवास विभाग के मंत्री एवं जयपुर विकास प्राधिकरण में काम करने वाले अधिकारियों द्वारा आधिकारिक पद का दुरुपयोग विषय बन गया । मंत्रियों की व्यक्तिगत एवं सामूहिक जवाबदेही एवं उत्तरदायित्व के संबंध में इस न्यायालय ने पैराग्राफ 10 में कहा है किइस प्रकार हैः

"**10.** .....राज्यपाल मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद की सहायता एवं सलाह से राज्य की कार्यकारी सरकार चलाता है जो विभिन्न विभागों एवं निगमित क्षेत्रों आदि में काम

करने वाली नौकरशाही की सहायता से सार्वजनिक अधिकारियों के रूप में व्यक्तिगत मंत्रियों द्वारा शक्तियों का प्रयोग करता है एवं अपने कर्तव्यों का पालन करता है। यद्यपि वे राज्यपाल के नाम से व्यक्त किए जाते हैं, प्रत्येक मंत्री व्यक्तिगत रूप से एवं सामूहिक रूप से कार्यों, कृत्यों एवं नीतियों के लिए जिम्मेदार होता है।वे लोगों के प्रति जवाबदेह एवं जवाबदेह हैं।उनकी शक्तियाँ एवं कर्तव्य कानून एवं नियमों द्वारा विनियमित होते हैं।किए गए कार्यों या चूक, किए गए कर्तव्यों एवं नीति के लिए कानूनी एवं नैतिक जिम्मेदारी या दायित्व पूरी तरह से विभाग के मंत्री पर निर्भर करता है। **इसलिए, वे अपने आचरण या चूक, या दुराचार के लिए दोषी हैं या दुरुपयोग। मंत्रीपरिषद संयुक्त रूप से एवं अलग-अलग रूप से विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होती है। वह कर्तव्यों के निष्पादन में कृत्यों या आचरण के लिए सार्वजनिक रूप से भी जवाबदेह है।"**

120. फिर से, पैराग्राफ 11 में, इस न्यायालय ने मंत्रियों का उत्तरदायित्व को इस प्रकार रेखांकित कियाः

"11. मंत्री सार्वजनिक पद धारण करता है, हालांकि उसे संवैधानिक दर्जा मिलता है एवं वह संविधान, कानून या कार्यकारी नीति के तहत कार्य करता है।किए गए कार्य एवं किए गए कर्तव्य सार्वजनिक पद के धारक के रूप में सार्वजनिक कार्य या कर्तव्य हैं। इसलिए, किए गए कार्यों या किए गए कर्तव्यों के लिए उसकी कुछ जवाबदेही होती है। कानून के शासन द्वारा शासित एक लोकतांत्रिक समाज में, नियुक्ति के आधार पर सार्वजनिक पद के धारक या संविधान द्वारा संबंधित प्राधिकारी को शक्ति प्रदान की

जाती है।इसलिए पद धारक को पद का दुरुपयोग करने का अवसर मिलता है। सार्वजनिक पद धारण करने वाले राजनेता को नियमों या प्राथमिकताओं की भावना के तहत उद्देश्य की भावना एवं दिशा की भावना के साथ सार्वजनिक कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र को आगे बढ़ाने के लिए कानून के शासन द्वारा शासित एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक समाज में उद्देश्य वास्तविक होना चाहिए। कार्यकारी सरकार को सामाजिक व्यवस्था, स्थिरता, प्रगति एवं नैतिकता बनाए रखने के लिए अपनी नीतियां बनानी चाहिए।सरकार के सभी कार्य सामूहिक या संयुक्त या व्यक्तिगत क्षमता में व्यक्तिगत व्यक्तियों के माध्यम से/उनके द्वारा किए जाते हैं। इसलिए, उन्हें अपने कार्यों के लिए नैतिक रूप से जिम्मेदार होना चाहिए।"

121. विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1998) 1 एससीसी 226 ,में इस न्यायालय ने "जैन डायरी" में निहित खुलासों से संबंधित मामले में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से निष्क्रियता के बारे में शिकायत करने वाले अनुच्छेद 32 के तहत एक जनहित याचिका के मामले में विचार किया है। "सार्वजनिक जीवन में मानकों" पर लॉर्ड नोलन की रिपोर्ट पर ध्यान देने के बाद, इस न्यायालय ने कुछ निर्देश जारी किए, हालांकि यह केवल केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, प्रवर्तन निदेशालय एवं अभियोजन एजेंसी तक ही सीमित था। लेकिन लॉर्ड नोलन की रिपोर्ट मुख्य रूप से सार्वजनिक जीवन के सिद्धांतों एवं आचार संहिता से संबंधित थी।

122. ***कॉमन कॉज*** में निर्णय थोड़ा अजीब था एवं कुछ समस्याओं से भरा हुआ था। तत्कालीन पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस राज्य मंत्री द्वारा पेट्रोलियम आउटलेट्स का

आवंटन, जिसे एक विवेकाधीन कोटा होने का दावा किया गया था, सबसे पहले इस न्यायालय द्वारा (1996) 6 एस. सी. सी. 530 में रिपोर्ट किए गए एक फैसले द्वारा रद्द कर दिया गया था।इसके साथ ही तत्कालीन मंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह को कारण बताने का नोटिस जारी किया गया था।सतीश शर्मा ने पूछा कि उनके खिलाफ आपराधिक शिकायत क्यों नहीं दर्ज की जानी चाहिए एवं उन्हें पेट्रोल की दुकानों को गलत तरीके से आवंटित करने में उनकी दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही के लिए हर्जाना देने का निर्देश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए।मंत्री द्वारा कारण दर्शाओ नोटिस का जवाब देने के बाद, एक आदेश पारित किया गया, जिसकी रिपोर्ट (1996) 6 एस. सी. सी. 593 में दी गई थी, जिसमें मंत्री को अनुकरणीय हर्जाने का भुगतान करने एवं अभियोजन शुरू करने का भी निर्देश दिया गया था।बाद में, मंत्री द्वारा उस आदेश को वापस लेने के लिए समीक्षा के लिए एक याचिका दायर की गई थी जिसमें अनुकरणीय हर्जाने के भुगतान एवं केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा मामला दर्ज करने का निर्देश दिया गया था। (1999) 6 एस. सी. सी. 667 में रिपोर्ट की गई समीक्षा के लिए याचिका में निर्णय, उठाए गए विवाद के संदर्भ में सामूहिक जिम्मेदारी के सवाल से निपटता है।उक्त मामले में अपराधी मंत्री द्वारा यह तर्क दिया गया था कि मंत्रिमंडल के कार्य नियमों के तहत, एक मंत्री के कार्य को राष्ट्रपति या राज्यपाल के कार्य के रूप में माना जाना चाहिए एवं इसलिए उसके द्वारा किया गया आवंटन केवल राष्ट्रपति की ओर से कार्य करते हुए किया गया माना जाना चाहिए। इस तर्क के विस्तार के रूप में, यह भी तर्क दिया गया कि मंत्री ने मंत्रिपरिषद के एक हिस्से के रूप में कार्य किया है, उनके कार्य को

सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत पर पूरे मंत्रिमंडल का कार्य माना जाना चाहिए। उक्त तर्क को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने ***कॉमन कॉज*** में निर्णय दिया कि संविधान के अनुच्छेद 361 के तहत राष्ट्रपति को उपलब्ध प्रतिरक्षा को अनुच्छेद *77* (1) या *77* (2) के तहत राष्ट्रपति के नाम से पारित आदेशों तक नहीं बढ़ाया जा सकता है।सामूहिक उत्तरदायित्व की अवधारणा से निपटने के लिए, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 31 में निम्नलिखित निर्णय दियाः

"31. "सामूहिक उत्तरदायित्व" की अवधारणा अनिवार्य रूप से एक है राजनीतिक अवधारणा।देश को मंत्रिमंडल की बैठक में अपनाई गई एवं निर्धारित नीतियों के आधार पर सत्ता में पार्टी द्वारा शासित किया जाता है।"सामूहिक उत्तरदायित्व" के दो अर्थ हैंःपहला अर्थ जो वैध रूप से इसका श्रेय दिया जा सकता है वह यह है कि सरकार के सभी सदस्य अपनी नीतियों के समर्थन में सर्वसम्मत हैं एवं सार्वजनिक अवसरों पर उस सर्वसम्मति का प्रदर्शन करेंगे, हालांकि नीतियों को तैयार करते समय, उन्होंने मंत्रिमंडल की बैठक में एक अलग विचार व्यक्त किया होगा।इसका दूसरा अर्थ यह है कि जिन मंत्रियों को मंत्रिमंडल की नीतियों के पक्ष या विपक्ष में बोलने का अवसर मिला है, वे इसकी सफलता एवं विफलता के लिए व्यक्तिगत एवं नैतिक रूप से जिम्मेदार हैं।"

123. सामूहिक उत्तरदायित्व की अवधारणा पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 34 में एक अपवाद बनायाः

"34. उपरोक्त से यह देखा जाएगा कि इस तथ्य के बावजूद कि मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, एक ऐसा अवसर हो सकता है जब किसी मंत्री के आचरण की निंदा की जा सकती है यदि उसने या उसके अधीनस्थों ने गलती की है एवं कानून के विपरीत काम किया है।"

124. फिर से पैराग्राफ 36 में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

"36. इंग्लैंड में भी, क्राउन के सभी मंत्री एवं सेवक अपने कार्यों की वैधता के लिए अदालतों के प्रति जवाबदेह हैं, एवं उन्हें यातनापूर्ण या आपराधिक कृत्यों के लिए अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं में नागरिक एवं आपराधिक रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।इस दायित्व को या तो साधारण आपराधिक या दीवानी कार्यवाही के माध्यम से या महाभियोग के माध्यम से लागू किया जा सकता है, एक उपाय जो शायद अप्रचलित है।वे न्यायालयों के न्यायिक समीक्षा क्षेत्राधिकार के अधीन भी हैं। [देखिएःहैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड, फोर्थ एडन., (री-इश्यू), वॉल्यूम। 8 (2), पैरा 422।]"

125. राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) बनाम भारत संघ (2018) 8 एससीसी 501 में, इस न्यायालय की संविधान पीठ संविधान के अनुच्छेद 239एए की व्याख्या से संबंधित थी। सामूहिक उत्तरदायित्व की अवधारणा पर दीपक मिश्रा, सी. जे., जैसा कि वे उस समय थे, ने अनुच्छेद 82 से 85 तक व्यापक रूप से चर्चा की थी। अपने स्वतंत्र लेकिन सहमत राय में डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़, जे. ने पैराग्राफ 318 के बाद से सामूहिक जिम्मेदारी के सवाल पर भी चर्चा की।

126 उपरोक्त चर्चा से जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है, (i) सामूहिक जिम्मेदारी की अवधारणा अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक अवधारणा है; (ii) सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्रिपरिषद का है; और (iii) ऐसी सामूहिक जिम्मेदारी राज्य की लोक सभा/विधान सभा के प्रति है। सामान्य रूप से, ऐसी जिम्मेदारी निम्नलिखित से संबंधित होती है (i) लिए गए निर्णय; और (ii) चूक और कमीशन के कार्य किए गए। सामूहिक उत्तरदायित्व की इस अवधारणा को लोक सभा/विधान सभा के बाहर किसी मंत्री द्वारा मौखिक रूप से दिए गए किसी भी एवं सभी वक्तव्य तक विस्तारित करना संभव नहीं है।

127 विशेष अनुमति याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री कलीस्वरम राज ने ऑस्ट्रेलिया सरकार के मंत्रियों के लिए आचार संहिता, भारत सरकार के मंत्रियों के लिए आचार संहिता और यूनाइटेड किंगडम की मंत्रिस्तरीय संहिता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। यद्यपि, ऐसे नुस्खे आकर्षक हो सकते हैं, तथापि न्यायालय में ऐसी आचार संहिता लागू करना संभव नहीं है। सरकारी कर्मचारी अलग स्थिति में हैं क्योंकि सरकारी सेवक (आचरण) नियमावली के संदर्भ में उनकी ओर से किए गए किसी भी कदाचार पर सिविल सेवा (अनुशासन एवं अपील) नियमावली के तहत अनुशासनिक कार्रवाई की जा सकती है। सरकारी कर्मचारियों के मामले में भी, किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा दिए गए बयान के आधार पर सेवा से बर्खास्तगी/हटाने को न्यायोचित ठहराना संभव नहीं हो सकता है, क्योंकि यह आनुपातिकता परीक्षण अर्थात् कदाचार की गंभीरता को पूरा नहीं कर सकता है।

128 श्री कलीस्वरम राज द्वारा दिया गया यह सुझाव, कि भारत संघ के मंत्री के मामले में प्रधानमंत्री को तथा राज्य के मंत्री के मामले में मुख्यमंत्री को दोषी मंत्री के विरुद्ध उचित कार्रवाई करने की अनुमति दी जानी चाहिए, केवल काल्पनिक है। प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का मंत्रिपरिषद के सदस्यों पर अनुशासनात्मक नियंत्रण नहीं होता है। यह सच है कि व्यवहार में एक मजबूत प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री किसी मंत्री को मंत्रिमंडल से बाहर करने में सक्षम होगा। लेकिन हमारे जैसे देश में जहां बहुदलीय प्रणाली है और जहां प्रायः गठबंधन सरकारें बनती हैं, वहां हर समय प्रधानमंत्री के लिए यह संभव नहीं है कि वह मंत्रीपरिषद में किसी व्यक्ति द्वारा किए बयान दिए जाने पर व्हिप का सहारा ले।

129 ऐसी सरकारें जो बहुत कम बहुमत पर चलती हैं (जैसा कि हमने कई बार देखा है), कभी-कभी ऐसे मंत्री होते हैं जो ऐसी सरकारों के बने रहने का फैसला करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिशाली होते हैं। यह समस्या सिर्फ़ हमारे देश तक सीमित नहीं है।

130 हमने वेस्टमिंस्टर मॉडल का अनुसरण किया है, परंतु 1945 के चर्चिल कार्यवाहक मंत्रालय के बाद, 2010 में यूनाइटेड किंगडम में पहली गठबंधन सरकार आने के बाद वेस्टमिंस्टर मॉडल स्वयं ही अस्थिर हो गया। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि वर्ष 2014 में संविधान समिति (यूके) द्वारा "गठबंधन सरकार के संवैधानिक निहितार्थ" शीर्षक के तहत प्रस्तुत एक रिपोर्ट में यह बताया गया था कि **"सामूहिक मंत्री जिम्मेदारी गठबंधन सरकार द्वारा सबसे अधिक प्रभावित होने वाली परंपरा रही**

है"। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि 2010 में गठित गठबंधन सरकार (यूके में) ने पांच विशिष्ट मुद्दे तय किए थे, जिन पर पार्टियां अलग-अलग राय रखने पर सहमत होंगी। परंतु, वास्तव में असहमति के क्षेत्रों की संख्या अधिक रही है, जिसके परिणामस्वरूप एक अवसर पर मंत्रियों को विपरीत लॉबी में वोट देने के लिए मजबूर किया गया और दूसरे अवसर पर, ट्रेजरी बेंच पर बैठे सांसदों ने रानी के भाषण पर अभिभाषण में संशोधन करने का प्रयास किया।

131 हाउस ऑफ कॉमन्स लाइब्रेरी में उपलब्ध माइकल एवरेट द्वारा "सामूहिक जिम्मेदारी" पर "ब्रीफिंग पेपर" (संख्या 7755, 14 नवंबर 2016) में, (i) सामूहिक जिम्मेदारी की अवधारणा की प्रारंभिक उत्पत्ति और विकास; (ii) सामूहिक जिम्मेदारी क्या है; (iii) सामूहिक जिम्मेदारी की परंपराएँ; और (iv) सामूहिक उत्तरदायित्व से विचलन पर विचार किया है। यह पत्र जॉर्ज तृतीय (1760-1820) के शासनकाल में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत की प्रारंभिक शुरुआत का पता लगाता है। ब्रीफिंग पेपर के अनुसार, सामूहिक उत्तरदायित्व की आज की अवधारणा का विकास संसदीय सरकार के विक्टोरियन स्वर्ण युग के दौरान हुआ। वास्तव में, ब्रीफिंग पेपर में कुछ टिप्पणीकारों के उद्धरण हैं जिन्होंने सवाल किया है कि क्या सामूहिक उत्तरदायित्व की परिपाटी आज की सरकार के लिए उपयुक्त है। ब्रीफिंग पेपर में संविधान इकाई के अनुसंधान फेलो बैरी विनेट्रोब के उद्धरण हैं जिन्होंने कहा कि ***सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत ऐसे समय में विकसित किया गया था जब सम्राट के सामने असमान मंत्रिस्तरीय बलों के बीच सुसंगति की भावना बनाए रखने की आवश्यकता थी और***

यह जरूरी नहीं कि यह न केवल लोकतंत्र के युग में, बल्कि अधिक बड़े और अधिक प्रत्यक्ष भागीदारी वाले लोकतंत्र के युग में उपयुक्त हो।

132 ब्रीफिंग पेपर से "सामूहिक जिम्मेदारी लागू करना" शीर्षक के अंतर्गत अध्याय 2.3 के एक हिस्से को उद्धृत करना उपयोगी होगा:

> "...शेफील्ड विश्वविद्यालय में शासन और सार्वजनिक नीति की वरिष्ठ व्याख्याता डॉ. फेलिसिटी मैथ्यूज ने भी तर्क दिया है कि सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत को दिया जाने वाला सम्मान "विविधतापूर्ण" रहा है, और इसका रखरखाव और अवहेलना "राजनीति के साथ-साथ औचित्य के कारण भी है"।

> इसका एक दिलचस्प उदाहरण 2003 में इराक युद्ध की तैयारी के दौरान हुआ। हाउस ऑफ कॉमन्स के नेता रॉबिन कुक ने मार्च 2003 में इराक के प्रति तत्कालीन लेबर सरकार की नीति के विरोध में इस्तीफा दे दिया, क्योंकि वे आधिकारिक सरकारी पद को बनाए रखने में असमर्थ थे। इसलिए उनके कार्य सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत के अनुरूप थे। हालाँकि, क्लेयर शॉर्ट, अंतर्राष्ट्रीय विकास राज्य सचिव को सैन्य हस्तक्षेप के अपने मुखर विरोध के बावजूद और मार्च 2003 में तत्कालीन प्रधान मंत्री को "बेहद लापरवाह" कहकर सार्वजनिक रूप से निंदा करने के बावजूद कैबिनेट में बने रहने की अनुमति दी गई थी।
>
> फेलिसिटी मैथ्यूज के अनुसार, सामूहिक जिम्मेदारी के "असाधारण उल्लंघन" के बावजूद, क्लेयर शॉर्ट को मना लिया गया और उन्हें अपना मंत्री पद

> बरकरार रखने की अनुमति दी गई। इसके बाद वह अगले दो महीने तक कैबिनेट में रहीं, जब तक कि उन्होंने आक्रमण के बाद यूएस/यूके गठबंधन में कथित गलतियों के बाद 12 मई 2003 को इस्तीफा देने का फैसला नहीं किया। मैथ्यूज के अनुसार, यह उदाहरण "इस बात को रेखांकित करता है कि किस हद तक प्रधान मंत्री सामूहिक जिम्मेदारी की सख्त व्याख्या को लागू करने में अनिच्छुक या असमर्थ साबित हुए हैं, तब भी जब उनकी व्यक्तिगत विश्वसनीयता धूमिल हो गई हो"।

133. इस प्रकार, यूनाइटेड किंगडम में मंत्रियों के लिए विकसित की गई परंपरा स्वयं ही विफल हो गई प्रतीत होती है, और इसलिए, यूके मॉडल से कोई प्रेरणा लेना संभव नहीं है।

134. हम एक क्षण के लिए यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि मंत्री सहित कोई भी सरकारी अधिकारी गैर-जिम्मेदाराना या अभद्र भाव वाला या नफरत फैलाने वाला वक्तव्य दे सकता है और इससे बच सकता है। हमारा प्रश्न केवल सामूहिक उत्तरदायित्व और सरकार के प्रत्यावर्ती दायित्व के प्रश्न पर है।

135. जैसा कि इस मुद्दे पर सभी साहित्य से पता चलता है, सामूहिक जिम्मेदारी मंत्रिपरिषद की है। प्रत्येक मंत्री मंत्रिपरिषद द्वारा सामूहिक रूप से लिए गए निर्णयों के लिए जिम्मेदार है। दूसरे शब्दों में, सामूहिक उत्तरदायित्व में धारा का प्रवाह मंत्रिपरिषद से व्यक्तिगत मंत्रियों की ओर होता है। प्रवाह विपरीत दिशा में नहीं है, अर्थात व्यक्तिगत मंत्रियों से मंत्रिपरिषद की ओर।

136. हमारा ध्यान **अमिश देवगन** मामले में इस न्यायालय के निर्णय की ओर भी आकर्षित किया गया। यद्यपि उक्त निर्णय में"प्रभावशाली व्यक्ति" के भाषण के प्रभाव पर व्यापक रूप से विचार किया गया था, लेकिन हम इस संदर्भ में उससे संबंधित नहीं हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उक्त निर्णय"घृणास्पद भाषण" से संबंधित था। हमारे पास भेजे गए प्रश्नों में से कोई भी, जिसमें प्रश्न संख्या 4 भी शामिल है, जिससे हम वर्तमान में संबंधित हैं, घृणास्पद भाषण से संबंधित नहीं है, और यह स्पष्ट है। रिट याचिका और साथ ही विशेष अनुमति याचिका, जिससे यह संदर्भ उत्पन्न हुआ, उत्तर प्रदेश और केरल राज्य के मंत्रियों द्वारा दिए गए भाषणों से संबंधित है। उत्तर प्रदेश राज्य के मंत्री द्वारा दिए गए भाषण में डकैती और सामूहिक बलात्कार के मामले को राजनीतिक साजिश के रूप में पेश करने का प्रयास किया गया। केरल राज्य के मंत्री के भाषण में महिलाओं को अपमानजनक तरीके से चित्रित किया गया। चूंकि दोनों मामलों में संबंधित वक्तव्य मंत्रियों के थे, इसलिए हमारे पास भेजा गया प्रश्न संख्या 4 विशेष रूप से "मंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य" से संबंधित है। **अमिश देवगन** ने राज्य के किसी मामले से जुड़े किसी मंत्री के वक्तव्य पर बात नहीं की, हालांकि एक मंत्री "प्रभावशाली व्यक्ति" की श्रेणी में आता है। इसके अलावा, मौजूदा मामलों में मंत्रियों के वक्तव्य नफरत फैलाने वाले भाषण की श्रेणी में नहीं आ सकते हैं। इसलिए, हम **अमिश देवगन** में दिए गए सवालों पर जाकर इस संदर्भ के दायरे को बढ़ाना नहीं चाहते हैं।

137. इसलिए, **प्रश्न संख्या 4 के लिए हमारा उत्तर यह होगा कि किसी मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य, भले ही वह राज्य के किसी मामले से संबंधित हो या सरकार की**

रक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है?

प्रश्न क्रमांक 5

138. हमारे विचारार्थ प्रश्न संख्या 5 यह है कि "क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य, जो संविधान के भाग III के अंतर्गत नागरिक के अधिकारों से असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन है तथा क्या वह 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्रवाई योग्य है?"

139. सबसे पहले, प्रश्न संख्या 5 में आए शब्दों "मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य" से हमें कुछ परेशानी है। मंत्री द्वारा वक्तव्य लोक सभा/राज्य की विधान सभा के अंदर या बाहर दिया जा सकता है। मंत्री द्वारा लिखित रूप में या मौखिक रूप से भी वक्तव्य दिया जा सकता है। वक्तव्य निजी रूप से या सार्वजनिक रूप से दिया जा सकता है। मंत्री द्वारा वक्तव्य या तो उस मंत्रालय/विभाग के मामलों के परिप्रेक्ष्य में दिया जा सकता है, जिसका वह नियंत्रण करता है या सामान्य रूप से उस सरकार की नीतियों के संबंध में दिया जा सकता है, जिसका वह हिस्सा है। मंत्री उन मामलों पर भी राय के रूप में वक्तव्य दे सकता है, जिनसे उसका या उसके विभाग का कोई संबंध नहीं है या जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। ऐसे सभी वक्तव्यों से जरूरी नहीं कि अपकृत्य या संवैधानिक अपकृत्य में कोई कार्रवाई हो।

140. उदाहरण के लिए एक ऐसा मामला लें जिसमें एक मंत्री यह बयान देता है कि महिलाएं किसी खास पेशे में काम करने के लिए अयोग्य हैं। लैंगिक समानता के

प्रति उनकी असंवेदनशीलता को दर्शाता है और उनकी निम्न संवैधानिक नैतिकता को भी उजागर कर सकता है। यह तथ्य कि उनकी असंवेदनशीलता या समझ की कमी या निम्न संवैधानिक नैतिकता के कारण, वे ऐसी भाषा बोलते हैं जिसमें महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों को नीचा दिखाने की क्षमता है, संवैधानिक अपकृत्य में कार्रवाई का आधार नहीं हो सकता। कहने की जरूरत नहीं है कि संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप नहीं होने वाली राय रखने के लिए किसी पर कर या दंड नहीं लगाया जा सकता है। यह केवल तभी संभव है जब उनकी राय कार्रवाई में तब्दील हो और ऐसी कार्रवाई से चोट या नुकसान या हानि हो, तब अपकृत्य में कार्रवाई की जाएगी। इस चेतावनी के साथ, आइए अब मुद्दे के मूल में आते हैं।

141. अपकृत्य एक सिविल गलत कार्य है, जिसके कारण दावेदार को नुकसान या क्षति होती है, जिसके परिणामस्वरूप अपकृत्य कार्य करने वाले व्यक्ति के लिए कानूनी दायित्व उत्पन्न होता है। इंग्लैंड के हेल्सबरी के कानून में कहा गया है: *"कार्रवाई के वे सिविल अधिकार जो उन व्यक्तियों द्वारा अनिर्धारित क्षति की वसूली के लिए उपलब्ध हैं, जिन्होंने कर्तव्य के उल्लंघन या कानून द्वारा लगाए गए या दिए गए अधिकार के उल्लंघन में दूसरों के कार्यों, बयानों या चूक से चोट या हानि उठाई है, न कि समझौते द्वारा अपकृत्य में कार्रवाई के अधिकार हैं।"*

142. यदि क्राउन कार्यवाही अधिनियम, 1947 ने इंग्लैंड में टोर्ट से संबंधित कानून की दिशा बदल दी, तो फेडरल अपकृत्य दावा अधिनियम, 1946 ने अमेरिका में अपने सेवकों के अपकृत्यात्मक कार्यों के लिए राज्य के दायित्व से संबंधित कानून की

दिशा बदल दी। फिर भी, संप्रभु प्रतिरक्षा के सिद्धांत पर नुकसान के दावों का यहां और अन्य जगहों पर लंबे समय तक विरोध किया जाता रहा। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि भारत के राष्ट्रपति की पहल पर, कानून मंत्रालय ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या यूनाइटेड किंगडम के क्राउन कार्यवाही अधिनियम, 1947 की तर्ज पर कानून की जरूरत है और यदि हां, तो किस हद तक। विधि आयोग के गठन के बाद, विधि मंत्रालय ने मामले को विचार और रिपोर्ट के लिए आयोग को भेज दिया। दिनांक 11.5.1956 को "अपकृत्य में राज्य की देयता" पर प्रस्तुत अपनी पहली रिपोर्ट में, विधि आयोग ने (i) भारत में मौजूदा कानून; (ii) इंग्लेंड में कानून; (iii) अमेरिका में कानून; (iv) ऑस्ट्रेलिया में कानून; (v) फ्रांस में कानून; (vi) वैधानिक निर्माण का नियम; और (vii) निष्कर्ष और प्रस्ताव पर ध्यान दिया ।

143. विधि आयोग की पहली रिपोर्ट के अध्याय VIII में निष्कर्ष और प्रस्ताव शामिल थे, जिसमें सुझाव दिया गया था: (i) कि कल्याणकारी राज्य के संदर्भ में, व्यक्ति के अधिकारों और राज्य के दायित्वों के बीच एक न्यायसंगत संबंध स्थापित करना आवश्यक है; (ii) कि जब संविधान बनाया गया था, तो यह प्रश्न कि किस सीमा तक, यदि कोई हो, संघ और राज्यों को अपने सेवकों या एजेंटों के अत्याचारपूर्ण कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए, भविष्य के विधान के लिए छोड़ दिया गया था; (iii) कि उस सीमा को निर्धारित करने का प्रश्न, जिस तक राज्य को अपकृत्यात्मक कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए, में विचारों का एक अच्छा संतुलन शामिल है, ताकि राज्य की गतिविधियों के क्षेत्र को अनावश्यक रूप से प्रतिबंधित न किया जाए और साथ

ही नागरिक को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जा सके; (iv) कि यह आवश्यक है कि कानून को, जहां तक संभव हो, सुनिश्चित और निश्चित बनाया जाना चाहिए, बजाय इसके कि इसे न्यायाधीशों के विचारों के अनुसार कानून विकसित करने के लिए अदालतों पर छोड़ दिया जाए; और (v) कि राज्य के दायित्व को निर्धारित करने के लिए संप्रभु और गैर-संप्रभु कार्यों या सरकारी और गैर-सरकारी कार्यों के बीच पुराने अंतर को अब लागू नहीं किया जाना चाहिए।

144. विधि आयोग की पहली रिपोर्ट के कंडिका 66 में वे सिद्धांत दिए गए हैं जिनके आधार पर उचित कानून बनाया जाना चाहिए। संवैधानिक अपकृत्य के व्यापक स्वरूप को समझने के लिए विधि आयोग की पहली रिपोर्ट के पैराग्राफ 66 को उद्धृत करना उपयोगी होगा, क्योंकि इसकी कल्पना संविधान को अपनाने के कुछ वर्षों के भीतर ही की गई थी। वास्तव में, इसने बहुत दूरदर्शिता के साथ बहुत स्पष्ट रूप से कार्य योजना तैयार किया है। कंडिका 66 इस प्रकार है:

> "66. निम्नलिखित सिद्धांत होंगे जिनके आधार पर कानून आगे बढ़ना चाहिए: —
>
> I. सामान्य कानून के तहत:
>
> अपकृत्यों के सामान्य कानून के अंतर्गत, अर्थात् न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांत पर भारत में आयातित अंग्रेजी सामान्य कानून, उस कानून के वैधानिक संशोधनों के साथ जो अब भारत में लागू है (सामान्य कानून के सिद्धांत, परिशिष्ट VI देखें) -

(i) नियोक्ता के रूप में राज्य को अपने कर्मचारियों और एजेंटों द्वारा उनके कार्यालय या रोजगार के दायरे में कार्य करते समय किए गए अपकृत्यों के लिए उत्तरदायी होना चाहिए।

(ii) नियोक्ता के रूप में राज्य को उन कर्तव्यों के उल्लंघन के संबंध में उत्तरदायी होना चाहिए जो किसी व्यक्ति को अपने कर्मचारियों या एजेंटों के प्रति सामान्य कानून के तहत उनके नियोक्ता होने के कारण निभाने होते हैं।

(iii) राज्य को केवल परिशिष्ट VI में संदर्भित मामलों में स्वतंत्र ठेकेदार द्वारा किए गए अपकृत्यों के लिए उत्तरदायी होना चाहिए।

(iv) राज्य को उन अपकृत्यों के लिए भी उत्तरदायी होना चाहिए जहां राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण वाला कोई निगम उत्तरदायी होगा।

(v) राज्य को उस समय से अचल संपत्ति के स्वामित्व, कब्जे, कब्जे या नियंत्रण के लिए सामान्य कानून के तहत संलग्न कर्तव्यों के उल्लंघन के संबंध में उत्तरदायी होना चाहिए, जब राज्य संपत्ति पर कब्जा करता है या उसका नियंत्रण ग्रहण करता है।

(vi) राज्य को खतरनाक चीजों (संपत्ति) से होने वाली चोट के लिए सामान्य कानूनी दायित्व के अधीन होना चाहिए।

(i) से (vi) के संबंध में राज्य को वही बचाव करने का अधिकार होना चाहिए, जो एक नागरिक सामान्य कानून के तहत उठाने का हकदार होगा।

II. क़ानून द्वारा लगाए गए देखभाल के कर्तव्यों के संबंध में:

(i) यदि कोई कानून किसी ऐसे कार्य को करने का अधिकार देता है जो अपने आप में हानिकारक है, तो राज्य को उत्तरदायी नहीं होना चाहिए।

(ii) राज्य को, उस पर या उसके कर्मचारियों पर लगाए गए किसी वैधानिक कर्तव्य के उल्लंघन के लिए, जिसके कारण क्षति होती है, लापरवाही के सबूत के बिना उत्तरदायी होना चाहिए।

(iii) राज्य को उत्तरदायी होना चाहिए यदि उस पर या उसके कर्मचारियों पर लगाए गए वैधानिक कर्तव्यों के निर्वहन में, कर्मचारी लापरवाही या दुर्भावना से कार्य करते हैं, चाहे ऐसे कर्तव्य के निर्वहन में विवेक शामिल हो या नहीं।

(iv) राज्य को उत्तरदायी होना चाहिए यदि उसे या उसके कर्मचारियों को प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है जिससे उपद्रव या अतिचार होता है या शक्ति का प्रयोग लापरवाही से या दुर्भावनापूर्ण रूप से क्षति पहुंचाने के लिए किया जाता है।

ध्यान दें- परिशिष्ट V में कुछ ऐसे अधिनियम दिखाए गए हैं जिनमें संरक्षण संबंधी उपबंध हैं। परंतु साधारण खंड अधिनियम के तहत किसी कार्य को सद्भावनापूर्वक किया गया माना जाता है, भले ही वह लापरवाही से किया गया हो। इसलिए, उपयुक्त कानून द्वारा संरक्षण को लापरवाही से किए गए कार्यों तक विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए, चाहे वे कितने भी ईमानदारी

से किए गए हों और इस उद्देश्य के लिए ऐसे अधिनियमों में प्रासंगिक उपबंधों की जाँच की जानी चाहिए।

(v) राज्य को एक निजी नियोक्ता के समान कर्तव्यों और अधिकारों के अधीन होना चाहिए, चाहे वह कानून राज्य पर विशेष रूप से बाध्यकारी हो या नहीं।

(vi) यदि कोई अधिनियम उस अधिनियम के दायरे में आने वाले किसी नागरिक को क्षति पहुंचाने के लिए देय मुआवजे को नकारता है या सीमित करता है, तो राज्य का दायित्व उस अधिनियम के अंतर्गत के समान ही होना चाहिए और आहत व्यक्ति को केवल अधिनियम के अंतर्गत दिए गए उपचार, यदि कोई हो, का ही हकदार होना चाहिए।

III. विविध:

पेटेंट, डिजाइन और प्रतिलिप्याधिकार: क्राउन कार्यवाही अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों को अपनाया जा सकता है।

IV. सामान्य प्रावधान:

(i) क्षतिपूर्ति और अंशदान: राज्य को क्षतिपूर्ति या अंशदान का दावा करने में सक्षम बनाने के लिए, क्राउन कार्यवाही अधिनियम की धारा 4 के आधार पर एक प्रावधान अपनाया जा सकता है।

(ii) योगदायी उपेक्षा: इंग्लैंड में, योगदायी उपेक्षा से संबंधित कानून में संशोधन करते हुए कानून सुधार (योगदायी उपेक्षा) अधिनियम, 1945 लागू

किया गया था और क्राउन कार्यवाही अधिनियम के प्रावधानों के मद्देनजर उक्त अधिनियम क्राउन को भी बाध्य करता है। भारत में, न्यायिक राय की प्रवृत्ति यह मानने के पक्ष में है कि मेरीवेदर बनाम निक्सन [(1799) 8 टीआर 186] के नियम लागू नहीं होते है और एक अपकारकर्ता द्वारा दूसरे से मुआवज़ा वसूलने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। परंतु कानून को अनिश्चित स्थिति में नहीं छोड़ा जाना चाहिए और अंग्रेजी अधिनियम की तर्ज पर कानून बनना चाहिए।

(iii) सिविल प्रक्रिया संहिता में संशोधन करते समय उचित प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि राज्य के विरुद्ध क्षतिपूर्ति के लिए दावा करने वाले मुकदमे में उस कर्मचारी, एजेंट या स्वतंत्र ठेकेदार को पक्षकार बनाना अनिवार्य हो जिसके कार्य के लिए राज्य को उत्तरदायी ठहराया जा रहा हो। राज्य द्वारा क्षतिपूर्ति या अंशदान पर आधारित किसी भी दावे का निपटारा भी ऐसी कार्यवाही में किया जा सकता है क्योंकि सभी पक्ष न्यायालय के समक्ष होंगे।

V अपवाद:

(i) राज्य के कृत्य: राज्य को अपने कर्मचारियों या एजेंटों के किसी कृत्य, उपेक्षा या चूक के लिए "राज्य के कृत्य" का बचाव उपलब्ध कराया जाना चाहिए। "राज्य के कृत्य" का अर्थ है संप्रभु शक्ति द्वारा किसी अन्य संप्रभु शक्ति या किसी अन्य संप्रभु शक्ति के विषयों के विरुद्ध निर्देशित कृत्य, जो संप्रभु अधिकारों के अनुसरण में अस्थायी निष्ठा नहीं रखते हैं।

(ii) न्यायिक कार्य और न्यायिक प्रक्रिया का निष्पादन: राज्य न्यायिक अधिकारियों और न्यायिक अधिकारियों के वारंट और आदेशों को निष्पादित करने वाले व्यक्तियों द्वारा किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, उन सभी मामलों में जहां न्यायिक अधिकारी संरक्षण अधिनियम, 1850 की धारा 1 द्वारा ऐसे अधिकारियों और व्यक्तियों को संरक्षण दिया गया है ।

(iii) राज्य के राजनीतिक कार्यों के निष्पादन में किए गए कार्य जैसे कि निम्नलिखित से संबंधित कार्य:

(क) विदेशी मामले (संविधान की सातवीं अनुसूची, सूची 1, प्रविष्टि 10); (ख) राजनयिक, कांसुलरी और व्यापार प्रतिनिधित्व (प्रविष्टि 11) (ग) संयुक्त राष्ट्र संगठन (प्रविष्टि 12);

(घ) अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी, संघों और अन्य निकायों तथा उनमें लिए गए निर्णयों का कार्यान्वयन (प्रविष्टि 13);

(ङ) विदेशी देशों के साथ संधियां और समझौते करना तथा विदेशी देशों के साथ संधियों, समझौतों और अभिसमयों को क्रियान्वित करना (प्रविष्टि 14);

(च) युद्ध और शांति (प्रविष्टि 15);

(छ) विदेशी अधिकार क्षेत्र (प्रविष्टि 16);

(ज) राष्ट्रपति, राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा निम्नलिखित कृत्यों के निर्वहन में की गई कोई भी कार्रवाई:

विधानमंडल को बुलाने, स्थगित करने और भंग करने की शक्ति, कानूनों पर वीटो लगाने और संविधान के तहत उद्घोषणाएं जारी करने की शक्तियों के प्रयोग में राष्ट्रपति द्वारा किया गया कोई भी कार्य;

(झ) शत्रु व्यापार अधिनियम, 1947 के अंतर्गत किए गए कार्य;

(ञ) जब राज्य की सुरक्षा को खतरा हो तो आपातकाल की घोषणा के अधीन किए गए या न किए जाने वाले कार्य।

(iv) रक्षा बलों के संबंध में किए गए कार्य:

(क) युद्ध के समय सशस्त्र बलों की लड़ाकू गतिविधियाँ;

(ख) रक्षा बलों के प्रशिक्षण या उनकी दक्षता बनाए रखने के प्रयोजन के लिए संघ में निहित शक्तियों के प्रयोग में किए गए कार्य;

इनसे संबंधित क़ानून पहले से ही मुआवजे के भुगतान और मुआवजे का निर्धारण करने के लिए मशीनरी प्रदान करते हैं: युद्धाभ्यास और खुले क्षेत्र में गोला चलाने तथा तोप दागने का अभ्यास अधिनियम, 1948; सागर-दिशा तोप अभ्यास अधिनियम, 1949 देखें ;

(ग) सशस्त्र सेना के किसी सदस्य द्वारा ड्यूटी के दौरान किसी अन्य सदस्य को पहुँचाई गई व्यक्तिगत चोट या मृत्यु के लिए राज्य का दायित्व उसी प्रकार प्रतिबन्धित होगा जैसा कि इंग्लैण्ड में है (क्राउन कार्यवाही अधिनियम की धारा 10)

(v) विविध:

(क) मानहानि, दुर्भावनापूर्ण अभियोजन और दुर्भावनापूर्ण गिरफ्तारी से उत्पन्न कोई भी दावा,

(ख) संगरोध कानून के संचालन से उत्पन्न कोई दावा,

(ग) भारतीय टेलीग्राफ अधिनियम 1885, और भारतीय डाकघर अधिनियम 1898 के तहत मौजूदा प्रतिरक्षा

(घ) विदेशी अपकृत्य। (अंग्रेजी प्रावधान अपनाया जा सकता है।)"

145. ऐसा प्रतीत होता है कि विधि आयोग की पहली रिपोर्ट के आधार पर, 1967 में सरकार (अपकृत्य में दायित्व) विधेयक के रूप में जाना जाने वाला एक विधेयक पेश किया गया था, लेकिन वह कानून नहीं बन पाया। परिणामस्वरूप, न्यायिक मिसालों के माध्यम से कानून विकसित करने के लिए न्यायालयों पर भारी बोझ डाला गया, जिनमें से कुछ को हम अब देखेंगे।

146. न्यायिक यात्रा वास्तव में बिहार राज्य बनाम अब्दुल मजीद (ए०आई०आर० 1954 एस०सी० 245) के निर्णय के साथ सही नोट पर शुरू हुई, जहां एक सरकारी कर्मचारी जिसे बर्खास्त कर दिया गया था लेकिन बाद में बहाल कर दिया गया, ने वेतन के बकाया की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। हालांकि राज्य ने प्रसाद/आनंद के सिद्धांत के आधार पर बचाव किया, परंतु इस न्यायालय ने इस आधार पर इसे खारिज कर दिया कि लैटिन वाक्यांश "डुरंटे बेने प्लासीटो"(*durante bene placito*) (आनंद के दौरान) पर आधारित उक्त सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता है। इस निर्णय का पालन राजस्थान राज्य बनाम मास्टर विद्यावती (एआईआर 1952

> एससी 933) में किया गया, जिसमें एक व्यक्ति की विधवा द्वारा मुआवजे का दावा शामिल था, जिसे राज्य के स्वामित्व वाली और उसके द्वारा संचालित एक जीप ने टक्कर मार दी थी। जब संप्रभु प्रतिरक्षा की दलील दी गई, तो इस न्यायालय ने **विद्यावती (सुप्रा)** में वर्णित किया कि: **"जब यूनाइटेड किंगडम में सामान्य कानून के आधार पर क्राउन के पक्ष में प्रतिरक्षा का नियम इस भूमि से उसके जन्म से लुप्त हो गया है, तो यह मानने के लिए कोई कानूनी वारंट नहीं है कि इस देश में इसकी कोई वैधता है, विशेषकर संविधान के बाद।"**

147. अपने कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए राज्य के दायित्व के प्रश्न पर, इस न्यायालय ने **विद्यावती** में निम्नलिखित राय व्यक्त की है:

> "(10) यह मामला इस तर्क की दूसरी शाखा को भी पूरा करता है कि राज्य अपने कर्मचारियों के अपकृत्यात्मक कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता, जब ऐसे कर्मचारी राज्य के मामलों से जुड़ी किसी गतिविधि में लगे हों। इस संबंध में यह याद रखना होगा कि संविधान के तहत हमने एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की है, जिसके कार्य केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि उद्योग, सार्वजनिक परिवहन, राज्य व्यापार, उनमें से केवल कुछ का नाम लेने के लिए, सहित सभी गतिविधियों में संलग्न होने तक विस्तारित हैं....."

148. किंतु अब्दुल मजीद (सुप्रा) और विद्यावती में दिए गए निर्णयों के बावजूद, यह न्यायालय कस्तूरी लाल के मामले में फिसलन भरी ढलान पर चला गया। यह एक

ऐसा मामला था जिसमें सराफा और अन्य वस्तुओं का कारोबार करने वाली एक फर्म के भागीदार को गिरफ्तार कर पुलिस हिरासत में रखा गया और उसके पास मौजूद सोना और चांदी पुलिस ने जब्त कर लिया। जब उसे बाद में रिहा किया गया, तो चांदी वापस कर दी गई, लेकिन गिरफ्तारी करने वाले हेड कांस्टेबल ने सोने का गबन कर लिया और अक्टूबर, 1947 में पाकिस्तान भाग गया। सोने के मूल्य की वसूली के लिए कस्तूरी लाल द्वारा दायर किए गए मुकदमे का इस आधार पर विरोध किया गया कि यह राज्य के कर्मचारियों की लापरवाही का मामला नहीं था और अगर पुलिस अधिकारियों के खिलाफ लापरवाही साबित भी हो जाती है, तो भी राज्य को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। राज्य के तर्क को बरकरार रखते हुए, इस न्यायालय ने कहा, *"यदि कोई लोक सेवक कोई अपकृत्य करता है और यह क्षतिपूर्ति के लिए दावे को जन्म देता है, तो पूछे जाने वाला प्रश्न यह है: क्या लोक सेवक द्वारा किया गया अपकृत्य वैधानिक कार्यों के निर्वहन में किया गया था, जो राज्य की संप्रभु शक्तियों के ऐसे लोक सेवक को सौंपे जाने के संदर्भ में और अंततः उसी पर आधारित हैं? यदि उत्तर सकारात्मक है, तो ऐसे अपकृत्य कार्य से हुई हानि के लिए क्षतिपूर्ति की कार्रवाई नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि कोई अपकृत्य लोक सेवक द्वारा उसे सौंपे गए कर्तव्यों के निर्वहन में किया गया है, न कि किसी संप्रभु शक्ति के प्रत्यायोजन के आधार पर, तो क्षतिपूर्ति की कार्रवाई होगी। अपने रोजगार के दौरान लोक सेवक द्वारा किया गया कार्य इस श्रेणी के मामलों में, एक ऐसे सेवक का कार्य है जिसे उसी उद्देश्य के लिए किसी निजी व्यक्ति द्वारा नियोजित किया जा सकता था।"*

149. वास्तव में, कस्तूरी लाल मामले में इस न्यायालय द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि भारत में विधानमंडलों को प्रतिरक्षा के अपने दावे को विनियमित और नियंत्रित करने के लिए विधायी अधिनियम बनाने पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। कालानुक्रमिक क्रम में यात्रा को आगे बढ़ाने से पहले, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कस्तूरी लाल मामले में निर्णय लगभग 30 वर्षों के बाद कुछ हद तक कमजोर हो गया था, जिस पर हम उचित चरण में ध्यान देंगे।

150. **खत्री (II) बनाम बिहार राज्य (1981) 1 एससीसी 627**, जिसे *भागलपुर ब्लाइंडिंग केस* के नाम से जाना जाता है, में यह न्यायालय पुलिस अत्याचार की एक क्रूर घटना से निपट रहा था जिसके परिणामस्वरूप चौबीस कैदी अंधे हो गए थे। यद्यपि इस न्यायालय को उक्त मामले में संवैधानिक अपकृत्य के आगमन का संकेत देने का अवसर प्रदान किया गया था और यद्यपि याचिकाकर्ताओं ने अपने अनुच्छेद 21 के अधिकार के उल्लंघन के लिए मुआवजे की मांग की थी, इस न्यायालय ने यह मानकर निर्णय को भविष्य की किसी तिथि तक स्थगित कर दिया कि वे सबसे गंभीर संवैधानिक महत्व के मुद्दे हैं, जिसमें जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के नए आयाम की खोज शामिल है।

151. लेकिन कुछ वर्षों के भीतर, रूदल साह (सुप्रा) में एक और अवसर आया, जो एक कैदी को उसके दोषमुक्त होने के बाद भी चौदह वर्षों तक अवैध रूप से हिरासत में रखने से संबंधित था। इसने इस न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर दिया। इसलिए, इस न्यायालय ने उचित हर्जाने की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने के याचिकाकर्ता

के अधिकार को सुरक्षित रखते हुए, मनमाने ढंग से धनराशि का मुआवजा दिया। इस न्यायालय ने कहा कि इस न्यायालय द्वारा पारित मुआवजे का आदेश उपशामक प्रकृति का था। जब राज्य द्वारा यह सुझाव दिया गया कि उचित उपाय केवल हर्जाने के लिए मुकदमा दायर करना होगा, तो इस न्यायालय ने कहा कि (मुआवजे के लिए) कुछ भी आदेश देने से इनकार करके, यह न्यायालय स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के प्रति केवल दिखावटी सेवा कर रहा होगा और राज्य द्वारा अधिकार के उल्लंघन को उचित रूप से रोकने के लिए एक महत्वपूर्ण तरीका इसके उल्लंघनकर्ताओं को मौद्रिक मुआवजे से मुक्त करना है।

152. रुदुल साह के बाद पीछे मुड़कर नहीं देखा गया। विस्तृत विवरण प्रदान करने के बजाय, हमें लगता है कि उन मामलों का विवरण सारणीबद्ध रूप में प्रदान करना पर्याप्त है, जहाँ इस न्यायालय ने सार्वजनिक कानून में, संवैधानिक अपकृत्य के सिद्धांत को लागू करते हुए, प्रत्यक्ष रूप से या आन्वयिक रूप से मुआवज़ा दिया।

क्रमांक	**न्याय दृष्टांत**	**निर्णय**
1	**सेबेस्टियन एम. होंग्रे बनाम भारत संघ (1984) 3 एससीसी 82**	• दो व्यक्ति जिन्हें 21वीं सिख रेजिमेंट द्वारा पूछताछ के लिए ले जाया गया था, वे कभी घर नहीं लौटे । • जब जेएनयू के एक छात्र ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की थी, तो इस न्यायालय ने

		निर्देश दिया था कि लापता लोगों को न्यायालय के समक्ष पेश किया जाए। इस आदेश का पालन नहीं किया जा सका। • न्यायालय ने लापता व्यक्तियों की पत्नियों को उनके द्वारा झेली गई मानसिक पीड़ा के आधार पर एक लाख रुपये का मुआवजा देने का आदेश दिया।
2	**भीमसिंह विधायक बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (1985) 4 एससीसी 677**	• एक विधायक को जम्मू और कश्मीर राज्य विधानसभा के सत्र में भाग लेने से रोकने के लिए अवैध रूप से गिरफ्तार किया गया और हिरासत में लिया गया। • भारतीय दंड संहिता की धारा 153ए के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और विधायक को न्यायालय में पेश किए बिना मजिस्ट्रेट से रिमांड का आदेश प्राप्त किया गया। • उनकी पत्नी द्वारा दायर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, इस न्यायालय ने पाया कि संविधान के अनुच्देद 21 और 22(2) के तहत उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है

		और तदनुसार जम्मू और कश्मीर राज्य को भीम सिंह को मुआवजे के रूप में 50,000 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया ।
3	**पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम बिहार राज्य व अन्य (1987)1 एससीसी 265**	• एक शांतिपूर्ण आंदोलन के सदस्यों पर पुलिस अधिकारियों द्वारा अवैध गोलीबारी के खिलाफ एक जनहित याचिका दायर की गई थी । • इस घटना के कारण कई लोग घायल हुए और 21 लोगों (बच्चों सहित) की मृत्यु हो गई । • जबकि राज्य ने प्रत्येक मृतक के उत्तराधिकारियों को 10,000 रुपये का मुआवजा दिया था, इस न्यायालय ने इसे अपर्याप्त पाया और प्रत्येक मृतक के आश्रितों को 20,000 रुपये और प्रत्येक घायल व्यक्ति को 5,000 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया।
4	**सहेली ए वूमेंस रिसोर्सेस सेंटर द्वारा नलिनी भनौत व अन्य बनाम पुलिस**	• दो महिलाओं को जबरन उनके घरों से बाहर निकाल दिया गया। मकान मालिक को थाना प्रभारी और उपनिरीक्षक द्वारा हमले में सहायता की गई थी जिसके कारण एक महिला के नौ

	कमिश्नर दिल्ली, दिल्ली पुलिस मुख्यालय व अन्य 1990 (1) एससीसी 422	वर्षीय बेटे की मौत हो गई। • इस न्यायालय द्वारा मृतक पुत्र की माता को 75,000/- रूपये मुआवजा दिए जाने का आदेश दिया ।
5	**सुप्रीम कोर्ट विधिक सहायता समिति द्वारा सचिव बनाम बिहार राज्य व अन्य (1991) 3 एससीसी 482**	• ट्रेन डकैती में घायल एक व्यक्ति को पुलिस ने वाहन के फुटबोर्ड से बांधकर नजदीकी अस्पताल पहुंचाया। इससे उसकी मौत हो गई। • इस न्यायालय ने पाया कि अगर पीड़ित की समय पर देखभाल की गई होती तो उसे बचाया जा सकता था। • बिहार राज्य को मृतक के उत्तराधिकारियों को 20,000/- रूपये प्रदान किए जाने हेतु आदेशित किया गया ।
6	**नीलबती बेहरा (श्रीमती) उर्फ ललिता बेहरा (द्वारा सुप्रीम कोर्ट विधिक सहायता समिति) बनाम उड़ीसा**	• याचिकाकर्ता मां थी, जिसके पुत्र की पुलिस हिरासत में मृत्यु हो गई थी । • इस न्यायालय ने राज्य को आदेशित किया कि वह 1.5 लाख रूपये मआवजा प्रदान करे ।

	राज्य व अन्य (1993) 2 एससीसी 746	
7	**अरविंद सिंह बग्गा विरूद्ध उ०प्र० राज्य व अन्य (1994) 6 एससीसी 565**	• एक विवाहित महिला को अपहरण और जबरन शादी के मामले में अपने पति और उसके परिवार को फंसाने के लिए मजबूर करने के उद्देश्य से पुलिस स्टेशन में हिरासत में लिया गया और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया गया। • उसके बयान लेने के पश्चात पुलिस ने उसके पति एवं उसके परिवारजन को भी परेशान किया । • इस न्यायालय ने पाया कि पुलिस ने उच्च मनमानी और असभ्य व्यवहार का प्रदर्शन किया था और महिला को 10,000 रुपये और उसके परिवार के सदस्यों को 5,000 रुपये का मुआवजा दिलाया।
8	**एन० नागेन्द्र राव एंड कंपनी बनाम आंध्रप्रदेश राज्य**	• अपीलकर्ता खाद्यान्न और उर्वरक के व्यवसाय में था। संबंधित अधिकारियों द्वारा निरीक्षण करने पर, उसके स्टॉक को जब्त कर लिया

	(1994) 6 एससीसी 205	गया। • प्रथा अनुरूप जब्त खाधान्न को विक्रय कर प्राप्त धनराशि को कोषालय में जमा करा दिया गया परंतु उर्वरकों के मामले में उसी अनुरूप व्यवहार नहीं किया गया, जिससे याचिकाकर्ता को भारी नुकसान हुआ । • सार्वजनिक अधिकारियों की लापरवाही और दुराचरण के मामले में, इस न्यायालय ने संवैधानिक अपकृत्य की अवधारणा को और विकसित किया तथा कस्तूरीलाल में निर्धारित संप्रभु प्रतिरक्षा के दायरे को सीमित कर दिया। अधिकारियों के कार्यों के लिए राज्य को परोक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया गया।
9	**इंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य व अन्य (1995) 3 एससीसी 702**	• पंजाब के एक पुलिस उपाधीक्षक और अन्य ने अपने अधीनस्थों के साथ व्यक्तिगत प्रतिशोध के कारण सात व्यक्तियों का अपहरण कर लिया और मार डाला । • इस न्यायालय ने सीबीआई द्वारा जांच का आदेश दिया। सीबीआई द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत

		करने के बाद, इस न्यायालय ने राज्य को विधिक उत्तराधिकारियों को 1.5 लाख रुपये (जो बाद में दोषी पुलिसकर्मियों से वसूला जाएगा) और राज्य को 25,000 रुपये शास्ति भुगतान करने का निर्देश दिया।
10	**पश्चिम बंग खेत मजदूर समिति व अन्य बनाम पश्चिम बंगाल व अन्य (1996) 4 एससीसी 37**	• ट्रेन दुर्घटना में पीड़ितों को उपचार उपलब्ध कराने में कलकत्ता के विभिन्न सरकारी अस्पतालों के चिकित्सा अधिकारियों के उदासीन रवैये के मुद्दे पर इस मामले में प्रकाश डाला गया । • इस न्यायालय ने राज्य को देखभाल के अपने संवैधानिक दायित्वों से इनकार करने के लिए 25,000 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया।
11	**डी०के०बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 1 एससीसी 416**	• पश्चिम बंगाल में हिरासत में हिंसा की घटनाओं से जुड़ी एक जनहित याचिका में, इस न्यायालय ने किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और हिरासत में लेने के दौरान कानून प्रवर्तन एजेंसियों के लिए दिशानिर्देश जारी

		किए। • इस न्यायालय ने राज्य की कार्रवाई के खिलाफ दंडात्मक उपाय के रूप में मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति दिलाए जाने पर भी विचार किया।
12	**पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया व अन्य (1997) 3 एससीसी 433**	• कथित तौर पर आतंकवादी होने वाले दो व्यक्तियों को पुलिस ने झूठी मुठभेड़ में मार डाला। • इस न्यायालय ने मणिपुर राज्य को निर्देश दिया कि मृतक के परिवार को 1 लाख रुपये और कई वर्षों तक मामले की पैरवी करने के लिए पीयूसीएल को 10,000 रुपये का भुगतान किया जाए।
13.	**दिल्ली नगर निगम, दिल्ली बनाम उपहार त्रासदी पीड़ित एसोसिएशन एवं अन्य (2011)14 एससीसी 481**	• एक सिनेमा हॉल में आग लगने से 100 से अधिक लोग घायल हो गए और 59 सिनेमा दर्शकों की मौत हो गई। • आग दिल्ली विद्युत बोर्ड (डीवीबी) द्वारा लगाए गए ट्रांसफार्मर के कारण लगी थी। • उच्च न्यायालय ने नगर निगम, दिल्ली

		पुलिस और डीवीबी को दुर्घटना के लिए जिम्मेदार पाया था। • इस न्यायालय ने केवल डीवीबी और थियेटर मालिक को 15:85 के अनुपात में मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी माना। • ऐसा करते समय, इस न्यायालय ने संवैधानिक अपकृत्य की अवधारणा पर व्यापक रूप से विचार किया।

153. ऊपर दी गई तालिका में सूचीबद्ध निर्णयों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि जब भी किसी सार्वजनिक पदाधिकारी, जिसमें मंत्री भी शामिल है, की ओर से किसी चूक और कमीशन के कारण नुकसान या हानि हुई हो तब यह न्यायालय और उच्च न्यायालय संवैधानिक अपकृत्य का आह्वान करने में सुसंगत रहे हैं। लेकिन जैसा कि विद्वान अटॉर्नी जनरल ने अपने नोट में सही ढंग से बताया है, यह मामला सर्वोपरि रूप से एक उचित कानूनी ढांचे का हकदार है, ताकि मामले को खुला या अस्पष्ट छोड़े बिना सिद्धांतों और प्रक्रिया को सुसंगत रूप से निर्धारित किया जा सके। वास्तव में, विधि आयोग की पहली रिपोर्ट ने 1956 में एक मसौदा विधेयक प्रस्तुत किया था। इस न्यायालय ने 1965 में **कस्तूरी लाल** में एक विधायी उपाय की सिफारिश की और 1967

में *सरकार (अपकृत्य में दायित्व) विधेयक* नामक एक विधेयक पेश किया गया। लेकिन पिछले 55 वर्षों में कुछ नहीं हुआ। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय आंखें मूंद नहीं सकते, बल्कि उन्हें उचित कानूनी ढांचे के अभाव के आधार पर चोट या हानि से पीड़ित व्यक्तियों को ठुकराए बिना, उन्हें प्रदान किए जाने वाले उपाय को कल्पनाशील रूप से तैयार करना पड़ सकता है।

154. अतः प्रश्न संख्या 5 का हमारा उत्तर इस प्रकार है:

> **"किसी मंत्री द्वारा दिया गया मात्र एक बयान, जो संविधान के भाग III के तहत नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है और संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य नहीं हो सकता है। लेकिन अगर ऐसे बयान के परिणामस्वरूप, अधिकारियों द्वारा कोई लोप या कार्य किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है, तो यह संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य हो सकता है।"**

<u>उपसंहार</u>

155. संक्षेप में, पीठ को भेजे गए पांच प्रश्नों के हमारे उत्तर इस प्रकार हैं:

प्रश्न		उत्तर
1	क्या अनुच्छेद 19 (2) में निर्दिष्ट आधार जिनके संबंध में कानून द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार	"अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए अनुच्छेद 19 (2) में दिए गए आधार व्यापक हैं। अन्य मौलिक

	पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, पूर्ण हैं, या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं ?	अधिकारों को लागू करने की आड़ में या एक दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्धी दावा करने वाले दो मौलिक अधिकारों की आड़ में, अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले अतिरिक्त प्रतिबंध किसी भी व्यक्ति पर अनुच्छेद 19 (1) (ए) द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर नहीं लगाए जा सकते हैं।"
2	क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा सकता है ?	अनुच्छेद 19/21 के तहत एक मौलिक अधिकार को राज्य या उसके तंत्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है ।
3	क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो?	जब भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए खतरा उत्पन्न हो यहां तक कि गैर राज्य तंत्र के माध्यम से भी तब भी राज्य का कर्तव्य है कि वह अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करे ।
4	क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया कोई बयान, जो राज्य के किसी भी मामले से संबंधित हो या राज्य की सुरक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?	किसी मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य, भले ही वह राज्य के किसी मामले से संबंधित हो या सरकार की रक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है?
5	क्या किसी मंत्री का एक बयान, जो संविधान के भाग तीन के तहत एक	किसी मंत्री द्वारा दिया गया मात्र एक बयान, जो संविधान के भाग III के तहत

	नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है और क्या यह 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्रवाई योग्य है?	नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है और संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य नहीं हो सकता है। लेकिन अगर ऐसे बयान के परिणामस्वरूप, अधिकारियों द्वारा कोई लोप या कार्य किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है, तो यह संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य हो सकता है।

156. अब जबकि हमने प्रश्नों के उत्तर दे दिए हैं, रिट याचिका और विशेष अनुमति याचिका को भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश से आदेश प्राप्त करने के बाद उचित पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया जाता है।

न्यायमूर्ति श्री नागरथ्ना

स०क्र०	विवरण	पृष्ठ क्रमांक (एड.नोट : पृष्ठ संख्या मूल निर्णय के अनुसार है)
1	परिचय	2-10
2	प्रस्तुतियां	10-17
3	प्रस्तावना	17-18
4	अनुच्देद 19(1)(ए) और 19(2) - एक अवलोकन	18-26
5	वेस्ले होफेल्ड का अधिकारों के स्वरूप का विश्लेषण	26-30
6	अनुच्छेद 19 (1)(ए) की विषय-वस्तु	30-40
7	'घृणास्पद भाषण'	40-54
8	भारतीय संविधान के तहत मानव गरिमा एक मूल्य के साथ-साथ एक अधिकार भी है	54-63
9	'समानता' और 'बंधुत्व' के प्रस्तावनागत लक्ष्य	63-72
10	पुनः: प्रश्न संख्या 2	72-101
11	पुनः: प्रश्न संख्या 3	101-106
12	पुनः: प्रश्न संख्या 4	106-107
13	पुनः: प्रश्न संख्या 5	107-120
14	निष्कर्ष	120-121

1 मुझे माननीय न्यायाधीश वी. रामसुब्रमण्यम द्वारा प्रस्तुत विद्वत्तापूर्ण निर्णय को पढ़ने का लाभ मिला है। यद्यपि मैं संविधान पीठ को भेजे गए कुछ प्रश्नों पर माननीय न्यायाधीश द्वारा दिए गए तर्क और निष्कर्ष से सहमत हूं, फिर भी मैं अपनी अलग राय के माध्यम से कुछ मुद्दों पर एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहता हूं।

2. भारतीय दार्शनिकों में से एक, बसवेश्वर के शब्दों में:

"नुदिदारे मुत्तिना हरादंतीराबेकु,
नुदिदारे मानिक्यदा दीप्तियांतिराबेकु,
नुदिदारे स्पतिकादा शलाकेयांतिराबेकु,
नुदिदारे लिंगमेची अहुदेनबेकु।"

किसी को तभी बोलना चाहिए जब बोले गए शब्द धागे में पिरोए गए मोतियों की तरह शुद्ध हों;
माणिक्य की चमक के समान हों;
जैसे स्फटिक की चमक नीले रंग को चीर देती है;
और ऐसी वाणी सुनकर, भगवान, अवश्य कहते हैं, "हाँ, हाँ, यह सत्य है!"

परिचय:

3. इन मामलों में याचिकाकर्ताओं की चिंता संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग है , विशेष रूप से, राजनीतिक पदों पर बैठे लोगों, लोक सेवकों, सार्वजनिक पदाधिकारियों या भारतीय राजनीति और समाज में जिम्मेदार पदों पर बैठे अन्य लोगों द्वारा। याचिकाकर्ताओं की चिंता इस बात को लेकर है कि किस तरह से सार्वजनिक पदाधिकारी समाज के कुछ वर्गों, देशवासियों और कुछ व्यक्तियों जैसे महिलाओं के खिलाफ अपमानजनक और अपमानजनक टिप्पणी करते हैं, जो अपराध के शिकार हो सकते हैं। इस तरह का अविवेकपूर्ण भाषण हाल के दिनों में चिंता का विषय है क्योंकि इसे आहत करने वाला और अपमानजनक माना जाता है। इन मामलों में उठाए गए सवाल कानून में उपलब्ध उपायों के बारे में हैं ताकि विशेष रूप से सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा दिए गए इस तरह के आहत करने वाले या अपमानजनक भाषण का मुकाबला किया जा सके।

4. वर्तमान याचिकाओं को जन्म देने वाले तथ्यों को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

4.1 रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 113/2016, उत्तर प्रदेश के एक पूर्व कैबिनेट मंत्री द्वारा 29 जुलाई, 2016 को नोएडा-शाहजहांपुर राष्ट्रीय राजमार्ग (एनएच 91) में एक महिला और उसकी नाबालिग बेटी के साथ हुए कथित सामूहिक बलात्कार के संदर्भ में की गई अप्रिय सार्वजनिक टिप्पणियों से संबंधित है। कुछ समाचार लेखों पर भरोसा करते हुए, रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 113/2016 में याचिकाकर्ता ने इस अदालत के संज्ञान

में उक्त सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा की गई टिप्पणी लाई है, जिसमें कथित घटना को *"विपक्षी साजिश"* कहा गया है, जिसे केवल इसलिए फैलाया गया क्योंकि *"चुनाव निकट थे, और हताश विपक्ष, सरकार को बदनाम करने के लिए किसी भी स्तर तक गिर सकता है।"*

4.2 ऐसे बयानों के संबंध में, प्रथम सूचना रिपोर्ट, एफआईआर संख्या 0838/2016, उक्त मंत्री के खिलाफ 30 जुलाई, 2016 को कोतवाली पुलिस स्टेशन, देहात, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद सुविधा के लिए 'भा०द०सं०' के रूप में संदर्भित) की धाराओं 395, 397, 376-डी, 342 के तहत अपराधों के लिए दर्ज किया गया था। उपरोक्त पृष्ठभूमि में, रिट याचिका प्रस्तुत की गई है, जिसमें निम्नलिखित प्रार्थना की गई है:

"प्रार्थना:-

> उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण के तहत, अत्यंत विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय न्याय के हित में, कृपया निम्नांकित आदेश पारित करे:-

> क. प्रतिवादियों के विरुद्ध परमादेश रिट और/या कोई अन्य उपयुक्त रिट और/या निर्देश जारी करना, जिसमें उन्हें याचिकाकर्ता के वैध जीवन जीने के मौलिक अधिकारों का

उल्लंघन रोकने का निर्देश दिया गया हो; इसके अतिरिक्त प्रतिवादियों को अन्य उपयुक्त निर्देश भी दिए जाएं।

ख. राज्य को याचिकाकर्ता, अन्य पीड़ितों और परिवार के सदस्यों को कानून के अनुसार उचित मुआवजा देने का निर्देश दें।

ग. न्याय के हित में उच्चतम डिग्री प्राप्त करने तक सम्मानजनक और उचित निःशुल्क और सुरक्षित शिक्षा व्यवस्था प्रदान करने और सुनिश्चित करने के लिए राज्य को निर्देश दें।

घ. राज्य को याचिकाकर्ता, अन्य पीड़ितों और परिवार के सदस्यों को पर्याप्त जीवन सुरक्षा और उचित नौकरी सुरक्षा प्रदान करने और सुनिश्चित करने का निर्देश दें।

ङ. न्याय के हित में जांच एजेंसी से स्थिति रिपोर्ट आहुत की जाए।

च. धारा 154 द०प्र०सं० 395, 397, 376- डी और पोक्सो अधिनियम 342 के तहत एफआईआर संख्या 0838/2016 की जांच की निगरानी करें।

छ. न्याय के हित में एफआईआर संख्या 0838/2016 की सुनवाई बुलंदशहर से दिल्ली स्थानांतरित की जाए।

ज. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाले बयान देने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के शहरी विकास मंत्री श्री आजम खान के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने के लिए उत्तरवादी संख्या 1 को निर्देश दिए जाएं।

झ वर्तमान मामले में कानून के निर्देशों की अवहेलना करने के लिए दोषी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ मामला दर्ज किए जाने हेतु उत्तरवादी संख्या 1 को एफआईआर संख्या 0838/2016 दर्ज करने का निर्देश जारी किया जाए।

ञ. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत याचिकाकर्ताओं के पक्ष में और उत्तरवादीगण के विरूद्ध कोई अन्य या उचित आदेश पारित किया जाए, जैसा कि यह माननीय न्यायालय उचित समझे।"

4.4. डायरी संख्या 34629/2017 वाली विशेष अनुमति याचिका, 31 मई, 2017 को केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम द्वारा रिट याचिका (सी) संख्या 15869 और रिट याचिका (सी) संख्या 14712/2017 को खारिज करने के साझा आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है। उक्त रिट याचिकाएं उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थीं, जिसमें केरल

सरकार के तत्कालीन बिजली मंत्री द्वारा केरल के एक पॉलिटेक्निक कॉलेज की महिला प्रिंसिपल, एक छात्र की मां, जिसने कथित तौर पर कॉलेज अधिकारियों द्वारा कथित उत्पीड़न के कारण आत्महत्या कर ली थी और एक चाय बागान की महिला मजदूरों के खिलाफ अलग-अलग अवसरों पर अपमानजनक बयान दिए जाने के संबंध में केरल सरकार की ओर से निष्क्रियता का आरोप लगाया गया था। उक्त रिट याचिका के खारिज होने से व्यथित होकर, डायरी संख्या 34629/2017 वाली एसएलपी इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई, जिसे रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 113/2016 के साथ संलग्न करने का निर्देश दिया गया।

5. इस संविधान पीठ के विचारार्थ उठाए गए प्रश्न निम्नानुसार हैं:

"1) क्या अनुच्छेद 19 (2) में निर्दिष्ट आधार जिनके संबंध में कानून द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, पूर्ण हैं, या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं?

2) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा सकता है ?

3) क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो ?

4) क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया कोई बयान, जो राज्य के किसी भी मामले से संबंधित हो या राज्य की सुरक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?

5) क्या किसी मंत्री का एक बयान, जो संविधान के भाग तीन के तहत एक नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है और क्या यह 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्रवाई योग्य है?

6. माननीय न्यायमूर्ति रामसुब्रमण्यम ने अपने द्वारा प्रस्तावित विद्वत्तापूर्ण निर्णय में इस संविधान पीठ को भेजे गए प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। ऐसे प्रत्येक प्रश्न पर मेरे

विचार, माननीय न्यायमूर्ति के विचारों से भिन्न, नीचे सारणीबद्ध रूप में व्यक्त किए गए हैं, ताकि संदर्भ में आसानी हो।

प्रश्न	माननीय न्यायमूर्ति के विचार	मेरे विचार
अन्य मौलिक अधिकार का उपयोग करके अनुच्छेद 19(2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार लगाया जाना चाहिए?	मौलिक अधिकार एक दूसरे के खिलाफ प्रतिस्पर्धी दावा करते हुए, अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए गए अतिरिक्त प्रतिबंध, अनुच्छेद 19 (1) (ए) द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर नहीं लगाए जा सकते हैं।	
2/ क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा	अनुच्छेद 19/21 के तहत एक मौलिक अधिकार को राज्य या उसके तंत्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध भी लागू किया जा सकता है ।	सामान्य कानून के दायरे में अधिकार, जो अनुच्छेद 19/21 के तहत मौलिक अधिकारों के समान हो सकते हैं, समानांतर रूप से काम करते हैं; हालांकि, अनुच्छेद 19 और

सकता है ?		21 के तहत मौलिक अधिकार, उन अधिकारों को छोड़कर नहीं हैं जिन्हें वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त है। इसलिए, अनुच्छेद 19/21 के तहत एक मौलिक अधिकार राज्य या इसके यंत्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता है। हालांकि, वे सामान्य कानून उपचार प्राप्त करने का आधार हो सकते हैं। किंतु संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका संवैधानिक

		न्यायालय के समक्ष अर्थात उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के माध्यम से या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 सहपठित अनुच्छेद 142 के साथ लाई जा सकती है। जहां तक गैर - राज्य संस्थाओं या उन संस्थाओं का संबंध है जो संविधान के अनुच्छेद 12 के दायरे में नहीं आती हैं, उनके खिलाफ मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए एक रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाएगा। यह मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि ऐसे मामलों में तथ्य के विवादित प्रश्न

		शामिल होंगे।
3/ क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो ?	जब भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए खतरा उत्पन्न हो यहां तक कि गैर राज्य तंत्र के माध्यम से भी तब भी राज्य का कर्तव्य है कि वह अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करे ।	अनुच्छेद 21 के तहत राज्य पर डाला गया कर्तव्य एक नकारात्मक कर्तव्य है कि किसी व्यक्ति को कानून के अनुसार छोड़कर उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित न किया जाए। हालांकि राज्य का संवैधानिक और वैधानिक कानून के तहत उस पर डाले गए दायित्वों को पूरा करने का एक सकारात्मक कर्तव्य है। ऐसे दायित्वों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है जहां एक निजी पार्टी के कार्य किसी

		अन्य व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए एक नागरिक के अधिकारों की रक्षा के लिए संवैधानिक और वैधानिक कानून के तहत राज्य को सौंपे गए कर्तव्यों को पूरा करने में विफलता, एक नागरिक को उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव डाल सकती है। जब कोई नागरिक अपने जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित होता है, तो राज्य ने अनुच्छेद 21 के तहत उस पर डाले गए

		नकारात्मक कर्तव्य का उल्लंघन किया होगा ।
4/ क्या किसी मंत्री द्वारा दिया गया कोई बयान, जो राज्य के किसी भी मामले से संबंधित हो या राज्य की सुरक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?	किसी मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य, भले ही वह राज्य के किसी मामले से संबंधित हो या सरकार की रक्षा के लिए हो, के लिए सरकार को विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है?	एक मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य यदि राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा के लिए, हो तो जहां तक इस तरह का बयान सरकार के दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है तो वह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को लागू करके सरकार को परोक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है । यदि ऐसा कथन सरकार के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है, तो मंत्री उसके लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार है

5/ क्या किसी मंत्री का एक बयान, जो संविधान के भाग तीन के तहत एक नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है और क्या यह 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्रवाई योग्य है?	किसी मंत्री द्वारा दिया गया मात्र एक बयान, जो संविधान के भाग III के तहत नागरिक के अधिकारों के साथ असंगत है, संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है और संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य नहीं हो सकता है। लेकिन अगर ऐसे बयान के परिणामस्वरूप, अधिकारियों द्वारा कोई लोप या कार्य किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती	उन कृत्यों या चूक को परिभाषित करने के लिए एक उचित कानूनी ढांचा आवश्यक है जो संवैधानिक अपकृत्यों, और न्यायिक पूर्व निर्णय के आधार पर उसी तरीके से निराकृत या निवारण किया जाएगा। उन सभी मामलों को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में मानना समझदारी नहीं है जहां एक सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा दिया गया एक बयान जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है। यदि उनका बयान सरकार के विचारों के साथ असंगत

	है, तो यह संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्रवाई योग्य हो सकता है।	है, तो सार्वजनिक पदाधिकारियों के खिलाफ व्यक्तिगत रूप से कार्यवाही की जा सकती है। यदि, हालांकि, इस तरह के विचार सरकार के विचारों के अनुरूप हैं, या सरकार द्वारा समर्थित हैं, तो सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत के आधार पर राज्य को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और न्यायालय के समक्ष उचित उपाय मांगे जा सकते हैं।

प्रस्तुतियां :

7. हमने याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कालीश्वरम राज और उत्तरवादीगण की ओर से विद्वान अटॉर्नी जनरल और न्यायमित्र वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अपराजिता सिंह को सुना है।

याचिकाकर्ताओं की ओर से दलीलें:

8. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री कालीश्वरम राज के तर्क निम्नानुसार हैं:

8.1. मंत्रियों के वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संवैधानिक अधिकार को कायम रखते हुए, मंत्रियों और सार्वजनिक अधिकारियों के लिए एक स्वैच्छिक आचार संहिता तैयार करने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे उनकी राजनीतिक गतिविधियों में बेहतर जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके और राज्य के तंत्र का उपयोग करके सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दुरुपयोग पर भी अंकुश लग सके।

8.2. जबकि जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करने का राज्य का कर्तव्य मुख्य रूप से अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार के अंतर्गत आता है, लेकिन हर उस मामले में राज्य को जिम्मेदारी से बांधना मुश्किल है, जहां किसी सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा दिया गया भाषण किसी अन्य व्यक्ति की गरिमा पर आघात करता है। राज्य को जिम्मेदारी सौंपने के ऐसे

प्रावधान के अभाव में, ऐसे भाषण का हर मामला न्यायपालिका के माध्यम से कार्रवाई योग्य और सुधार योग्य नहीं हो सकता है। अनुच्छेद 21 के अनुरूप कोई भी कर्तव्य व्यक्तिगत मंत्रियों पर नहीं लगाया गया है और न ही किसी सरकारी मशीनरी पर ऐसा कर्तव्य लगाया गया है कि वह व्यक्तिगत मंत्रियों के आचरण को विनियमित करे, जिसके लिए न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। इसलिए, भले ही सत्ता में बैठे लोगों द्वारा दिए गए बयानों के दौरान सार्वजनिक कर्तव्य का कोई कार्रवाई योग्य उल्लंघन नहीं हुआ है, लेकिन यह बदले में सरकार के साथ-साथ शासित लोगों के बेहतर हित में स्वैच्छिक आचार संहिता रखने की वांछनीयता को दर्शाता है।

8.3. संविधान के अनुच्छेद 75(3) पर भरोसा करते हुए कहा गया कि मंत्रियों की विधायिका के प्रति सामूहिक जिम्मेदारी है और इस प्रकार, मंत्रियों के भाषण और कार्यों को स्व-विनियमित करने के लिए एक आचार संहिता संवैधानिक रूप से न्यायोचित है। किसी मंत्री को मंत्रिमंडल और विधानमंडल के प्रति अपनी सामूहिक जिम्मेदारी का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, इसलिए उन्नत लोकतंत्रों की तरह एक ठोस आचार संहिता का होना उचित है।

8.4. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अंत में दलील दी कि वर्तमान मामले में अनुच्छेद 19 के साथ किसी अन्य अधिकार के टकराव का सवाल

शामिल नहीं है। संक्षेप में, यहाँ सवाल यह है कि क्या संविधान के तहत न्यायोचित कोई प्रतिबंध मंत्रियों और सार्वजनिक पदाधिकारियों पर उनके भाषण को विनियमित करने के लिए लगाया जा सकता है।

उत्तरवादी-भारत संघ की ओर से तर्क:

9. उत्तरवादी-भारत संघ की ओर से उपस्थित भारत के विद्वान अटॉर्नी जनरल, श्री आर. वेंकटरमणी और भारत के विद्वान सॉलिसिटर जनरल, श्री तुषार मेहता के प्रस्तुतिकरणों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

9.1. प्रारंभतः विद्वान अटॉर्नी जनरल श्री आर. वेंकटरमणी ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया कि अनुच्छेद 19(2) के तहत अभिव्यक्त स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों को संपूर्ण माना जाना चाहिए और इस प्रकार, न्यायालय अनुच्छेद 19(2) के तहत सूचीबद्ध नहीं किए गए आधारों पर प्रतिबंध लगाने के लिए अनुच्छेद 21 जैसे किसी अन्य मौलिक अधिकार का हवाला नहीं दे सकता । इसके अलावा, संवैधानिक सिद्धांत के मामले में, किसी भी मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध लगाने के मानदंडों या मानदंडों में कोई भी जोड़, परिवर्तन या बदलाव विधायी प्रक्रिया के माध्यम से आना चाहिए। मौलिक अधिकारों का संतुलन, या तो अतिछादन से बचने के लिए या पारस्परिक आनंद सुनिश्चित करने के लिए, एक अधिकार को दूसरे अधिकार पर प्रतिबंध के रूप में मानने से अलग है।

9.2. इसके बाद यह दलील दी गई कि भारत का संविधान राज्य या उसके साधनों के विरुद्ध मौलिक अधिकारों के दावों की योजना निर्धारित करता है और ऐसी योजना राज्य या उसके साधनों के अलावा अन्य व्यक्तियों द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन या अतिक्रमण को भी संबोधित करती है। इस प्रकार, ऐसे विषयों या मामलों को जोड़ने या सम्मिलित करने का कोई भी प्रस्ताव जिसके संबंध में राज्य के अलावा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध दावे किए जा सकते हैं, संवैधानिक परिवर्तन के बराबर होगा। ऐसे संवैधानिक सिद्धांतों के किसी भी विस्तार का परिणाम संवैधानिक मुकदमेबाजी के लिए बाढ़ के द्वार खोलना होगा।

9.3. यह भी तर्क दिया गया कि ऐसे नागरिक के लिए पर्याप्त संवैधानिक और कानूनी उपचार उपलब्ध हैं, जिसकी स्वतंत्रता को किसी व्यक्ति द्वारा खतरा हो तथा संवैधानिक और कानूनी उपचारों से परे, अनुच्छेद 21 के तहत नागरिक के अधिकार की सकारात्मक रूप से रक्षा करने के लिए कोई अन्य अतिरिक्त कर्तव्य नहीं हो सकता है।

9.4. विद्वान अटॉर्नी जनरल ने आग्रह किया कि मंत्रियों के ऐसे दुराचार, जिनका सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन से कोई लेना-देना नहीं है और जो राज्य के मामलों से संबंधित नहीं हैं, उन्हें व्यक्तिगत उल्लंघन और व्यक्तिगत गलतियों के रूप में माना जाना चाहिए। इस प्रकार, राज्य इसके लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता। सरकार में मंत्री जैसे लोक सेवक

का आचरण, यदि सार्वजनिक कर्तव्य या कार्यालय के कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित है, तो कानून की जांच के अधीन है। हालांकि, मंत्री द्वारा दिए गए बयानों सहित ऐसे दुराचार को सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांतों से नहीं जोड़ा जा सकता है।

विद्वान न्यायमित्र, सुश्री अपराजिता सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता के प्रस्तुतिकरण:

10. विद्वान न्यायमित्र सुश्री अपराजिता सिंह के तर्कों का सारांश निम्नानुसार है:

10.1. प्रारंभ में उन्होंने कहा कि अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद 19(2) के तहत स्पष्ट रूप से परिभाषित प्रतिबंधों के अधीन है । इसलिए, अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत अधिकार को सीमित करने की मांग करने वाले किसी भी कानून को अनुच्छेद 19(2) के तहत प्रदान की गई सीमा के अंतर्गत आना होगा ।

10.2. राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी सार्वजनिक पदाधिकारी के वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के तहत निष्पक्ष जांच के नागरिक के अधिकार के साथ संतुलित किया जाना चाहिए और यदि अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत किसी मंत्री के अधिकार का प्रयोग अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकार का

उल्लंघन करता है तो नागरिक के अधिकार की रक्षा के लिए इसे कमतर करके देखा जाना चाहिए। इस प्रकार, कोई मंत्री नागरिकों के अनुच्छेद 21 के अधिकारों का उल्लंघन करने के लिए अनुच्छेद 19(1)(ए) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता।

10.3. सुश्री अपराजिता सिंह ने आगे तर्क दिया कि एक मंत्री, राज्य का पदाधिकारी होने के नाते अपनी आधिकारिक क्षमता में कार्य करते समय राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, मंत्री द्वारा अपनी आधिकारिक क्षमता में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कोई भी उल्लंघन, राज्य के कारण होगा। इस प्रकार, यह सुझाव देना बेतुका होगा कि जबकि राज्य एक निजी नागरिक को अन्य नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने से रोकने के लिए बाध्य है, उसका अपना मंत्री दंड से मुक्त होकर ऐसा कर सकता है। हालाँकि, विद्वान न्यायमित्र ने यह कहते हुए इस तरह की दलील को योग्य बनाया कि उल्लंघन के तथ्य को किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर स्थापित करने की आवश्यकता होगी और इसलिए कानून को मामले दर मामले विकसित करना होगा। इसमें निम्नलिखित प्रश्नों की विस्तृत जांच शामिल होगी: i) क्या मंत्री द्वारा दिया गया वक्तव्य उनकी व्यक्तिगत या आधिकारिक हैसियत से दिया गया था; ii) क्या वक्तव्य सार्वजनिक या

निजी मुद्दे पर दिया गया था; iii) क्या वक्तव्य सार्वजनिक या निजी मंच पर दिया गया था।

10.4. यह प्रस्तुत किया गया कि एक मंत्री संविधान के अनुच्छेद 75(4) और 164(3) के तहत भारत के संविधान के प्रति सच्ची आस्था और निष्ठा रखने के लिए व्यक्तिगत रूप से पद की शपथ से बंधा हुआ है । मंत्रियों (संघ और राज्यों दोनों के लिए) के लिए आचार संहिता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह संहिता संविधान के प्रावधानों, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुपालन के अतिरिक्त है । इसलिए, एक संवैधानिक पदाधिकारी संवैधानिक दायित्वों के अनुरूप कार्य करने के लिए बाध्य है।

10.5. अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि राज्य अपने पदाधिकारियों के माध्यम से कार्य करता है। इसलिए, एक मंत्री का आधिकारिक कार्य जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, मंत्री के उक्त कार्य को संवैधानिक अपकृत्य मानकर राज्य को उत्तरदायी बनाता है। हालाँकि, अपने कर्मचारियों के अपकृत्यों के लिए राज्य की संप्रभु प्रतिरक्षा के सिद्धांत को मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के मामले में लागू नहीं माना गया है।

इस संविधान पीठ को भेजे गए प्रश्न संख्या 1 इस प्रकार है:

> "क्या अनुच्छेद 19 (2) में निर्दिष्ट आधार जिनके संबंध में कानून द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, पूर्ण हैं, या अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करके अनुच्छेद 19 (2) में नहीं पाए जाने वाले आधारों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं?"

प्रस्तावना:

11. मेरे विचार में, ये मामले भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) की विषय-वस्तु के विश्लेषण की मांग करते हैं, जो भारत के सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। प्रासंगिक संवैधानिक प्रावधानों का विश्लेषण करने से पहले, इस विचार के साथ चर्चा की शुरुआत करना उचित हो सकता है कि बोलने की स्वतंत्रता केवल किसी राष्ट्र के कानूनों पर निर्भर नहीं है। सामाजिक संबंधों की बाध्यता और व्यापक रूप से लागू किए जाने वाले अनुरूपता के अनौपचारिक दबाव, समाज में स्वीकार्य भाषण की विषय-वस्तु और सीमाओं को काफी हद तक निर्धारित करते हैं। हालाँकि, यह कानून ही हैं, जो अपने स्वयं के अनूठे तरीकों से सामाजिक प्रतिबंधों को सुदृढ़ करते हैं। इसलिए, संविधान, जो देश का मौलिक कानून है, साथ ही अन्य कानून जो संविधान की कसौटी पर मापे जाते हैं, की व्याख्या, अन्य बातों के

साथ-साथ, शांतिपूर्ण समाज में स्वतंत्र भाषण की विषय-वस्तु और स्वीकार्य सीमाओं को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए।

यह देखना ज़रूरी है कि अभिव्यक्ति की आज़ादी हमेशा से ही कुछ सामाजिक-राजनीतिक आदर्शों से जुड़ी रही है जो लोकतंत्र की नींव: व्यक्तिगत सम्मान और समानता के लिए सम्मान; भाईचारा; सहिष्णुता के आदर्श; सांस्कृतिक और धार्मिक संवेदनशीलता स्थापित करते हैं। इनमें से कई आदर्श हमारे संविधान के पाठ में लिखे गए हैं और संविधान की प्रस्तावना के ज़रिए इसकी संरचना में व्याप्त हैं। ये आदर्श स्वतंत्र भाषण पर चर्चा के दार्शनिक आधार बनाते हैं और इसलिए, इनका कोई भी विश्लेषण इन आदर्शों के साथ संगत होना चाहिए। इसी पृष्ठभूमि में यह जांचना ज़रूरी है कि क्या स्वतंत्र भाषण की स्वीकार्य सीमा के संबंध में सार्वजनिक पदाधिकारियों पर अतिरिक्त जवाबदेही और इस प्रकार, कानूनी दायित्व डाला जा सकता है। इसके अलावा, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रयोग पर नियंत्रण और उस पर प्रतिबंधों के बीच अंतर की जांच करना भी आवश्यक है, और उस पृष्ठभूमि में प्रत्येक नागरिक द्वारा, चाहे वह सार्वजनिक पदाधिकारी हो या न हो, हमारे जैसे देश में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपने अधिकार का प्रयोग करने में आत्म-संयम की डिग्री का प्रयोग करने की आवश्यकता है, जो इसकी विविधता और बहुलवाद के कारण इतना अनूठा है।

अनुच्छेद 19(1)(ए) और अनुच्छेद 19(2): एक अवलोकन

12. इस स्तर पर, अनुच्छेद 19(1)(ए) और अनुच्छेद 19(2) पर विस्तार से चर्चा करना उपयोगी होगा:

12.1. संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) से (एफ) भारत के नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकारों की गारंटी देते हैं। हालाँकि, ये मौलिक अधिकार अनुच्छेद 19(2) से (6) में उल्लिखित उचित प्रतिबंधों के अधीन हैं, जिन्हें राज्य द्वारा लगाया जा सकता है। ये मौलिक अधिकार मनुष्य के अविभाज्य अधिकारों या मूल मानवाधिकारों की प्रकृति के हैं जो एक स्वतंत्र देश के सभी नागरिकों में निहित हैं। फिर भी, ये अधिकार अप्रतिबंधित या निरपेक्ष नहीं हैं, और प्रतिबंधों द्वारा विनियमित होते हैं, जिन्हें राज्य द्वारा लगाया जा सकता है, जिन्हें उचित होना चाहिए। मौलिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध या उचित प्रतिबंध निर्धारित करने का उद्देश्य समाज में अराजकता या अव्यवस्था से बचना है। अतः हमारे संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों की गणना करते समय अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) में युक्तिसंगत प्रतिबन्ध भी निर्धारित किये हैं तथा ऐसे प्रतिबन्धों की कठोर सीमाओं के भीतर बनाए गए कानून संवैधानिक रूप से स्वीकार्य हैं।

12.2. चूंकि ये मामले वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित हैं, इसलिए संविधान के अनुच्छेद 19(1) में अन्य मौलिक अधिकारों की

प्रकृति का विश्लेषण करना अनावश्यक है। संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) और 19(2) इस प्रकार हैं:

> **"19. वाक्-स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण-**
>
> (1) सभी नागरिकों को यह अधिकार होगा-
>
> (क) वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का;
>
> xxx xxx xxx
>
> (2) खंड (क) के उपखंड (क) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, दिवेदशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय - अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्ब्धन जहां तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बंधन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी ।"

12.3 संविधान के अनुच्छेद 19(1)(a) के तहत परिकल्पित वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है स्वतंत्र भाषण और विभिन्न साधनों के माध्यम से विचार व्यक्त करने का अधिकार जैसे मौखिक रूप से,

मुद्रण या इलेक्ट्रॉनिक संचार के माध्यम से, चित्रलेखों, लेखों, ग्राफिक्स या किसी अन्य तरीके से जो मन मस्तिष्क् से समझा जा सकता है। अधिकार में प्रेस की स्वतंत्रता शामिल है। इस अधिकार की सामग्री में प्रकाशन और प्रसार के माध्यम से विचारों का प्रचार, सूचना मांगने और विचारों को प्राप्त करने या प्रदान करने का अधिकार भी शामिल है। संक्षेप में, स्वतंत्र भाषण के अधिकार में हर प्रकार का अधिकार शामिल होगा जो स्वतंत्र भाषण के दायरे में आएगा । इसलिए, अनुच्छेद 19(1)(ए) बहुत व्यापक है, जिसके अनुसार सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। उक्त अधिकार को केवल अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित उचित प्रतिबंधों द्वारा सीमित किया जा सकता है , जिन्हें राज्य द्वारा कानून के अधिकार के तहत लगाया जा सकता है, किंतु किसी कानून की अनुपस्थिति में कार्यकारी शक्ति के प्रयोग द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, स्वतंत्र भाषण के अधिकार पर प्रतिबंधों की प्रकृति उचित होनी चाहिए, और भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के हित में या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या किसी अपराध के लिए उकसाने के संबंध में होनी चाहिए। (अनुच्छेद 19(2))।

12.4. हमारे जैसे देश के लिए जो एक संसदीय लोकतंत्र है, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक आवश्यक अधिकार है और साथ ही न केवल एक स्वस्थ लोकतंत्र सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी है कि नागरिकों को शासन के बारे में अच्छी तरह से जानकारी और शिक्षा दी जा सके। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या दृश्य-श्रव्य रूप सहित विभिन्न मीडिया के माध्यम से सूचना का प्रसार यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में जानकारी हो, लोकतंत्र में उन्हें किस प्रकार आचरण करना चाहिए, तथा सरकार की नीतियों और कार्यों पर बहस को सक्षम बनाया जाए और अंततः समतावादी तरीके से भारतीय समाज का विकास किया जाए।

12.5. संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की उत्पत्ति संविधान की प्रस्तावना में हुई है, जो अन्य बातों के साथ-साथ विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास की स्वतंत्रता की बात करती है। चूँकि, भारत एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य है और हम लोकतंत्र की संसदीय प्रणाली का पालन करते हैं, इसलिए विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमारे संवैधानिक ढांचे के तहत एक महत्वपूर्ण स्वतंत्रता और अधिकार है।

12.6. यह न्यायालय संविधान के लागू होने के बाद से ही असंख्य निर्णयों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को उत्साहपूर्वक कायम रखता रहा है, जिनमें से कुछ का उल्लेख किया जा सकता है।

i) रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1950 एससी 124, 1950 एससीसी 436, ("रोमेश थापर") में इस बात पर प्रकाश डालते हुए कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सभी लोकतांत्रिक संगठनों की नींव है, यह माना कि उक्त स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता का अधिकार भी शामिल होगा। इस निर्णय में इस बात पर प्रकाश डाला गया कि राय और विचारों का मुक्त प्रवाह अच्छी तरह से सूचित नागरिकों के सामूहिक जीवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है जो प्रभावी शासन के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

ii) एस. खुशबू बनाम कन्नियाम्मल , (2010) 5 एससीसी 600, ("खुशबू") में इस न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत स्वतंत्रता में सभी प्रकार के लोकप्रिय और अलोकप्रिय दोनों विचारों के प्रसार की परिकल्पना की गई है ।

iii) हाल ही में श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ, (2015) 5 एससीसी 1, ("श्रेया सिंघल") में इस न्यायालय ने जस्टिस नरीमन के माध्यम से यूएस प्रथम संशोधन और अनुच्छेद 19(1)(ए) सहपठित अनुच्छेद 19(2) में अंतर पर निम्नानुसार प्रकाश डाला:

"15. सबसे पहले यू.एस. के प्रथम संशोधन और अनुच्छेद 19(1)(ए) सहपठित अनुच्छेद 19(2) के बीच अंतर को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है। पहला महत्वपूर्ण अंतर यू.एस. के प्रथम संशोधन की निरपेक्षता है - कांग्रेस ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगी जो बोलने की स्वतंत्रता को कम करता हो। दूसरा, जबकि यू.एस. का प्रथम संशोधन "अभिव्यक्ति" के किसी संदर्भ के बिना, बोलने और प्रेस की स्वतंत्रता की बात करता है, वहीं अनुच्छेद 19(1)(ए) "प्रेस" के किसी संदर्भ के बिना बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात करता है। तीसरा, यू.एस. के संविधान के तहत, बोलने पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है, जबकि हमारे संविधान के तहत, उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। चौथा, हमारे संविधान के तहत ऐसे प्रतिबंध आठ निर्दिष्ट विषय-वस्तुओं के हित में होने चाहिए - अर्थात, बोलने की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास करने वाला कोई भी कानून केवल तभी पारित हो सकता है जब वह अनुच्छेद 19(2) में निर्धारित आठ विषयों में से किसी से निकटता से संबंधित हो ।"

यह भी देखा गया कि जहाँ तक पहले स्पष्ट अंतर का सवाल है, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने कभी भी इस घोषणा को प्रभावी नहीं किया है कि कांग्रेस, कुछ परिस्थितियों में, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कम करने वाला कोई कानून बनाएगी। जहाँ तक दूसरे स्पष्ट अंतर का सवाल है, श्रेया सिंघल के पैरा 17 को इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

> "17. जहाँ तक दूसरे स्पष्ट अंतर का सवाल है, अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने अभिव्यक्ति को बोलने की स्वतंत्रता के हिस्से के रूप में शामिल किया है और इस कोर्ट ने प्रेस को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत शामिल किया है , ताकि न्यायिक व्याख्या के मामले में, अमेरिका और भारत दोनों ही बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ-साथ प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करें। जहाँ तक संक्षेपण और उचित प्रतिबंधों का सवाल है, अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट और इस कोर्ट दोनों ने माना है कि उचित होने के लिए प्रतिबंध को संकीर्ण रूप से तैयार किया जाना चाहिए या संकीर्ण रूप से व्याख्या की जानी चाहिए ताकि केवल वही संक्षिप्त या प्रतिबंधित किया जा सके जो बिल्कुल आवश्यक हो। केवल आठ विषय-वस्तुओं की बात करें तो बहुत बड़ा अंतर है। अमेरिका में,

> यदि कोई महत्वपूर्ण सरकारी या सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनिवार्य आवश्यकता है, तो बोलने की स्वतंत्रता को सीमित करने वाला कानून पारित हो सकता है। लेकिन भारत में, ऐसा कानून आम जनता के हित में होने के आधार पर ही पारित नहीं किया जा सकता है। ऐसे कानून को अनुच्छेद 19(2) के तहत निर्धारित आठ विषय-वस्तुओं में से एक के अंतर्गत आना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है, और यह अनुच्छेद 19(2) के दायरे से बाहर है, तो भारतीय न्यायालय ऐसे कानून को रद्द कर देंगी।"

श्रेया सिंघल में, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 66-ए को चुनौती दी गई थी, जिसे अनुच्छेद 19(1)(ए) का उल्लंघन करने के कारण रद्द कर दिया गया था और इसे अस्पष्टता के आधार पर अनुच्छेद 19(2) के तहत नहीं बचाया गया था और नागरिकों, अधिकारियों और अदालतों के लिए स्वीकार्य और निषिद्ध भाषण, अभिव्यक्ति या सूचना के बीच एक स्पष्ट रेखा खींचने के लिए प्रबंधनीय मानकों और स्पष्ट मार्गदर्शन प्रदान नहीं किया गया था। जब कोई कानून सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों को उनका अर्थ समझने का अवसर दिए बिना, दुरुपयोग या दुर्व्यवहार की संभावना वाले अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग करता है, तो यह उन्हें अनिश्चितता के असीम सागर में छोड़ देता

है, तथा अधिकारियों को मनमाने ढंग से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिए व्यापक, अप्रतिबंधित शक्तियां प्रदान करता है।

12.7. हालाँकि, वर्तमान मामले वास्तव में राज्य द्वारा लगाए जा रहे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंधों से संबंधित नहीं हैं। ये मामले संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) की विषय-वस्तु से संबंधित हैं, क्योंकि याचिकाकर्ताओं द्वारा व्यक्त की जाने वाली शिकायत यह है कि क्या नागरिकों पर अन्य नागरिकों की तुलना में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई अंतर्निहित संवैधानिक प्रतिबंध हो सकता है। ये मामले राज्य द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगाए जा सकने वाले उचित प्रतिबंधों के संबंध में नहीं हैं, बल्कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की वह विषय-वस्तु क्या होगी जिसका प्रयोग किसी व्यक्तिगत नागरिक द्वारा अधिकार के रूप में नहीं किया जाना चाहिए, जो किसी भी तरह से किसी अन्य नागरिक को उपाय की तलाश करने के लिए कार्रवाई का कारण नहीं बनाएगा।

13. स्वतंत्र भाषण अधिकार की सामग्री, जैसा कि ऊपर वर्णित है, स्वतंत्र भाषण अधिकार के संरचनात्मक तत्वों या घटकों के संदर्भ में समझी जानी चाहिए। केवल तभी जब स्वतंत्र भाषण अधिकार को इस तरह समझा जाता है, तो इसकी सटीक सीमाओं और उस आधार के बारे में निष्कर्ष निकाला जा सकता है जिस पर ऐसे अधिकार को सीमित या प्रतिबंधित किया जा सकता है। ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ

फ्रीडम ऑफ स्पीच में स्टीफन ग्रैडबाम ने "फ्री स्पीच राइट की संरचना" शीर्षक से अपने निबंध में, निम्नलिखित शब्दों में फ्री स्पीच राइट के छह घटकों की चर्चा की है:

> "पहला है स्वतंत्र भाषण अधिकार का **'बल'**। इसमें शामिल है कि किस प्रकार का कानूनी अधिकार औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त है या मुद्दा है: उदाहरण के लिए, सामान्य कानून, वैधानिक या संवैधानिक। यह बदले में यह निर्धारित करने में मदद करता है कि क्या और कितनी आसानी से स्वतंत्र भाषण अधिकार को कानूनी रूप से खत्म किया जा सकता है। बल का एक और पहलू यह है कि क्या और कैसे अधिकार न्यायिक रूप से लागू किया जा सकता है। दूसरा घटक स्वतंत्र भाषण अधिकार का **'विषय'** है, या अधिकार-धारक कौन हैं: उदाहरण के लिए, किसी अधिकार क्षेत्र के भीतर सभी व्यक्ति या केवल नागरिक; निगमों सहित कानूनी व्यक्ति या केवल प्राकृतिक व्यक्ति? तीसरा है स्वतंत्र भाषण अधिकार का **'दायरा'**: वास्तव में क्या कहने या करने का अधिकार? क्या इसमें झूठ, अभद्र भाषा या असत्यापित खबरें शामिल है? चौथा, सामग्री से संबंधित एक अलग संरचनात्मक तत्व के रूप में, यह संबोधित करता है कि क्या अधिकार में न केवल प्रासंगिक अन्य लोगों पर नकारात्मक प्रतिबंध शामिल हैं, बल्कि सकारात्मक दायित्व भी शामिल हैं, जैसे कि तीसरे पक्ष के खतरों से अधिकार-धारकों के स्वतंत्र भाषण की सकारात्मक रूप से रक्षा करने का कर्तव्य? पाँचवाँ घटक स्वतंत्र भाषण

> अधिकार का **'उद्देश्य'** है: ये 'प्रासंगिक अन्य' कौन हैं जो धारक के अधिकारों से बंधे हैं? किसके खिलाफ अधिकार को वैध रूप से लागू किया जा सकता है? अंत में, स्वतंत्र भाषण अधिकार की **'सीमा'** है। यदि पिछले सभी प्रश्नों का उत्तर इस आशय से दिया गया है कि किसी विशेष स्थिति में स्वतंत्र भाषण अधिकार को प्रभावित और उसका उल्लंघन किया जाता है, तो कब, यदि कभी, उस अधिकार की कानूनी रूप से उचित सीमा हो सकती है? क्या यह अधिकार किसी भी असंगत कार्रवाई के विरूद्ध एक पूर्ण रोक या 'तुरूप' है और यदि नहीं, तो इसके साथ क्या उपधारित भार जुड़ा हुआ है? उपधारणा का कैसे, कब और क्यों खंडन किया जा सकता है? सामूहिक रूप से, स्वतंत्र भाषण के अधिकार की अंतर्निहित संरचना का गठन और अभिव्यक्त करके, इन छह सवालों के जवाब किसी दिए गए कानूनी प्रणाली में किसी विशेष ऐसे अधिकार की प्रकृति और सीमा को परिभाषित करने में मदद करते हैं।
>
> (मेरे द्वारा जोर दिया गया)

स्वतंत्र भाषण अधिकार की सीमा के पहलू का उल्लेख करते हुए, विद्वान लेखक ने पाया है संवैधानिक व्यवस्था का उद्देश्यवाद भी स्वतंत्र भाषण की सुरक्षा की रूपरेखा तैयार करने में भूमिका निभा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संवैधानिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए स्वतंत्र भाषण का अधिकार दिया जा सकता है।

14. अधिकारों के स्वरूप के बारे में वेस्ले होफेल्ड के विश्लेषण के अनुसार, प्रत्येक अधिकार की एक जटिल आंतरिक संरचना होती है, और ऐसी संरचना यह निर्धारित करती है कि अधिकार उन लोगों के लिए क्या मायने रखते हैं जो उन्हें धारण करते हैं। ऐसे अधिकार बुनियादी घटकों की व्यवस्थित व्यवस्था हैं। अधिकार के घटकों में से एक, सहसंबंधी कर्तव्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि, यदि X के पास कोई अधिकार है, तो उसे ऐसे अधिकार के संबंध में हस्तक्षेप से कानूनी रूप से सुरक्षा प्राप्त है और ऐसे अधिकार के साथ राज्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे अधिकार में हस्तक्षेप न करे। यदि राज्य (या कोई अन्य व्यक्ति) किसी अधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने से दूर रहने के लिए किसी सहसंबंधी कर्तव्य के अधीन नहीं है, तो ऐसा अधिकार सख्त होफेल्डियन अर्थ में 'अधिकार' नहीं है। सुरक्षात्मक परिधि की सीमाएँ जिसके भीतर कोई व्यक्ति अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, इस बात पर निर्भर करती है कि राज्य किस हद तक अधिकार की रक्षा करने के लिए बाध्य है।

14.1. अधिकारों और सह-संबंधित कर्तव्यों की होफेल्डियन अवधारणा से जो बात उभर कर आती है, वह है वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, जिसे इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

क) भारत का संविधान अनुच्छेद 19(1)(क) के तहत अपने सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। राज्य का यह सह-संबंधी कर्तव्य है कि वह ऐसे अधिकार में

हस्तक्षेप न करे, सिवाय संविधान के अनुच्छेद 19(2) में दिए गए प्रावधानों के जो अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत प्रदत्त अधिकार पर उचित प्रतिबंध हैं। ऐसे कर्तव्य की सीमा भाषण की सामग्री पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, ऐसे भाषण के संबंध में जो भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता के हितों के प्रतिकूल होने की संभावना है; या ऐसा भाषण जो न्यायालय की अवमानना, मानहानि का गठन करता है या ऐसी प्रकृति का है जो किसी अपराध करने को उकसाने की संभावना रखता है, में हस्तक्षेप से दूर रहने का राज्य का कर्तव्य शून्य है। यह सिद्धांत संवैधानिक रूप से अनुच्छेद 19(2) के तहत परिलक्षित होता है जो राज्य को कानून बनाने में सक्षम बनाता है जो ऊपर सूचीबद्ध आठ आधारों के तहत वर्णित ऐसे भाषण पर उचित प्रतिबंध लगाएगा जो उचित प्रतिबंधों का आधार हैं।

ख) इसके विपरीत, वाक् और अभिव्यक्ति के संबंध में, जिसमें असहमति या मतभेद सहित विचारों का आदान-प्रदान शामिल है, और ऐसे विचार सभ्य समाज में विकसित लोकाचार के अनुरूप तरीके से व्यक्त किए जाते हैं, हस्तक्षेप से दूर रहना राज्य का कर्तव्य है।

ग) इसी तरह, वाणिज्यिक भाषण के संबंध में, राज्य को वाणिज्यिक भाषण को वापस लेने या रोकने की पूरी स्वतंत्रता है जो गलत, भ्रामक,

अनुचित या छलपूर्ण है। इसलिए, वाणिज्यिक भाषण या विज्ञापनों के प्रति सहनशीलता की सीमा ऐसे भाषण की सामग्री और प्रचारित/प्रसारित की जाने वाली सामग्री के उद्देश्य पर निर्भर करती है। हस्तक्षेप से दूर रहने का राज्य का कर्तव्य वाणिज्यिक भाषण की प्रकृति और प्रभाव पर भी निर्भर करेगा।

d) जैसा कि ऊपर दिए गए उदाहरणों से स्पष्ट है, भाषण की सुरक्षा की सीमा इस बात पर निर्भर करेगी कि क्या ऐसा भाषण 'विचारों का प्रचार' होगा या उसका कोई सामाजिक मूल्य होगा। यदि उक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षित किया जाएगा; यदि उत्तर नकारात्मक है, तो ऐसे भाषण को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षित नहीं किया जाएगा। ऐसे भाषण के संबंध में जो अनुच्छेद 19(1)(ए) की विषय-वस्तु का निर्माण नहीं करता है , राज्य का संविधान के अनुच्छेद 19(2) और केवल उसमें उल्लिखित आधारों को ध्यान में रखते हुए हस्तक्षेप से दूर रहने का कोई कर्तव्य नहीं है।

ई) यह देखते हुए कि वह सुरक्षात्मक परिधि जिसके भीतर कोई व्यक्ति अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, इस बात पर निर्भर करता है कि राज्य किस हद तक अधिकार की रक्षा करने के लिए बाध्य है, यह भी एक परिणाम के रूप में कहा जा सकता है कि भाषण के संबंध में

जो अनुच्छेद 19(1)(ए) की सामग्री का निर्माण नहीं करता है, राज्य के पास हस्तक्षेप से दूर रहने का कोई कर्तव्य नहीं है और इसलिए, घृणास्पद भाषण, मानहानिकारक भाषण आदि जैसे भाषण सुरक्षात्मक परिधि के बाहर होंगे जिसके भीतर कोई व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस तरह के भाषण पर प्रतिबंध या अंकुश लगाया जा सकता है। जबकि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध केवल अनुच्छेद 19(2) के तहत सूचीबद्ध आधारों के तहत राज्य द्वारा लगाए जाने की आवश्यकता है, उक्त अधिकार पर प्रतिबंध, अनुच्छेद 19(2) से अपनी ताकत नहीं लेते हैं। वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध अनुच्छेद 19(1)(ए) की सामग्री द्वारा शासित होते हैं; यानी, किसी भी तरह की बातचीत जो अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत अधिकार की सामग्री के अनुरूप नहीं है, उस पर रोक लगाई जा सकती है। इस तरह के प्रतिबंध की स्वैच्छिक या बाध्यकारी प्रकृति, उसके पीछे का बल, वे व्यक्ति जिन पर इस तरह के प्रतिबंध लगाए जाने हैं, जिस तरीके से उनका अनुपालन किया जा सकता है, आदि से संबंधित प्रश्न ऐसे पहलू हैं जिन पर संसद द्वारा विचार-विमर्श किया जाना है और जिनका उत्तर दिया जाना है। हालांकि, यहां पर दिया गया निष्कर्ष केवल यह स्पष्ट करने की सीमा तक है कि किसी भी तरह की बातचीत जो अनुच्छेद

> 19(1)(ए) की सामग्री का निर्माण नहीं करती है, उस पर रोक लगाई जा सकती है क्योंकि इस तरह की बातचीत सभ्य समाज में विकसित लोकाचार के अनुकूल विचारों का आदान-प्रदान नहीं करती है। इस तरह के प्रतिबंधों का पता केवल अनुच्छेद 19(2) से नहीं लगाया जा सकता है, जिसमें राज्य द्वारा वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाने के आठ आधारों को विस्तृत रूप से सूचीबद्ध किया गया है।

<u>अनुच्छेद 19(1)(ए) की विषय-वस्तु :</u>

> 15. अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता वाक् और अभिव्यक्ति की सामग्री और संचार के माध्यम दोनों के संबंध में विविध पहलुओं वाला अधिकार है।

यह एक गतिशील अवधारणा भी है जो समय और प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ विकसित हुई है। संक्षेप में, अनुच्छेद 19(1)(ए) मौखिक रूप से, लिखित रूप में, चित्रात्मक रूप में, ग्राफिक्स या किसी अन्य तरीके से खुद को व्यक्त करने के अधिकार को समाहित करता है। इसमें संचार की स्वतंत्रता और किसी के विचारों और राय को प्रचारित या प्रकाशित करने का अधिकार शामिल है। विचारों का संचार किसी भी माध्यम

जैसे कि किताब, समाचार पत्र, पत्रिका या फिल्म, जिसमें इलेक्ट्रॉनिक और श्रवण-दृश्य मीडिया शामिल हैं, के माध्यम से हो सकता है।

15.1. प्रसारित करने का अधिकार:

प्रेस की स्वतंत्रता अपने दायरे में कई अधिकार लेती है और ऐसा ही एक अधिकार प्रकाशन की स्वतंत्रता है। प्रकाशन का मतलब प्रसार और संचलन भी है; वास्तव में, संचलन के बिना, प्रकाशन का कोई मूल्य नहीं होगा, **रोमेश थापर के अनुसार; सकाल पेपर्स (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ, एआईआर 1962 एससी 305 ("सकॉल पेपर्स (पी) लिमिटेड")।**

जीवन बीमा निगम बनाम प्रो. मनुभाई डी. शाह, (1992) 3 एससीसी 637 ("प्रो. मनुभाई डी. शाह")में इस न्यायालय ने दोहराया कि अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अपने दायरे में किसी के विचार को प्रसारित करने की स्वतंत्रता के रूप में समझा जाना चाहिए। ऐसा प्रसार मौखिक रूप से, लिखित रूप में या श्रवण-दृश्य मीडिया के माध्यम से हो सकता है। 'किसी के विचार को प्रसारित करने' की स्वतंत्रता को "किसी भी लोकतांत्रिक संस्था की जीवन रेखा" घोषित किया गया था और न्यायालय ने प्रसार के अधिकार को दबाने या उसका दम घोंटने के किसी भी प्रयास की कड़ी आलोचना की थी। उक्त मामले में, अपील राज्य-नियंत्रित संस्थाओं (एलआईसी और दूरदर्शन) के अलग-अलग उदाहरणों से संबंधित थी, जो सरकार की आलोचना करने वाले कार्य को

प्रकाशित या प्रसारित करने से इनकार कर रहे थे जब कोई राज्य-नियंत्रित संस्था अपनी पत्रिका या अन्य मंच के माध्यम से किसी के विचारों, जिसमें उसका बचाव भी शामिल है, को प्रसारित करने से इनकार करती है, तो प्रसारित करने के अधिकार का उल्लंघन होता है।

इसलिए इस न्यायालय ने कई अवसरों पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के एक पहलू के रूप में प्रसार के अधिकार को मान्यता दी है। प्रसार के अधिकार में प्रसार की मात्रा को अनुकूलित/अधिकतम करने का अधिकार और इसकी विषय-वस्तु और पहुंच को निर्धारित करने का अधिकार भी शामिल है।

15.2. असहमति का अधिकार:

अनुच्छेद 19(1)(ए) एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से असहमति व्यक्त की जा सकती है। असहमति, असहमत होने और अलग-अलग और व्यक्तिगत दृष्टिकोण अपनाने का अधिकार इस देश के प्रत्येक नागरिक में निहित है। वास्तव में, असहमति का अधिकार एक जीवंत लोकतंत्र का सार है, क्योंकि असहमति होने पर ही अलग-अलग विचार उभरेंगे जो सरकार को अपनी नीतियों में सुधार या नवाचार करने में मदद कर सकते हैं ताकि उसके शासन का देश के लोगों पर सकारात्मक प्रभाव पड़े जिससे अंततः स्थिरता, शांति और विकास हो जो अच्छे शासन के सहवर्ती हैं।

15.3. असहमति के अधिकार पर इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय उल्लेखनीय हैं:

(i) **रोमेश थापर** मामले में, इस न्यायालय ने माना कि सरकार के खिलाफ निर्देशित आलोचना या असहमति को कम नहीं किया जाना चाहिए और ऐसा करने का कोई भी प्रयास संविधान के अनुच्छेद 19 (2) के तहत उचित प्रतिबंध के रूप में उचित नहीं ठहराया जा सकता। इस न्यायालय द्वारा की गई इस घोषणा ने इस विचार को पुख्ता किया कि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में असहमति या आलोचना का अधिकार शामिल है, भले ही इस तरह के अधिकार का इस्तेमाल सरकारी नीति या कार्रवाई या निष्क्रियता की आलोचना के संबंध में किया गया हो। अब यह माना जाता है कि असहमति का अधिकार एक स्वस्थ लोकतंत्र की एक अनिवार्य शर्त है और स्वतंत्र भाषण का एक पहलू है।

(ii) **केदार नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1962 एससी 955 ("केदार नाथ सिंह")** में इस न्यायालय ने भा०द०सं० की धारा 124-ए और 505 को दी गई चुनौती पर विचार किया, जिसमें सरकार के प्रति असंतोष भड़काने के उद्देश्य से शब्दों या लेखन और प्रकाशनों के माध्यम से किए गए प्रयासों को

आपराधिक माना गया है, जिससे सार्वजनिक शांति भंग हो सकती है। यद्यपि इस न्यायालय ने पूर्वोक्त प्रावधानों की वैधता को चुनौती देने वाली याचिका को खारिज कर दिया, लेकिन यह स्पष्ट किया कि सरकार द्वारा अपनाए गए उपायों की आलोचना, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमाओं के भीतर और उसके अनुरूप होगी।

(iii) तत्पश्चात, **दूरदर्शन महानिदेशालय बनाम आनंद पटवर्धन, (2006) 8 एससीसी 433 ("आनंद पटवर्धन")** में इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि राज्य खुले विचार-विमर्श को नहीं रोक सकता, तब भी जब ऐसी चर्चा सरकारी नीति की अत्यधिक आलोचना करती हो।

(iv) किसी व्यक्ति के अलोकप्रिय या अपारंपरिक विचार रखने के अधिकार को **खुशबू** मामले में एक बार पुनः यथावत रखा गया, जिसमें इस न्यायालय ने भा०द०सं० की धाराओं 292, 499, 500, 504, 505, 509 के तहत अपराधों से संबंधित दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) को रद्द कर दिया, जो उसमें अपीलकर्ता, एक अभिनेता द्वारा एक समाचार पत्रिका में विवाह पूर्व यौन संबंध के विषय पर की गई अलोकप्रिय टिप्पणियों के संबंध में शिकायतों पर आधारित थी, जिसमें उसने महिलाओं

और लड़कियों से यौन रोगों के संचरण से बचने के लिए आवश्यक सावधानी बरतने का आग्रह किया था। ऐसा करते हुए, इस न्यायालय ने देखा कि आपराधिक कानून को उस तरीके से लागू नहीं किया जा सकता, जो व्यक्तिगत स्वायत्तता के क्षेत्र में हस्तक्षेप करेगा। न्यायालय ने अपीलकर्ता की बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को यथावत रखा और अलोकप्रिय विचारों के संबंध में भी सहिष्णुता की आवश्यकता व्यक्त करते हुए एफआईआर को रद्द कर दिया।

15.4. **विज्ञापन देने का अधिकार (वाणिज्यिक भाषण):**

शब्दकोष के अर्थ के अनुसार, अभिव्यक्ति "विज्ञापन" का अर्थ है, किसी भी माध्यम से, जैसे समाचार पत्र, टेलीविजन या अन्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, आदि के माध्यम से बिक्री के लिए वस्तुओं, दी जाने वाली सेवाओं आदि पर ध्यान आकर्षित करना या उनका वर्णन करना, ताकि लोगों को उन्हें खरीदने या उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। दूसरे शब्दों में, यह किसी उत्पाद या सेवा की ओर ध्यान आकर्षित करना है। "विज्ञापन" एक सार्वजनिक सूचना, घोषणा, समाचार पत्र में या दीवार पर या सड़क पर होर्डिंग आदि पर चित्र है, जो किसी चीज़ का विज्ञापन करता है। संक्षेप में, यह किसी चीज़ की ओर ध्यान आकर्षित करना है और व्यावसायिक अर्थ में, बिक्री

के लिए वस्तुओं या दी जाने वाली सेवाओं की ओर ध्यान आकर्षित करना है। उस अर्थ में, एक विज्ञापन वाणिज्यिक भाषण है।

निम्नलिखित मामलों पर एक नज़र डालना उपयोगी होगा:

(i) **हमदर्द दवाखाना (वक्फ) लाल कुआं बनाम भारत संघ, एआईआर 1960 एससी 554 ("हमदर्द दवाखाना")** में इस न्यायालय ने माना कि विज्ञापन भाषण का एक रूप है, लेकिन इसका वास्तविक चरित्र उस उद्देश्य से परिलक्षित होता है जिसके प्रचार के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

हालाँकि, इस न्यायालय ने अपनी टिप्पणियों को इस चेतावनी के साथ स्पष्ट किया कि जब विज्ञापन वाणिज्यिक विज्ञापन का रूप ले लेता है जिसमें व्यापार या वाणिज्य का तत्व होता है, तो यह अब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की अवधारणा के अंतर्गत नहीं आता है, क्योंकि इसका उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक विचारों का प्रचार नहीं है या साहित्य या मानव विचार को आगे बढ़ाना नहीं है; बल्कि उस उत्पाद

की प्रभावकारिता, मूल्य और महत्व की प्रशंसा करना जिसका विज्ञापन करना चाहता है। उक्त मामले में, इस न्यायालय ने वाणिज्यिक भाषण को भाषण के अन्य रूपों के बराबर मान्यता नहीं दी, यह मानते हुए कि इसका राजनीतिक या रचनात्मक अभिव्यक्ति के समान मूल्य नहीं है। मोटे तौर पर, किसी व्यक्ति के निजी व्यवसाय का विज्ञापन करने वाले वाणिज्यिक विज्ञापनों को प्रकाशित और वितरित करने का अधिकार संविधान द्वारा गारंटीकृत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक हिस्सा है, लेकिन हर विज्ञापन ऐसा मामला नहीं है जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दायरे में आता है, न ही यह कहा जा सकता है कि यह विचारों की अभिव्यक्ति है। हर मामले में, किसी को यह देखना होगा कि विज्ञापन की प्रकृति क्या है और वह कौन सा व्यवसाय/वाणिज्यिक गतिविधि है जो अनुच्छेद 19(1)(जी) के अंतर्गत आती है जिसे वह आगे बढ़ाना चाहता है।

उपरोक्त मामले में, ड्रग्स और मैजिक रेमेडीज (आपत्तिजनक विज्ञापन) अधिनियम, 1954 को चुनौती दी गई थी । यह माना गया कि अधिनियम का उद्देश्य विज्ञापनों पर प्रतिबंध लगाकर स्व-चिकित्सा और स्व-उपचार की रोकथाम करना था, जिसका उपयोग उसी का समर्थन करने या बुराई फैलाने के लिए किया जा सकता है। यह भी माना गया कि उक्त मामले में अपीलकर्ता हमदर्द दवाखाना के विज्ञापन

वाणिज्य या व्यापार से संबंधित थे, न कि विचारों के प्रचार से। प्रतिबंधित दवाओं या वस्तुओं का ऐसा विज्ञापन जिसकी बिक्री आम जनता के हित में नहीं थी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अर्थ में "भाषण" नहीं हो सकता है और अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत नहीं आएगा।

इसलिए यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय ने उक्त मामले में इस पहलू पर बल दिया कि क्या, जिस विज्ञापन को संरक्षित करने की मांग की गई है, वह वास्तव में 'विचारों का प्रचार' करता है। प्रचारित/प्रसारित की जाने वाली सामग्री की वास्तविक सामग्री और उद्देश्य का मूल्यांकन किया जाना था, ताकि यह घोषित किया जा सके कि क्या ऐसी सामग्री को अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षण प्राप्त होगा।

(ii) इसके बाद, **इंडियन एक्सप्रेस न्यूज़पेपर (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1985) 1 एससीसी 641 ("इंडियन एक्सप्रेस न्यूज़पेपर (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड")** में, इस न्यायालय ने **हमदर्द दवाखाना** में दिए गए निर्णय पर विचार किया और पाया कि उक्त निर्णय का मुख्य आधार विज्ञापन का प्रकार या उसकी विषय-वस्तु थी और वह विशेष विज्ञापन अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षण प्राप्त नहीं था। यह भी स्पष्ट किया गया कि **हमदर्द दवाखाना** में की गई

टिप्पणियां बहुत व्यापक रूप से कही गई हैं। सभी वाणिज्यिक विज्ञापनों को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत संरक्षण से केवल इसलिए वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे व्यवसायियों द्वारा जारी किए गए हैं।

(iii) इसके बाद, **टाटा प्रेस लिमिटेड बनाम महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड , (1995) 5 एससीसी 139 ("टाटा प्रेस लिमिटेड")** में, इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि वाणिज्यिक भाषण, जो यूएसए में प्रथम संशोधन के तहत संरक्षण का हकदार है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत भी संरक्षित है । हालाँकि, यूएसए में, राज्य वाणिज्यिक भाषण को वापस लेने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र था जो झूठा, भ्रामक, अनुचित, छलपूर्ण है और जो यूएसए में अवैध लेनदेन का प्रस्ताव करता है। लेकिन, भारतीय संविधान के तहत, वाणिज्यिक भाषण जो भ्रामक, अनुचित, भ्रामक और असत्य है, संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अंतर्गत आएगा और राज्य द्वारा विनियमित/निषिद्ध किया जा सकता है।

15.5. **बाध्य भाषण:**

बाध्य या जबरन भाषण वह भाषण है जो किसी व्यक्ति को कोई बात कहने के लिए मजबूर करता है। यह क़ानून में "जरूर ले जाना चाहिए" प्रावधान के रूप में होता है। मजबूर भाषण का एक

उदाहरण खाद्य उत्पाद या दवा उत्पाद पर सामग्री, उसके माप और ऐसे अन्य विवरणों को अनिवार्य रूप से छापने का प्रावधान है। इसका उद्देश्य संभावित उपभोक्ता को उत्पाद की प्रकृति के बारे में सूचित करना और, कुछ मामलों में, चेतावनी देना है। ऐसा मजबूर भाषण वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं हो सकता। लेकिन अगर राज्य किसी नागरिक को उसकी इच्छा के विपरीत प्रचार या दृष्टिकोण अपनाने के लिए मजबूर करता है तो यह उसके वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध हो सकता है, जिसे संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अनुसार उचित ठहराया जाना चाहिए। लेकिन, अगर "जरूर ले जाना" प्रावधान सूचित निर्णय लेने को बढ़ावा देता है, जो कि स्वतंत्र वाक् और अभिव्यक्ति का सार है, तो यह अनुच्छेद 19(1)(ए) का उल्लंघन नहीं होगा। उपर्युक्त संदर्भ में निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया जा सकता है:

(i) **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मोशन पिक्चर एसोसिएशन, एआईआर 1999 एससी 2334 ("मोशन पिक्चर एसोसिएशन")** में, इस न्यायालय ने माना कि मजबूर भाषण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन होगा या नहीं, यह "जरूर ले जाना चाहिए" प्रावधान की प्रकृति पर निर्भर करेगा। इसने देखा कि, यदि "जरूर ले जाना चाहिए" प्रावधान निर्णय लेने को और

अधिक सूचित करता है, जो कि स्वतंत्र वाक् और अभिव्यक्ति के अधिकार का सार है, तो यह वाक् और अभिव्यक्ति की मौलिक स्वतंत्रता का कोई उल्लंघन नहीं होगा। हालांकि, अगर ऐसा प्रावधान किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विपरीत दुष्प्रचार करने या पक्षपातपूर्ण या विकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए मजबूर करता है, तो यह उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध हो सकता है। यह संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (जी) या आत्म-दोष के विरुद्ध अधिकार जैसे अन्य मौलिक अधिकारों का भी उल्लंघन कर सकता है, जिसे संविधान के अनुच्छेद 20 (3) के तहत संरक्षित किया गया है।

(ii) इसलिए, इस न्यायालय ने, उक्त मामले में, एक बार फिर इस तरह के विचारों के प्रसारण को मजबूर करने के माध्यम से संप्रेषित किए जाने वाले विचारों और सूचनाओं पर जोर दिया। जिस सूचना को प्रसारित करने के लिए बाध्य किया जाता है, उसकी विषय-वस्तु अत्यधिक प्रासंगिक पाई गई।

इस प्रकार, अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत अधिकार एक बहुआयामी स्वतंत्रता है और इसके विस्तार में अन्य बातों के साथ-साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के एक पहलू के रूप में लिंग पहचान का अधिकार भी शामिल है, **राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ, (2014) 5**

एससीसी 438 ("राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण"); साक्षात्कार आयोजित करने का प्रेस का अधिकार, **प्रभा दत्त बनाम भारत संघ, (1982) 1 एससीसी 1 ("प्रभा दत्त")**; न्यायालय में कार्यवाही में उपस्थित होने और उसकी रिपोर्ट करने का अधिकार, **स्वप्निल त्रिपाठी बनाम भारत का सर्वोच्च न्यायालय, (2018) 10 एससीसी 639 ("स्वप्निल त्रिपाठी")**; राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अधिकार, **भारत संघ बनाम नवीन जिंदल, (2004) 2 एससीसी 510 ("नवीन जिंदल")**। मौन का अधिकार, जिसे अक्सर 'भाषण' के बिल्कुल विपरीत माना जाता है, अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में भी निहित है, जैसा कि **बिजो इमैनुएल बनाम केरल राज्य, (1986) 3 एससीसी 615 ("बिजो इमैनुएल")** में मान्यता दी गई है

16. **'घृणास्पद भाषण':**

16.1 'घृणास्पद भाषण' कहे जाने वाले विभिन्न पहलुओं पर इस न्यायालय के निर्णयों के संदर्भ में निम्नानुसार चर्चा की जा सकती है:

याचिकाकर्ता की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री कालीश्वरम राज ने कहा कि इन मामलों में याचिकाकर्ताओं का तर्क यह है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार जो राज्य के विरुद्ध एक अधिकार है, वह न केवल राज्य के प्रति बल्कि अन्य नागरिकों के प्रति भी उक्त स्वतंत्रता का प्रयोग करने के मामले में एक कर्तव्य लाता है। दूसरे शब्दों में, इन मामलों में जिस बात पर

ध्यान देने की कोशिश की गई है, वह यह है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के घटक या तत्व क्या हैं और क्या संविधान के अनुच्छेद 19(2) के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर कोई सीमाएँ हो सकती हैं, ताकि यह देखा जा सके कि सर्वत्र 'घृणास्पद भाषण' या 'अपमानजनक भाषण' के रूप में जाना जाने लगा है। इसके द्वारा मैं वर्तमान मामलों में विचार के दायरे को केवल सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा दिए गए भाषण तक सीमित नहीं करता, बल्कि यह आम नागरिकों द्वारा दिए गए भाषणों तक भी विस्तारित होगा, खासकर सोशल मीडिया पर।

16.2. इस न्यायालय ने **प्रवासी भलाई संगठन बनाम भारत संघ, (2014) 11 एससी 477 ("प्रवासी भलाई संगठन")** में डॉ. बी.एस. चौहान, जे. के माध्यम से वर्णित कर, 'घृणास्पद भाषण' को भेदभाव के विचार के साथ एक सहज संबंध के रूप में निपटाया है। इस तरह के भाषण का प्रभाव सिर्फ़ उसके अपमानजनक मूल्य से नहीं मापा जाता, बल्कि इस बात से मापा जाता है कि यह लोगों को कितनी सफलतापूर्वक और व्यवस्थित रूप से हाशिए पर धकेलता है। उपरोक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित 'घृणास्पद भाषण' की परिभाषा नीचे उद्धृत की गई है:

> "घृणास्पद भाषण किसी समूह में उनकी सदस्यता के आधार पर व्यक्तियों को हाशिए पर डालने का एक प्रयास है। **समूह को घृणा के दायरे में लाने वाली अभिव्यक्ति का उपयोग करके, घृणास्पद भाषण समूह के**

सदस्यों को बहुसंख्यकों की नज़र में अवैध ठहराने का प्रयास करता है, जिससे समाज में उनकी सामाजिक स्थिति और स्वीकृति कम हो जाती है। इसलिए, घृणास्पद भाषण व्यक्तिगत समूह के सदस्यों को परेशान करने से कहीं बढ़कर है। इसका सामाजिक प्रभाव हो सकता है। घृणास्पद भाषण बाद में कमज़ोर लोगों पर व्यापक हमलों के लिए आधार तैयार करता है, जो भेदभाव से लेकर बहिष्कार, अलगाव, निर्वासन, हिंसा और सबसे चरम मामलों में नरसंहार तक हो सकता है। घृणास्पद भाषण संरक्षित समूह की बहस के तहत मूल विचारों पर प्रतिक्रिया देने की क्षमता को भी प्रभावित करता है, जिससे हमारे लोकतंत्र में उनकी पूर्ण भागीदारी के लिए एक गंभीर बाधा उत्पन्न होती है।"

(मेरे द्वारा जोर दिया गया)

इस न्यायालय ने **सस्केचेवान मानवाधिकार आयोग बनाम विलियम व्हाटकॉट, 2013 एससीसी 11 ("सस्केचेवान") (कनाडा)** में कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें यह माना गया था कि मानवाधिकार दायित्व "घृणास्पद भाषणों" के प्रकाशन के नियंत्रण का आधार बनते हैं। कनाडाई सर्वोच्च न्यायालय ने आगे घोषित किया कि व्यक्त किए जा रहे विचारों की घृणा अभिव्यक्ति को प्रतिबंधित करने का औचित्य साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है, और अभिव्यक्ति के लेखक का इरादा घृणा या

भेदभावपूर्ण व्यवहार को भड़काने का था या नहीं, यह अप्रासंगिक है। महत्वपूर्ण बात यह है कि भेदभाव को कम करने या समाप्त करने के विधायी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, अभिव्यक्ति के अपने दर्शकों पर संभावित प्रभाव को निर्धारित करना है। कनाडाई सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने **प्रवासी भलाई संगठन** में देखा कि घृणास्पद भाषण का अपराध व्यक्तिगत संकट पैदा करने तक सीमित नहीं है, बल्कि ऐसे व्यक्तियों को लक्षित करेगा जो समाज के कुछ समूहों या वर्गों के सदस्य हैं जो भेदभाव और परिणामस्वरूप, शत्रुता को जन्म देते हैं।

16.3. भारत में, मानवीय गरिमा न केवल एक मूल्य है, बल्कि एक अधिकार है जिसे लागू किया जा सकता है। मानवीय गरिमा पर आधारित लोकतंत्र में, बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग इस तरह से किया जाना चाहिए कि इससे साथी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और संवर्धन हो। लेकिन नफ़रत फैलाने वाला भाषण, चाहे उसकी विषय-वस्तु कुछ भी हो, मनुष्य को गरिमा के अधिकार से वंचित करता है। इस संबंध में, **अमीश देवगन बनाम भारत संघ, (2021) 1 एससीसी 1 ("अमीश देवगन")** में इस न्यायालय के हाल के निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा, जिसमें इस न्यायालय ने संजीव खन्ना, जे. के माध्यम से वर्णित करते हुए 'घृणा फैलाने वाले भाषण' का विश्लेषण किया, जो मानवीय गरिमा के आधार के विपरीत

और असंगत है। 'घृणा फैलाने वाले भाषण' के अपराधीकरण के औचित्य के रूप में 'गरिमा' के संरक्षण पर इस प्रकार चर्चा की गई:

> "46. [...] भाषण के अपराधीकरण के संदर्भ में, जिसके बारे में हम चिंतित हैं, गरिमा का तात्पर्य समाज के एक अच्छे सदस्य के रूप में एक व्यक्ति के मूल अधिकार, एक सामाजिक समान के रूप में उसकी स्थिति और मानवाधिकारों और संवैधानिक अधिकारों के वाहक के रूप में है। यह नागरिकों के बीच और राज्य और नागरिकों के बीच अंतर-व्यक्तिगत संबंधों में भागीदारीपूर्ण समानता का आश्वासन देता है, और इस तरह आत्म-सम्मान को बढ़ावा देता है। इस अर्थ में गरिमा किसी व्यक्ति के रूप में सम्मान या प्रतिष्ठा के किसी विशेष स्तर को संदर्भित नहीं करती है, जैसा कि मानहानि के मामले में होता है जो व्यक्तिवादी है।
>
> 47. संविधान की प्रस्तावना में जानबूझकर बंधुत्व को एक साथ रखा गया है, जो व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करता है। व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं, एक व्यक्ति के अधिकारों के रूप में और दूसरा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने के लिए दूसरों के प्रति व्यक्ति के दायित्व के रूप में। राष्ट्र की एकता और अखंडता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और न ही उसे कम आंका जा सकता

है, क्योंकि जो कार्य विभाजन, अलगाव और षड्यंत्र को 'बढ़ावा' देते हैं या 'बढ़ावा' देने की 'संभावना' रखते हैं, वे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विविधता और बहुलवाद पर आघात करते हैं और जब वे सार्वजनिक अव्यवस्था पैदा करने या लक्षित समूहों की गरिमा को कम करने के उद्देश्य और इरादे से होते हैं, तो उनसे कानून के अनुसार निपटा जाना चाहिए। इसका उद्देश्य अभिव्यक्ति और भाषण के अधिकार को कम करना नहीं है, हालांकि सार्वजनिक अव्यवस्था और विशेष रूप से राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए विशिष्ट गंभीर खतरों को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। इस तरह की धमकियाँ न केवल विविधता के गुण और श्रेष्ठता को कमज़ोर करती हैं, बल्कि तर्कसंगतता के आधार पर अभिव्यक्ति और बोलने की स्वतंत्रता के दमन के लिए संदर्भ और अवसर के आधार पर माँगों को कम करती हैं और उन्हें जन्म देती हैं। **स्वतंत्रता और अधिकार सार्वजनिक अव्यवस्था पैदा करने या देश की अखंडता और एकता को चुनौती देने वालों या हिंसा को बढ़ावा देने और भड़काने वालों को कवच प्रदान करने तक विस्तारित नहीं हो सकते। स्वीकार्य सार्वजनिक व्यवस्था के बिना, बोलने और व्यक्त करने की स्वतंत्रता को चुनौती दी जाती है और आम जनता और कानून का पालन करने वाले नागरिकों के लिए प्रतिबंधित हो जाती है। यह अनिवार्य रूप से राज्य की प्रतिक्रिया की ओर ले जाता है और इसलिए,**

> **जो लोग राष्ट्र की एकता और अखंडता या सार्वजनिक अव्यवस्था को चुनौती देने के लिए हिंसा को बढ़ावा देने और भड़काने में लिप्त होते हैं, वे दूसरों की स्वतंत्रता और आज़ादी को कुचलने की कोशिश करते हैं।"**
>
> **(मेरे द्वारा जोर दिया गया)**

इसके अलावा, "ऑनलाइन हेरेस्मेंट डिफेमेशन एंड हेटफुल स्पीचः ए प्राइमर ऑफ द लीगल लेंडस्केप" शीर्षक वाली रिपोर्ट में एलिस ई. मार्विक और रॉस मिलर्स के विचारों का उल्लेख करते हुए, इस न्यायालय ने **अमिश देवगन** में तीन अलग-अलग तत्वों पर निम्नलिखित रूप से प्रकाश डाला है जिनका उपयोग विधायिकाएँ और अदालतें 'घृणास्पद भाषण' को परिभाषित करने और पहचानने के लिए कर सकती हैं:

> "72.1. सामग्री-आधारित तत्व में ऐसे शब्दों और वाक्यांशों का खुला उपयोग शामिल है जिन्हें आम तौर पर किसी विशेष समुदाय के लिए अपमानजनक माना जाता है और समाज के लिए वस्तुनिष्ठ रूप से अपमानजनक माना जाता है। इसमें कुछ प्रतीकों और प्रतिमा विज्ञान का उपयोग शामिल हो सकता है। वस्तुनिष्ठ मानकों को लागू करके, कोई व्यक्ति जानता है या उसके पास यह जानने के लिए उचित आधार है कि सामग्री नस्ल, रंग, पंथ, धर्म या लिंग के आधार पर दूसरों में क्रोध, चिंता या आक्रोश पैदा करेगी।

72.2. 'घृणास्पद भाषण' के इरादे-आधारित तत्व के लिए वक्ता के संदेश का उद्देश्य किसी विशेष वर्ग या समूह के विरुद्ध केवल घृणा, हिंसा या आक्रोश को बढ़ावा देना होना चाहिए, बिना किसी वैध संदेश को संप्रेषित किए। इसके लिए वक्ता की ओर से उस वर्ग/समूह से जुड़े समूह या व्यक्ति को लक्षित करने के लिए व्यक्तिपरक इरादे की आवश्यकता होती है।

72.3. नुकसान या प्रभाव-आधारित तत्व 'घृणास्पद भाषण' के परिणामों को संदर्भित करता है, अर्थात पीड़ित को होने वाला नुकसान जो हिंसक हो सकता है या जैसे आत्म-सम्मान की हानि हो सकती है। सम्मान, आर्थिक या सामाजिक अधीनता, शारीरिक और मानसिक तनाव, पीड़ित को चुप करा देना और राजनीतिक क्षेत्र से प्रभावी बहिष्कार।

72.4. फिर भी, तीनों तत्व एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं हैं और एक दूसरे को अतिछादित करते हैं तथा आपस में जुड़े हुए हैं। केवल जब वे मौजूद होते हैं, तो वे 'घृणास्पद भाषण' बनाने के लिए संरचनात्मक निरंतरता पैदा करते हैं।"

यह आगे स्पष्ट किया गया कि शब्दों के प्रभाव का मूल्यांकन "उचित, दृढ़-चित्त, दृढ़ और साहसी पुरुषों के मानक से किया जाना चाहिए, न कि उन लोगों के आधार पर जो कमज़ोर और अस्थिर दिमाग वाले हैं, न ही उन लोगों

> के आधार पर जो हर शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण में ख़तरे की गंध लेते हैं।" स्वतंत्र भाषण को अधिकतम करने के लिए, मूल्यांकन जनता के एक उचित सदस्य के दृष्टिकोण से होना चाहिए।

16.4. इसके अलावा, **चैपलिंस्की बनाम स्टेट ऑफ़ न्यू हैम्पशायर, 315 यूएस 568 (1942) ("चैपलिंस्की")** के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट के एक ऐतिहासिक फैसले में "घृणास्पद भाषण" को मर्फी जे द्वारा परिभाषित किया गया था जिसका अर्थ था "लड़ाई के शब्द, जो अपने उच्चारण से ही चोट पहुंचाते हैं या शांति के तत्काल उल्लंघन को भड़काते हैं। यह देखा गया है कि इस तरह के कथन किसी भी विचार की व्याख्या का अनिवार्य हिस्सा नहीं हैं, और सत्य की ओर एक कदम के रूप में उनका सामाजिक मूल्य बहुत कम है कि उनसे प्राप्त होने वाला कोई भी लाभ स्पष्ट रूप से व्यवस्था और नैतिकता में सामाजिक हित से अधिक है।"

16.5. 'घृणास्पद भाषण' शब्द को संविधान के अनुच्छेद 19(2) में कोई विशिष्ट स्थान नहीं मिलता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए कोई विशिष्ट अपवाद नहीं बनाता है। संभवतः संविधान निर्माताओं ने इसे भारतीय सामाजिक ताने-बाने में प्रासंगिक नहीं पाया, क्योंकि उन्होंने यह माना कि हमारे संविधान के अन्य महत्वपूर्ण मूल्य जैसे भाईचारा और व्यक्ति की गरिमा ऐसे मजबूत कारक होंगे जो हमारे देश में किसी भी तरह की नफरत फैलाने वाली भाषा को नकार देंगे। यह हमारे

सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए हो सकता है। हालांकि, समय बीतने के साथ, नफरत फैलाने वाली भाषा को नियंत्रित करने के उद्देश्य से कई तरह के भारतीय कानून बनाए गए हैं। 'नफरत फैलाने वाली भाषा' को रोकने के लिए मौजूदा ढांचे की पर्याप्तता की जांच करने के उद्देश्य से ऐसे कुछ प्रावधानों का उल्लेख करना उपयोगी हो सकता है, हालांकि, संसद द्वारा आज तक उक्त शब्द को ठीक से परिभाषित नहीं किया गया है।

i) **भारतीय दंड संहिता** ("भा०द०सं०") में ऐसे प्रावधान हैं जो घृणा फैलाने वाले भाषण पर रोक लगाते हैं। धारा 153-ए वर्ग घृणा को बढ़ावा देने को दंडित करती है। धारा 153-बी "राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक आरोप, कथन" को दंडित करती है। धारा 295-ए धर्म और धार्मिक विश्वासों का अपमान करने को दंडित करती है। धारा 298 किसी दूसरे की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के इरादे से शब्द बोलना, आवाज़ निकालना या इशारे करना दंडनीय अपराध बनाती है। धारा 505 किसी वर्ग या समुदाय को दूसरे के खिलाफ़ भड़काना दंडनीय अपराध बनाती है। अध्याय XXII, भा०द०सं० आपराधिक धमकी को दंडित करता है।

ii) **दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ("द०प्र०सं०")** की धारा 95 राज्य सरकार को भा०द०सं० की धाराओं 124-ए, 153-ए, 153-बी, 292, 293 या 295-ए के तहत दंडनीय प्रकाशनों को जब्त करने का अधिकार देती है। धारा 107 कार्यकारी मजिस्ट्रेट को किसी व्यक्ति को शांति भंग करने या सार्वजनिक

शांति भंग करने या कोई ऐसा गलत कार्य करने से रोकने के लिए सशक्त बनाती है, जो शांति भंग करने या सार्वजनिक शांति भंग करने का कारण बन सकता है। धारा 144 जिला मजिस्ट्रेट, एक उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट को विशेष रूप से राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सशक्त बनाती है ताकि उपद्रव या आशंका वाले खतरे के तत्काल मामलों में आदेश जारी कर सके। उपरोक्त अपराध संज्ञेय हैं।

iii) **नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955** की धारा *7* मौखिक या लिखित शब्दों, संकेतों या दृश्य चित्रणों या अन्यथा द्वारा अस्पृश्यता को उकसाने और प्रोत्साहित करने पर दंड का प्रावधान करती है।

iv) **धार्मिक संस्थाएं (दुरुपयोग निवारण) अधिनियम, 1988** की धारा 3(जी) धार्मिक संस्थाओं को अपने नियंत्रण में या अपने अधीन किसी भी परिसर का उपयोग विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषाई या क्षेत्रीय समूहों या जातियों या समुदायों के बीच वैमनस्य, शत्रुता, घृणा, दुर्भावना की भावना को बढ़ावा देने या बढ़ावा देने का प्रयास करने के लिए करने की अनुमति देने पर रोक लगाती है।

v) **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989** की धारा 3(1)(x) के तहत किसी भी सार्वजनिक स्थान पर अनुसूचित जाति या जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से जानबूझकर अपमान या धमकी देने को दंडित किया जाता है ।

vi) **जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951** की धारा 8 किसी व्यक्ति को चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित करती है, यदि उसे वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अवैध उपयोग के लिए दोषी ठहराया जाता है। इसी अधिनियम की धारा 123(3-ए) "किसी उम्मीदवार या उसके एजेंट या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उम्मीदवार या उसके चुनाव एजेंट की सहमति से उस उम्मीदवार के चुनाव की संभावनाओं को आगे बढ़ाने या किसी उम्मीदवार के चुनाव को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के लिए धर्म, नस्ल, जाति, समुदाय या भाषा के आधार पर भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच दुश्मनी या घृणा की भावनाओं को बढ़ावा देना या बढ़ावा देने का प्रयास करना" को "भ्रष्ट आचरण" घोषित करती है।

vii) केबल टेलीविजन नेटवर्क (विनियमन) अधिनियम, 1995 के अनुसार टेलीविजन पर प्रसारित सभी कार्यक्रम और विज्ञापन कार्यक्रम संहिता और विज्ञापन संहिता के अनुरूप होने चाहिए। केबल टेलीविजन नेटवर्क नियम, 1994 का नियम 6 कार्यक्रम संहिता निर्धारित करता है और केबल सेवा पर ऐसे किसी भी कार्यक्रम को प्रसारित करने पर रोक लगाता है जो:

(क) जिसमें धर्म या समुदायों पर हमला हो या धार्मिक समूहों के प्रति तिरस्कारपूर्ण दृश्य या शब्द हों या जो सांप्रदायिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हों;

(ख) हिंसा को प्रोत्साहित या भड़काने की संभावना है या इसमें कानून और व्यवस्था बनाए रखने के विरुद्ध कुछ भी शामिल है या जो राष्ट्र-विरोधी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता है;

(ग) किसी व्यक्ति विशेष या देश के सामाजिक, सार्वजनिक और नैतिक जीवन के कुछ समूहों, खंडों की आलोचना, निंदा या बदनामी करता है;

(घ) इसमें ऐसे दृश्य या शब्द शामिल हैं जो कुछ जातीय, भाषाई और क्षेत्रीय समूहों के चित्रण में निंदात्मक, विडंबनापूर्ण और दंभपूर्ण दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।

इसी प्रकार, **केबल टेलीविजन नेटवर्क नियम, 1994** के नियम 7 के अंतर्गत विज्ञापन संहिता केबल सेवा पर ऐसे विज्ञापनों के प्रसारण पर रोक लगाती है, जो ग्राहकों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाते हों, किसी नस्ल, जाति, रंग, पंथ या राष्ट्रीयता का उपहास करते हों, या हिंसा या अव्यवस्था को भड़काते हों या कानून का उल्लंघन करते हों।

केबल टेलीविजन नेटवर्क (विनियमन) अधिनियम, 1995 अधिनियम के तहत नियुक्त प्राधिकृत अधिकारी को किसी कार्यक्रम या चैनल के प्रसारण को प्रतिबंधित करने का अधिकार देता है, यदि वह कार्यक्रम संहिता या विज्ञापन संहिता के अनुरूप नहीं है; या यदि यह विभिन्न धार्मिक, नस्लीय, भाषाई या क्षेत्रीय समूहों के बीच वैमनस्य या

शत्रुता, घृणा या दुर्भावना की भावनाओं को बढ़ावा देने की संभावना रखता है; या सार्वजनिक शांति को भंग करने की संभावना रखता है। इसके अलावा, केंद्र सरकार को भारत की संप्रभुता, अखंडता या सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था के हित में किसी भी चैनल या कार्यक्रम के प्रसारण या पुनः प्रसारण को प्रतिबंधित करने का अधिकार है।

viii) **सिनेमैटोग्राफ अधिनियम, 1952** के तहत किसी फिल्म को विभिन्न आधारों पर प्रमाणन देने से इनकार किया जा सकता है, जिसमें यह आधार भी शामिल है कि इससे किसी अपराध को बढ़ावा मिलने की संभावना है या यह भारत की संप्रभुता और अखंडता या सार्वजनिक व्यवस्था के हितों के खिलाफ है।

ix) **सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (आईटी एक्ट)** सार्वजनिक व्यवस्था, या भारत की संप्रभुता और अखंडता के हित में या किसी संज्ञेय अपराध के लिए उकसावे को रोकने के उद्देश्य से अधिकारियों द्वारा सूचना के अवरोधन की अनुमति देता है। इसी अधिनियम की धारा 66-ए जो "बेहद आक्रामक" या "धमकी देने वाले चरित्र" वाली या यह जानते हुए भी कि यह झूठी है, झुंझलाहट, असुविधा, खतरा, बाधा, अपमान, आपराधिक धमकी, दुश्मनी, घृणा या दुर्भावना पैदा करने के लिए भेजी गई सूचना को दंडित करने की मांग करती है, को श्रेया सिंघल मामले में अन्य बातों के साथ-साथ अस्पष्टता के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

x) भारतीय प्रेस परिषद (प्रेस परिषद अधिनियम, 1978 के तहत गठित) द्वारा जारी **पत्रकारिता आचरण मानदंड, 2010** में सांप्रदायिक घटनाओं की रिपोर्टिंग पर व्यापक दिशानिर्देश शामिल हैं।

उपरोक्त सभी विधियों में भाषण की विषय-वस्तु को नियंत्रित करने का प्रयास किया गया है, जब वह न केवल सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा, बल्कि किसी भी साधारण नागरिक द्वारा, चाहे वह प्रसार के किसी भी माध्यम से व्यक्त किया गया हो।

16.6. 267 वें विधि आयोग की सिफारिशों में से एक यह थी कि 'नफरत फैलाने वाले भाषण' से निपटने के लिए द०प्र०सं० में धारा 153 सी और 505 ए तथा संबंधित प्रावधान शामिल किए जाएं। विधि आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, प्रस्तावित प्रावधान इस प्रकार होंगे:

"153-सी- जो कोई धर्म, मूलवंश, जाति या समुदाय, लिंग, लैंगिक पहचान, लैंगिक रुझान, जन्म स्थान, निवास, भाषा, विकलांगता या जनजाति के आधार पर-

(क) किसी व्यक्ति को भयभीत या चिंतित करने के इरादे से उसके कान या आंख के सामने लिखित या मौखिक रूप से गंभीर रूप से धमकी भरे शब्दों, संकेतों, दृश्य चित्रणों का उपयोग करता है; या

(ख) मौखिक या लिखित शब्दों, संकेतों, दृश्य चित्रणों द्वारा घृणा का प्रचार करना जिससे हिंसा भड़कती है, उसे दो वर्ष तक के कारावास और 5000 रुपए तक के जुर्माने या दोनों से दंडित किया जा सकता है।"

"505-ए- कुछ मामलों में भय, आतंक या हिंसा का उकसावा पैदा करना: जो कोई भी सार्वजनिक रूप से जानबूझकर धर्म, मूलवंश, जाति या समुदाय, लिंग, लैंगिक रुझान, जन्म स्थान, निवास, भाषा, विकलांगता या जनजाति के आधार पर ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है या कोई लेखन, संकेत या अन्य दृश्य चित्रण प्रदर्शित करता है जो **गंभीर रूप से धमकी भरा या अपमानजनक** है;

(i) किसी व्यक्ति की सुनने या देखने की क्षमता के भीतर, भय या चिंता उत्पन्न करना, या;

(ii) उस व्यक्ति या किसी अन्य के विरुद्ध गैरकानूनी हिंसा के प्रयोग को भड़काने के इरादे से, उसे एक वर्ष तक के कारावास और/या 5000 रुपये तक के जुर्माने या दोनों से दंडित किया जाएगा।

धारा 505-ए के तहत प्रस्तावित प्रावधान न केवल उस भाषण को नियंत्रित करने का प्रयास करता है जो संभावित रूप से हिंसा भड़का सकता है या किसी समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुंचा सकता है या राष्ट्रीय अखंडता को नुकसान पहुंचा सकता है, बल्कि धर्म, नस्ल, जाति या समुदाय, लिंग, लैंगिक अभिविन्यास, जन्म स्थान, निवास, भाषा, विकलांगता या जनजाति के आधार पर की गई

धमकी या अपमानजनक टिप्पणियों को भी रोकने का प्रयास करता है, और जो डर या चिंता का कारण बनती हैं। जबकि पूर्व श्रेणी के भाषण को पारंपरिक रूप से 'घृणास्पद भाषण' के रूप में माना जाता है, आम तौर पर धर्म, नस्ल, जाति या समुदाय, लिंग, लैंगिक अभिविन्यास, जन्म स्थान, निवास, भाषा, विकलांगता या जनजाति के आधार पर किए गए कटु या 'अपमानजनक' बयानों को पारंपरिक रूप से 'घृणास्पद भाषण' के रूप में योग्य नहीं माना जाता है, भले ही ऐसे बयान कितने भी अनुचित या अपमानजनक क्यों न हों।

16.7. परंपरागत रूप से, 'घृणास्पद भाषण' शब्द का इस्तेमाल ऐसे भाषण का वर्णन करने के लिए किया जाता है जो संभावित रूप से किसी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हाशिए पर होने के माध्यम से वास्तविक भौतिक नुकसान पहुंचा सकता है, जैसा कि इस न्यायालय ने **प्रवासी भलाई संगठन** में घोषित किया है। हालाँकि, वर्तमान मामले में, मेरी राय में, हम अपमानजनक, कटु और अपमानजनक भाषण के अधिक व्यापक क्षेत्र से चिंतित हैं, जो वास्तव में 'घृणास्पद भाषण' नहीं है जैसा कि पारंपरिक रूप से परिभाषित और समझा जाता है। मैं ऐसे भाषण से चिंतित हूँ जो किसी समुदाय के व्यवस्थित भेदभाव और अंततः राजनीतिक हाशिए पर होने से जुड़ा नहीं हो सकता है, लेकिन फिर भी जो "हम भारत के लोगों" द्वारा पोषित मानवीय गरिमा, सामाजिक सामंजस्य, बंधुत्व और समानता के मूल्यों की सामाजिक धारणा पर घातक प्रभाव डाल सकता है।

16.8. एंड्रयू एफ. सेलर्स ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अपने निबंध में, जिसका शीर्षक 'डिफाइनिंग हेट स्पीच' है, विभिन्न लोकतांत्रिक क्षेत्रों में 'घृणास्पद भाषण' की अवधारणा की जांच की है। लेखक ने पहचाना है कि कुछ टिप्पणियाँ, जो शब्द के सख्त अर्थ में 'घृणास्पद भाषण' नहीं हो सकती हैं, उक्त शब्द के करीब हैं। यहां तक कि वक्ता के नुकसान पहुंचाने के इरादे के मौन तत्व भी घृणास्पद भाषण की कुछ प्रजातियों का गठन कर सकते हैं। इरादे का मतलब गैर-भौतिक पहलुओं से हो सकता है जैसे कि अपमानित करना, बदनाम करना, अपमानित करना, या उत्पीड़न करना, उपेक्षा करना या घृणा करना। लेखक ने यह भी माना है कि कुछ संदर्भों में, "घर पर भाषण" खुद ही घृणास्पद भाषण के बराबर हो सकते हैं क्योंकि ऐसे भाषण अब इंटरनेट आदि के माध्यम से आभासी दुनिया में अपलोड और प्रसारित किए जा सकते हैं। एकमात्र पूर्वापेक्षा यह है कि भाषण का कोई मुक्तिदायक उद्देश्य नहीं होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि "भाषण मुख्य रूप से घृणा, शत्रुता और दुर्भावना के अलावा कोई अन्य अर्थ नहीं रखता है।

"'घृणास्पद भाषण' से परे:

17. जैसा कि ऊपर बताया गया है, 'घृणास्पद भाषण' के व्यापक दायरे में न केवल 'घृणास्पद भाषण' शामिल होगा, जिसे किसी समुदाय के व्यवस्थित भेदभाव और अंततः राजनीतिक हाशिए पर धकेलने के उद्देश्य से किया गया भाषण माना जाता है,

बल्कि इसमें अन्य प्रकार के अपमानजनक, कटु और अपमानजनक भाषण भी शामिल होंगे।

18. अपमानजनक, कटु और अपमानजनक भाषण को नियंत्रित करने और संयमित करने के लिए एक दार्शनिक औचित्य प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक और लेखक लाउ त्ज़ु द्वारा निम्नलिखित शब्दों में बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है:

> "अपने विचारों पर ध्यान दें; वे शब्द बन जाते हैं।
>
> अपने शब्दों पर ध्यान दें; वे कार्य बन जाते हैं।
>
> अपने कार्यों पर ध्यान दें; वे आदत बन जाते हैं।
>
> अपनी आदतों पर ध्यान दें; वे आपका चरित्र बन जाती हैं।
>
> अपने चरित्र पर ध्यान दें; यह आपकी नियति बन जाती है।"

19. अपमानजनक और नीचा दिखाने वाले भाषण पर प्रतिबंधों को उचित ठहराने वाले सैद्धांतिक और मतसंबंधी आधार दो प्राथमिक कारकों में खोजे जा सकते हैं: एक मूल्य के साथ-साथ अधिकार के रूप में मानव गरिमा; 'समानता' और 'बंधुत्व' के प्रस्तावना के लक्ष्य।

भारत के संविधान के तहत मानव गरिमा मूल्य के साथ-साथ एक अधिकार के रूप में:

20. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, मानव गरिमा न केवल एक मूल्य है बल्कि एक अधिकार है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत लागू करने योग्य है। मानव-गरिमा-आधारित लोकतंत्र में, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग इस

तरह से किया जाना चाहिए जिससे साथी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और संवर्धन हो सके।

अंतर्राष्ट्रीय अभ्यास:

21. जिस व्यक्ति/व्यक्तियों के विरुद्ध अपमानजनक बयान दिए गए हैं, उनकी स्वायत्तता, गरिमा और आत्म-सम्मान के आधार पर, स्वतंत्र भाषण पर प्रतिबंधों को उचित ठहराने के प्रयास में, इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय अभ्यास का संदर्भ दिया जा सकता है।

i) **कनाडा:** इस विषय पर कनाडाई न्यायशास्त्र मानव गरिमा की सर्वोच्च मूल्य के रूप में उसकी अनुल्लंघनीयता के आधार पर आगे बढ़ता है और व्यक्तिगत सम्मान के अधिकार की रक्षा के लिए आवश्यक होने पर विशेष रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित करता है। कनाडाई दृष्टिकोण बहुसंस्कृतिवाद और समूह समानता पर जोर देता है, क्योंकि यह सांस्कृतिक विविधता पर अधिक जोर देता है और एक जातीय मोज़ेक के विचार को बढ़ावा देता है। दिलचस्प बात यह है कि कनाडाई स्थिति, जैसा कि **आर बनाम जेम्स कीगस्ट्रा, (1990) 3 एससीआर 697 ("कीगस्ट्रा") (कनाडा)** में कनाडाई सुप्रीम कोर्ट के फैसले से स्पष्ट है, लक्षित समूहों और गैर-लक्षित समूहों दोनों पर अभद्र भाषा के संभावित प्रभाव पर विचार करती है। पूर्व को अपमानित और अपमानित होने की संभावना है और बड़े समाज में उनके आत्म-सम्मान और स्वीकृति की भावना को चोट पहुंचने

का अनुभव हो सकता है और परिणामस्वरूप, वे राजनीति के भीतर दूसरे समूह के सदस्यों के साथ संपर्क से बच सकते हैं। दूसरी ओर, समूह के गैर-लक्षित सदस्य, जो कभी-कभी बड़े पैमाने पर समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, धीरे-धीरे असंवेदनशील हो सकते हैं और लंबे समय में नस्लीय और धार्मिक समूहों के प्रति निर्देशित घृणा के संदेशों को स्वीकार करना और उन पर विश्वास करना शुरू कर सकते हैं। ये कपटी प्रभाव केवल हिंसा के लिए तत्काल खतरों को पेश करने के बजाय लंबे समय में सामाजिक सामंजस्य के लिए गंभीर खतरे पैदा करते हैं।

इसके अलावा, **कनाडा मानवाधिकार आयोग बनाम टेलर, (1990) 3 एससीआर 892 ("टेलर") (कनाडा)** में कनाडाई सुप्रीम कोर्ट के डिक्सन सीजे ने घृणा प्रचार के संदेशों और सम्मान और समानता के मूल्यों के बीच अंतर्संबंध के संबंध में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

> "...घृणा फैलाने वाले संदेश लक्षित समूह के सदस्यों की गरिमा और आत्म-सम्मान को कमजोर करते हैं और, अधिक सामान्य रूप से, विभिन्न नस्लीय, सांस्कृतिक और धार्मिक समूहों के बीच असंगत संबंधों में योगदान करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सहिष्णुता और खुले विचारों को नुकसान पहुंचता है, जो एक बहुसांस्कृतिक समाज में पनपना चाहिए जो समानता के विचार के लिए प्रतिबद्ध है।"

ii) **ऑस्ट्रेलिया:** ऑस्ट्रेलिया में कानून की स्थिति काफी हद तक कनाडा के कानून के अनुरूप है। **पैट ईटॉक बनाम एंड्रयू बोल्ट, (2011) FCA 1103 ("पैट ईटॉक") (ऑस्ट्रेलिया)** के मामले में ऑस्ट्रेलियाई संघीय न्यायालय ने कीगस्ट्रा के कथन का पालन करते हुए कहा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को ऐसे कानून के ज़रिए प्रतिबंधित किया जा सकता है जो नस्लीय घृणा को एक आपराधिक अपराध बनाता है। ऑस्ट्रेलियाई संघीय न्यायालय ने कहा कि स्वतंत्र भाषण को प्रतिबंधित करने वाले कानून का औचित्य इस प्रकार था:

"(ए) सत्य की खोज का औचित्य घृणा प्रचार के संरक्षण का समर्थन नहीं करता है, और सत्य की हमारी खोज को भी नुकसान पहुंचा सकता है। एक कथन जितना अधिक गलत या झूठा होगा, सत्य की खोज में उसका मूल्य उतना ही कम होगा। हमें इस बात पर अधिक जोर नहीं देना चाहिए कि तर्कसंगतता सभी झूठों पर विजय प्राप्त करेगी।

(ख) आत्म-पूर्ति और स्वायत्तता, काफी हद तक, किसी सांस्कृतिक या धार्मिक समूह की सदस्यता के आधार पर पहचान को स्पष्ट करने और पोषित करने की क्षमता से आती है। इस मूल्य को मुक्त अभिव्यक्ति को बढ़ावा देने की सीमा तक नियंत्रित किया जाना चाहिए, क्योंकि यह व्यक्तिगत आत्म-विकास और मानव

उत्कर्ष की प्रक्रिया के प्रति असहिष्णुता और पूर्वाग्रहपूर्ण उपेक्षा की वकालत करता है।

(सी) लोकतंत्र में भागीदारी का औचित्य तब कमज़ोर पड़ता है जब अभिव्यक्ति का इस्तेमाल लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रतिकूल विचारों को प्रचारित करने के लिए किया जाता है, जिससे लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता कमज़ोर होती है। नफ़रत भरा प्रचार लोकतंत्र को तहस-नहस करने वाले समाज और समूह पहचान के आधार पर व्यक्तियों को सम्मान और गरिमा से वंचित करने की वकालत करता है।"

iii) **दक्षिण अफ्रीका:** दक्षिण अफ्रीका में गरिमा को सर्वोच्च संवैधानिक मूल्य मानने वाली स्थिति को मान्यता दी गई है। संवैधानिक न्यायालय ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को दबाने की इच्छा व्यक्त की है, जब वह गरिमा को पर्याप्त रूप से कमज़ोर करती है। इसलिए, संवैधानिक प्रावधान विधायिका और न्यायालय को स्वतंत्र भाषण अधिकारों और उन अधिकारों के प्रयोग को सीमित करने का आदेश देता है जो दूसरों को गरिमा से वंचित करते हैं।

iv) **जर्मनी:** इस विषय पर जर्मन कानून यह मानता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कई अधिकारों में से एक है जो समानता, गरिमा और बहुसंस्कृतिवाद के सिद्धांतों द्वारा सीमित है। इसके अलावा, व्यक्तिगत

> सम्मान का मूल्य हमेशा झूठ बोलने या उनके झूठ होने के ज्ञान के साथ किए गए तथ्यों को बोलने के अधिकार पर विजय प्राप्त करता है। इसके अलावा, यदि तथ्य के सच्चे कथन किसी व्यक्ति के अंतरंग व्यक्तिगत क्षेत्र पर आक्रमण करते हैं, तो व्यक्तिगत सम्मान का अधिकार भाषण की स्वतंत्रता पर विजय प्राप्त करता है। यदि किसी तथ्य के विपरीत राय की अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति की गरिमा के लिए गंभीर अपमान है, तो गरिमा का मूल्य भाषण पर विजय प्राप्त करता है। इसलिए, जर्मन आवेदन अधिकारों और कर्तव्यों के बीच, एक तरफ व्यक्ति और समुदाय के बीच और दूसरी तरफ वक्ता की आत्म-अभिव्यक्ति आवश्यकताओं और श्रोताओं के आत्म-सम्मान और गरिमा के बीच संतुलन बनाता है। यह सामग्री-आधारित भाषण विनियमन को मान्यता देता है और तथ्य और राय के बीच अंतर को भी पहचानता है।

भारतीय संविधान के अंतर्गत 'मानव गरिमा' की अपरिहार्यता बनाम वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार:

> 22. **चारु खुराना बनाम भारत संघ, (2015) 1 एससीसी 192 ("चारु खुराना")** में , इस न्यायालय ने घोषित किया कि गरिमा व्यक्तित्व का सर्वोत्कृष्ट गुण है और अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत और संरक्षित अधिकारों का एक बुनियादी घटक है। गरिमा व्यक्तिगत अधिकारों का एक हिस्सा है जो समाज के सामूहिक सद्भाव और हित का मूल आधार बनती है। जबकि वाक् और अभिव्यक्ति का अधिकार पूरी तरह

से पवित्र है, अनुच्छेद 21 के एक भाग के रूप में गरिमा का अपना महत्व है। किसी व्यक्ति की गरिमा को किसी अन्य की प्रतिष्ठा को धूमिल करने और नष्ट करने के लिए द्वेष और घृणित और भ्रष्ट हमलों द्वारा खत्म नहीं किया जा सकता है और यह कहकर धूमिल नहीं किया जा सकता है कि यह वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है।

इसके अलावा, **इन रे. नॉइज़ पॉल्यूशन (V), (2005) 5 एससीसी 733** में यह देखा गया कि अनुच्छेद 19(1)(ए) को अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार को हराने के औचित्य के रूप में उद्धृत नहीं किया जा सकता है। कोई व्यक्ति बोलकर अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत शांतिपूर्ण, आरामदायक और (ध्वनि) प्रदूषण मुक्त वातावरण का आनंद लेने के दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकता है।

इस न्यायालय की इस स्पष्ट घोषणा को ध्यान में रखते हुए कि अनुच्छेद 21 को स्वतंत्र भाषण अधिकारों के व्यापक आयाम को सुरक्षित करने की वेदी पर बलिदान नहीं किया जा सकता है, यह आधार अपमानजनक और नीचा दिखाने वाले भाषण पर प्रतिबंध लगाने के लिए एक सैद्धांतिक औचित्य के रूप में काम कर सकता है। अनुच्छेद 21 के सुरक्षात्मक छत्र के तहत प्राथमिक तत्व होने के नाते मानवीय गरिमा को अपमानजनक भाषण के कारण नकारात्मक रूप से नहीं बदला जा सकता है, जो व्यक्तियों को असमान के रूप में चिह्नित करता है और उन्हें अपमानित करता है जिससे अपमान होता है।

23. कानून के शासन में कुछ न्यूनतम आवश्यकताएँ शामिल हैं जिनके बिना कोई कानूनी व्यवस्था अस्तित्व में नहीं रह सकती। प्रसिद्ध अमेरिकी कानूनी दार्शनिक प्रोफेसर लोन एल. फुलर ने इन आवश्यकताओं को सामूहिक रूप से 'कानून की आंतरिक नैतिकता' के रूप में वर्णित किया है। कानून के शासन की अवधारणा की ऐसी समझ कानून के शासन द्वारा शासित समाज में व्यक्तिगत गरिमा की केंद्रीयता पर बहुत जोर देती है। इज़राइल के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति अहरोन बराक ने कानून के शासन के इस पहलू को निम्नलिखित तरीके से स्पष्ट रूप से समझाया है:

> "कानून का शासन केवल सार्वजनिक व्यवस्था नहीं है, कानून का शासन सार्वजनिक व्यवस्था पर आधारित सामाजिक न्याय है। कानून उचित सामाजिक जीवन सुनिश्चित करने के लिए मौजूद है। हालाँकि, सामाजिक जीवन अपने आप में एक लक्ष्य नहीं है, बल्कि व्यक्ति को गरिमा के साथ जीने और खुद को विकसित करने की अनुमति देने का एक साधन है। मानव और मानवाधिकार कानून के शासन की इस मूल धारणा के अंतर्गत आते हैं, जिसमें विभिन्न अधिकारों और मानवाधिकारों और समाज की उचित आवश्यकताओं के बीच उचित संतुलन होता है। **कानून का मूल शासन "उचित कानून का शासन है, जो समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं को संतुलित करता है"। यह कानून का शासन है जो एक ओर समाज की राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता, आर्थिक विकास और आंतरिक व्यवस्था की आवश्यकता और दूसरी ओर व्यक्ति की आवश्यकताओं, उसकी व्यक्तिगत**

> **स्वतंत्रता और उसकी मानवीय गरिमा के बीच संतुलन बनाता है। न्यायाधीश को कानून के शासन की इस समृद्ध अवधारणा की रक्षा करनी चाहिए।"**
>
> **(मेरे द्वारा जोर दिया गया)**

24. जैसा कि इस न्यायालय ने **केएस पुट्टस्वामी (सेवानिवृत्त) बनाम भारत संघ, (2019) 1 एससीसी 1 ("पुट्टस्वामी")** में माना है, कानून के शासन का एक महत्वपूर्ण पहलू व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन है। उस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने हमारी संवैधानिक योजना के तहत संवैधानिक अधिकारों के दायरे और उनकी सुरक्षा की सीमा पर चर्चा की। इस बात पर जोर देते हुए कि कोई पूर्ण संवैधानिक अधिकार नहीं हैं, इस न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में निर्धारित किया कि एकमात्र अधिकार जिसे "पूर्ण" माना जाता है, वह है मानवीय गरिमा का अधिकार:

> 62. **अब यह लगभग स्वीकार कर लिया गया है कि कोई भी पूर्ण संवैधानिक अधिकार नहीं है [हालांकि, इस विवादास्पद मुद्दे पर बहस अभी भी जारी है और कुछ संवैधानिक विशेषज्ञों का दावा है कि कुछ अधिकार हैं, हालांकि बहुत कम, जिन्हें अभी भी "पूर्ण" माना जा सकता है। दिए गए उदाहरण हैं: (ए) मानव गरिमा का अधिकार जो अनुल्लंघनीय है,** (बी) अपकृत्य या अमानवीय या अपमानजनक उपचार या दंड के अधीन न होने का अधिकार। ऐसे अधिकारों के संबंध में भी, एक सोच है कि व्यापक सार्वजनिक हित में, उनकी सुरक्षा की सीमा को कम किया जा सकता है। हालाँकि, अब तक राज्यों के

ऐसे प्रयासों को न्यायपालिका द्वारा विफल कर दिया गया है।] और ऐसे सभी अधिकार संबंधित हैं। अहरोन बराक के विश्लेषण के अनुसार [अहारोन बराक, आनुपातिकता: संवैधानिक अधिकार और उनकी सीमाएँ (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 2012)।], सकारात्मक संवैधानिक अधिकारों को इसकी सीमाओं के साथ मान्यता देने के आधुनिक संवैधानिक सिद्धांत को विकसित करने में दो प्रमुख तत्व लोकतंत्र और कानून के शासन की धारणाएँ हैं। इस प्रकार, एक उप-संवैधानिक कानून यानी क़ानून द्वारा संवैधानिक अधिकारों की आनुपातिक सीमाओं की आवश्यकता, लोकतंत्र की अवधारणा की व्याख्या से ही ली गई है। जहाँ तक भारतीय संविधान का सवाल है, लोकतंत्र को संविधान की मूल विशेषता माना जाता है और इसे विशेष रूप से एक संवैधानिक दर्जा दिया जाता है जिसे संविधान की प्रस्तावना में ही मान्यता दी गई है। यह भी पूरी तरह से स्वीकार किया जाता है कि लोकतंत्र की इस अवधारणा में मानवाधिकार शामिल हैं जो भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है। एक बार जब हम उपरोक्त सिद्धांत को स्वीकार कर लेते हैं (और इसका कोई खंडन नहीं हो सकता है), तो यह भी स्वीकार करना होगा कि लोकतंत्र संवैधानिक अधिकारों और सार्वजनिक हितों के बीच संतुलन पर आधारित है। वास्तव में, अनुच्छेद 19 में ही ऐसा प्रावधान एक ओर अनुच्छेद 19 के खंड (1) में कुछ निश्चित स्वतंत्रताओं की गारंटी देता है और साथ ही राज्य को सार्वजनिक हित में उन स्वतंत्रताओं पर उचित प्रतिबंध लगाने का अधिकार देता है। यह

अवधारणा आधुनिक संवैधानिक सिद्धांत को स्वीकार करती है कि संवैधानिक अधिकार सापेक्ष हैं। इस सापेक्षता का अर्थ यह है कि उन अधिकारों को सीमित करने का संवैधानिक अनुज्ञप्ति प्रदान किया जाता है, जहां ऐसी सीमाएं सार्वजनिक हित या दूसरों के अधिकारों की रक्षा के लिए उचित होंगी। संविधान में अधिकार और उसकी सीमा दोनों की यह घटना लोकतंत्र के दो मूलभूत तत्वों के बीच अंतर्निहित तनाव का उदाहरण है। एक ओर अधिकार का तत्व है, जो वास्तविक लोकतंत्र का एक मूलभूत घटक है; दूसरी ओर लोगों का तत्व है, जो अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से उन्हीं अधिकारों को सीमित करता है। ये दोनों लोकतंत्र की अवधारणा के एक मूलभूत घटक का गठन करते हैं, हालांकि इस बार इसके औपचारिक पहलू में। इस तनाव को कैसे हल किया जा सकता है? इसका उत्तर यह है कि संविधान से "हारने" वाले पहलू को समाप्त करके इस तनाव को हल नहीं किया जा सकता है। बल्कि, इस तनाव को प्रतिस्पर्धी सिद्धांतों के उचित संतुलन के माध्यम से हल किया जा सकता है। यह लोकतंत्र की बहुआयामी प्रकृति की अभिव्यक्तियों में से एक है। वास्तव में, लोकतंत्र के विभिन्न पहलुओं के बीच अंतर्निहित तनाव एक "रचनात्मक तनाव" है। यह प्रत्येक पहलू को दूसरों के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से सह-अस्तित्व में विकसित होने में सक्षम बनाता है। इस शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका प्रतिस्पर्धी हितों के बीच संतुलन बनाना है। ऐसा संतुलन प्रत्येक पहलू को दूसरे पहलुओं के

> साथ विकसित होने में सक्षम बनाता है, न कि उनके स्थान पर। **दो बुनियादी पहलुओं - एक तरफ अधिकार और दूसरी तरफ उसकी सीमाएं - के बीच इस तनाव को दोनों के बीच संतुलन बनाकर हल किया जाना चाहिए ताकि वे एक दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्ण ढंग से सह-अस्तित्व में रहें। यह संतुलन उचित संदर्भ में विचार किए जाने पर प्रत्येक प्रतिस्पर्धी पहलू के सापेक्ष सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।**
>
> **[मेरे द्वारा जोर दिया गया]**

25. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस समय विचारों के मुक्त प्रवाह और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रति हमारी चिंता को समानता और मानवीय गरिमा को आगे बढ़ाने की हमारी इच्छा के साथ संतुलित करने की कवायद में संलग्न होना आवश्यक नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि दो प्रतीत होने वाले प्रतिस्पर्धी अधिकारों, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार और मानवीय गरिमा और समानता के अधिकार के बीच टकराव के बारे में कोई सवाल ही नहीं उठेगा। इसका कारण यह है कि जिस संयम की आवश्यकता है, वह केवल अनियंत्रित, अपमानजनक, कटु भाषण के संबंध में है, जिसे किसी भी तरह से विचारों के प्रदर्शन का अनिवार्य हिस्सा नहीं माना जा सकता है, जिसका सामाजिक मूल्य बहुत कम है। यह प्रवचन किसी भी तरह से शांतिपूर्ण असहमति रखने वालों के लिए संभावित खतरा पैदा करने का प्रयास नहीं करता है, जो आलोचनात्मक, लेकिन मापा हुआ तरीके से वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपने अधिकार का प्रयोग करते हैं।

वर्तमान मामले विशेष रूप से अपमानजनक, नीचा दिखाने वाले भाषण से संबंधित हैं, जो घृणास्पद भाषण से काफी मिलता-जुलता है। ऐसा भाषण अनुच्छेद 19(1)(ए) की सुरक्षात्मक परिधि में नहीं आता है और यह स्वतंत्र भाषण अधिकार की सामग्री का गठन नहीं करता है। इसलिए, जब इस तरह के भाषण का प्रभाव किसी अन्य व्यक्ति के अनुच्छेद 21के तहत मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने का होता है, तो यह ऐसा मामला नहीं बनता है जिसमें परस्पर विरोधी अधिकारों के संतुलन की आवश्यकता होती है, बल्कि ऐसा मामला बनता है जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग करके दूसरे के मौलिक अधिकारों पर हमला किया गया हो।

'समानता' और 'भ्रातृत्व' के प्रस्तावनागत लक्ष्य:

26. समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व हमारे संविधान की प्रस्तावना में निहित आधारभूत मूल्य हैं। 'घृणास्पद भाषण', जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, इन आधारभूत मूल्यों में से प्रत्येक पर प्रहार करता है, तथा समाज को असमान बताता है। यह विविध पृष्ठभूमियों से आए नागरिकों के बीच बंधुत्व का भी उल्लंघन करता है, जो भारत जैसे बहुलता और बहु-संस्कृतिवाद पर आधारित एक सुसंगठित समाज की अनिवार्य शर्त है।

27. बंधुत्व इस विचार पर आधारित है कि नागरिकों की एक दूसरे के प्रति पारस्परिक जिम्मेदारियाँ होती हैं। यह शब्द अपने दायरे में सहिष्णुता, सहयोग और पारस्परिक सहायता के आदर्शों को भी शामिल करता है।

27.1 आपराधिक मानहानि और वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों के संदर्भ में बंधुत्व शब्द के अर्थ की जांच इस न्यायालय द्वारा **सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ, (2016) 7 एससीसी 221 ("सुब्रमण्यम स्वामी")** में की गई थी, जिसमें यह देखा गया था कि संविधान के तहत बंधुत्व प्रत्येक नागरिक से दूसरे की गरिमा का सम्मान करने की अपेक्षा करता है। पारस्परिक सम्मान बंधुत्व का आधार है जो गरिमा का आश्वासन देता है। इस न्यायालय ने अपनी टिप्पणियों को इस चेतावनी के साथ स्पष्ट किया कि 'बंधुत्व' का अर्थ यह नहीं है कि असहमति या मतभेद नहीं हो सकते हैं, और भी अधिक इसलिए क्योंकि सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। हालांकि, यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया था कि एक संवैधानिक मूल्य जो बंधुत्व के विचार में अंतर्निहित है, वह व्यक्ति की गरिमा है प्रस्तावना जानबूझकर बंधुत्व के संदर्भ में व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करने का विकल्प चुनती है और इसलिए, भाग III में निहित अधिकारों का प्रयोग व्यक्तियों द्वारा बंधुत्व के आदर्श की पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने पाया कि बंधुत्व का आदर्श संविधान के भाग IVA में भी प्रतिध्वनित होता है। संवैधानिक बंधुत्व की अवधारणा की कसौटी पर आपराधिक मानहानि पर कानून की अनुमति को बरकरार रखते हुए, इस न्यायालय ने दीपक मिश्रा, जे.

(जैसा कि तब उनके लॉर्डशिप थे) के माध्यम से वर्णित करते हुए पैराग्राफ 155 और 163 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "155. **यह एक संवैधानिक मूल्य है जिसे लोगों को अपने सामाजिक व्यवहार के एक हिस्से के रूप में खुद ही विकसित करना चाहिए।** इस बारे में दो विचारधाराएँ हैं; एक व्यक्तिगत उदारीकरण का प्रचार करती है और दूसरी सामूहिक सदस्य के रूप में व्यक्ति की सुरक्षा की वकालत करती है। व्यक्ति को संविधान के तहत सभी अधिकार होने चाहिए लेकिन साथ ही साथ उसे संवैधानिक मूल्यों जैसे आवश्यक भाईचारे-बंधुत्व-का पालन करने की जिम्मेदारी भी है जो सामाजिक हित को मजबूत करता है। बंधुत्व का अर्थ है भाईचारा और साझा हित। निंदा और आलोचना करने का अधिकार बंधुत्व को बढ़ावा देने के संवैधानिक उद्देश्य के साथ संघर्ष नहीं करता है। भाईचारा आलोचना की अवधारणा को निरस्त या रद्द नहीं करता है। वास्तव में, भाई आलोचनात्मक हो सकते हैं और होना भी चाहिए। दोष ढूँढना और असहमति तब भी आवश्यक है जब इससे व्यक्तिगत बेचैनी या समूह बेचैनी हो। कुछ लोगों की ओर से दुश्मनी भाईचारे के विचार में कोई कमी नहीं लाती है लेकिन,

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि असहमति जताने की स्वतंत्रता दूसरों को बदनाम करने का अधिकार नहीं देती है।"

"163. हमने दो अवधारणाओं का उल्लेख किया है, अर्थात् संवैधानिक बंधुत्व और मौलिक कर्तव्य, क्योंकि वे मूल संवैधानिक मूल्यों का गठन करते हैं। दूसरे की गरिमा का सम्मान एक संवैधानिक मानदंड है। **यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि संवैधानिक बंधुत्व और मौलिक कर्तव्य में निहित अंतर्निहित मूल्य एक दूसरे की गरिमा के लिए पारस्परिक सम्मान और चिंता के संवैधानिक आश्वासन की घोषणा करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत हित सामूहिक हित की सेवा करता है और तदनुसार सामूहिक हित व्यक्तिगत उत्कृष्टता को बढ़ाता है। राज्य के खिलाफ कार्रवाई एक नागरिक द्वारा दूसरे के खिलाफ की गई कार्रवाई से अलग है। संवैधानिक मूल्य व्यक्तिगत और साथ ही सामुदायिक हित को संरचित करने में मदद करते हैं। संवैधानिक मूल्यों का सम्मान किए जाने पर व्यक्तिगत हित दृढ़ता से स्थापित होता है। प्रस्तावना विभिन्न और भिन्न अधिकारों को संतुलित करती है। संवैधानिक मूल्य को ध्यान में रखते हुए, विधायिका ने धारा 499 को निरस्त नहीं किया है और इसे आपराधिक अपराध के रूप में जीवित**

> **रखा है।** विभिन्न स्पेक्ट्रमों से अध्ययन किए गए विश्लेषण से, इस निष्कर्ष पर पहुंचना मुश्किल है कि आपराधिक मानहानि का अस्तित्व वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए बिल्कुल अप्रिय है। एक नुस्खे के रूप में, यह न तो संविधान के किसी अनुच्छेद का उल्लंघन करता है और न ही इसका अस्तित्व ही अनुचित प्रतिबंध माना जा सकता है।"

(मेरे द्वारा जोर दिया गया)

27.2. **सुब्रमण्यम स्वामी** में इस न्यायालय का निर्णय भाईचारे को बढ़ावा देने के आधार पर स्वतंत्र भाषण पर प्रतिबंध को उचित ठहराने का एक उदाहरण स्थापित करता है। यह माना गया है कि बंधुत्व का संवैधानिक मूल्य सभी नागरिकों पर सामूहिक हितों की सेवा करने तथा साथी नागरिकों की गरिमा और समानता का सम्मान करने का दायित्व डालता है। इन उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए निर्धारित स्वतंत्र भाषण पर प्रतिबंधों को उचित माना गया है, क्योंकि इनका उद्देश्य बंधुत्व के प्रस्तावना के आदर्श को संरक्षित करना है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय ने उक्त मामले में माना है कि बंधुत्व को एक मूल्य के रूप में नागरिकों द्वारा स्वयं अपने सामाजिक व्यवहार के एक भाग के रूप में अपमानजनक बयान देने से परहेज करके विकसित किया जाना चाहिए। उक्त निर्णय का यह अंश , आत्म-

संयम या अंतर्निहित प्रतिबंधों के विचार को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में शामिल किए जाने के रूप में स्वीकार करता है।

27.3. लोकतंत्र हमारे संविधान की मूलभूत विशेषताओं में से एक है, इसमें यह अंतर्निहित है कि बहुमत से शासन करने पर सुरक्षा और समावेशिता की भावना होगी। इसके अलावा, संविधान की प्रस्तावना में अन्य बातों के साथ-साथ भाईचारे की परिकल्पना की गई है, जो यह आश्वासन देती है कि सार्वजनिक पदाधिकारियों सहित साथी नागरिकों द्वारा दिए जा रहे अनुचित भाषण के माध्यम से व्यक्तियों की गरिमा को ठेस नहीं पहुंचाई जा सकती। इस प्रकार, संविधान की प्रस्तावना और इसके मूल्य भारत के लोगों को न केवल न्याय, स्वतंत्रता, समानता बल्कि भाईचारे और राष्ट्र की एकता और अखंडता का आश्वासन देते हैं, इस देश के प्रत्येक नागरिक को संविधान के उदात्त आदर्शों की याद दिलाते हैं, चाहे वह किसी भी पद, पद या शक्ति पर हो, और उन्हें उनके सच्चे अर्थों में उनका सम्मान करना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए एक अंतर्निहित संवैधानिक जाँच है कि संविधान के मूल्यों को किसी भी तरह से कमतर या उल्लंघन नहीं किया जाता है। अब समय आ गया है कि हम, एक समाज के रूप में और विशेष रूप से एक व्यक्ति के रूप में, संविधान के पवित्र मूल्यों के

> प्रति खुद को फिर से समर्पित करें और उन्हें न केवल अपने व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि व्यापक स्तर पर बढ़ावा दें। कोई भी ऐसा भाषण जो हमारे संविधान के मूल्यों को कमतर आंकता है, हमारे सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों पर चोट पहुंचाएगा।

संविधान के भाग IV-A के अंतर्गत मूल कर्तव्यों को अपमानजनक, अनुचित भाषण पर रोक लगाने के साधन के रूप में प्रयोग करना:

28. प्रत्येक अधिकार में दूसरे के अधिकार का सम्मान करना तथा सामूहिक सद्भाव के आधार पर व्यक्तियों की पारस्परिक अनुकूलता और मिलनसारिता सुनिश्चित करना शामिल है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था बनती है। संविधान के तहत बंधुत्व की अवधारणा प्रत्येक नागरिक से दूसरे की गरिमा का सम्मान करने की अपेक्षा करती है। आपसी सम्मान बंधुत्व का आधार है जो गरिमा सुनिश्चित करता है। संवैधानिक बंधुत्व के संदर्भ में, संविधान के अनुच्छेद 51-ए के तहत निहित मौलिक कर्तव्य महत्व प्राप्त करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 51-ए के उप-खंड (सी), (ई) और (जे) जो इन मामलों के लिए प्रासंगिक हैं, इस प्रकार हैं:

> "अनुच्छेद 51-ए. मूल कर्तव्य-.-भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह-
>
> (क) xxx
>
> (ख) xxx

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुझण रखे;

(घ) xxx

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है;

(च) xxx

(छ) xxx

(ज) xxx

(झ) xxx

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धियों की नईं ऊंचाईयों को छू ले;"

मौलिक कर्तव्य हमारे जैसे लोकतंत्र में अच्छी नागरिकता के लिए मुख्य संवैधानिक मूल्यों का भी गठन करते हैं। ऊपर बताए गए कर्तव्य सभी नागरिकों को भाईचारा, सद्भाव, एकता, सामूहिक कल्याण आदि को बढ़ावा देने का दायित्व सौंपते हैं। मौलिक कर्तव्यों का संवैधानिक लक्ष्यों के साथ गहरा नाता है और इसलिए उन्हें केवल संवैधानिक मानदंडों या उपदेशों के रूप में नहीं बल्कि अधिकारों के सापेक्ष

दायित्वों के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। संक्षेप में, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की स्वीकार्य सामग्री को हमारे संविधान के तहत परिकल्पित भाईचारे और मौलिक कर्तव्यों की कसौटी पर परखा जाना चाहिए।

29. यद्यपि संविधान पीठ के समक्ष विचारणीय प्रश्न, सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा अनुचित और अपमानजनक भाषण पर संभावित प्रतिबंधों के संबंध में थे, फिर भी ऊपर की गई टिप्पणियां सार्वजनिक पदाधिकारियों, मशहूर हस्तियों/प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ-साथ भारत के सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होंगी, क्योंकि प्रौद्योगिकी का उपयोग संचार के माध्यम के रूप में किया जा रहा है, जिसका प्रभाव दुनिया भर में व्यापक है।

30. इंटरनेट संचार क्रांति का प्रतिनिधित्व करता है और इसने हमें दुनिया भर के लाखों लोगों के साथ संवाद करने में सक्षम बनाया है, वह भी एक क्लिक या स्क्रीन पर टच करके, किसी एक व्यक्ति के साथ संवाद करने से ज़्यादा मुश्किल नहीं है। विडंबना यह है कि इंटरनेट के जिन गुणों ने संचार में क्रांति ला दी है, उनका दुरुपयोग भी किया जा सकता है। इंटरनेट ने विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से संदेशों, टिप्पणियों और पोस्ट की गति और पहुंच को इस हद तक बढ़ा दिया है कि एक सेलिब्रिटी और एक आम आदमी के बीच का अंतर, जहां तक उनकी बातों की पहुंच का सवाल है, व्यावहारिक रूप से खत्म हो गया है।

31. तथापि, याचिकाकर्ताओं के इस विशिष्ट निवेदन को देखते हुए कि राजनीतिक प्राधिकार के विभिन्न स्तरों पर व्यक्त किए गए अपमानजनक और कटु

भाषण ने समाज में असहिष्णुता और तनाव के माहौल को बढ़ा दिया है, जो संभवतः असुरक्षा का कारण बन सकता है, इस संबंध में सख्त चेतावनी देना उचित होगा।

32. इस समय माइकल रोसेनफेल्ड के लेखन का संदर्भ देना उचित होगा, जिसमें नफरत फैलाने वाले भाषण के प्रभाव को निर्धारित करने वाले प्रमुख चरों के बारे में बताया गया है। कार्डोजो लॉ रिव्यू में प्रकाशित "हेट स्पीच वउ कॉन्स्टीट्यूशनल ज्यूरिसप्रुडेन्सः ए कम्पेरेटिव एनेलिसिस" शीर्षक वाले अपने शोधपत्र में विद्वान लेखक द्वारा उजागर किए गए प्रमुख चरों में से एक यह सवाल है कि वक्ता **"कौन"** है। विद्वान लेखक ने नोट किया है कि प्रभावशाली व्यक्ति, जैसे कि शीर्ष सरकारी या कार्यकारी पदाधिकारी, विपक्षी नेता, अनुसरण करने वाले राजनीतिक या सामाजिक नेता, या टीवी शो पर एक विश्वसनीय एंकर द्वारा दिया गया भाषण एक आम व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान की तुलना में कहीं अधिक विश्वसनीयता और प्रभाव रखता है।

सार्वजनिक पदाधिकारियों और प्रभावशाली व्यक्तियों तथा मशहूर हस्तियों को अपनी पहुंच, वास्तविक या प्रत्यक्ष अधिकार तथा जनता या उसके एक निश्चित वर्ग पर उनके प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, आम नागरिकों के प्रति यह कर्तव्य है कि वे अपने भाषण में अधिक जिम्मेदार और संयमित रहें। उन्हें अपने शब्दों को समझना और उनका माप लेना चाहिए, जनता की भावना और व्यवहार पर उनके संभावित परिणामों को ध्यान में रखना चाहिए, और साथ ही इस बात से भी अवगत होना चाहिए कि वे साथी नागरिकों के लिए क्या उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

33. जबकि न्यायालय द्वारा स्वीकार्य भाषण की सटीक सीमा को परिभाषित करने के लिए कोई अचूक नियम नहीं बनाए जा सकते हैं, संवैधानिक मूल्यों का पालन करने और संविधान के तहत परिकल्पित संस्कृति को अक्षरशः और भावना से संरक्षित करने के लिए प्रत्येक नागरिक का सचेत प्रयास, अपमानजनक, कटु और अपमानजनक भाषण के कारण सामाजिक कलह, घर्षण और असामंजस्य की घटनाओं को समाप्त करने में महत्वपूर्ण रूप से योगदान देगा, खासकर जब सार्वजनिक पदाधिकारियों और/या सार्वजनिक हस्तियों द्वारा किया जाता है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि आम नागरिक जो इस देश के नागरिकों का बड़ा हिस्सा हैं, वे सार्वजनिक पदाधिकारियों/हस्तियों या सामान्य रूप से अन्य नागरिकों या विशेष व्यक्तियों के खिलाफ अनुच्छेद 19 (2) के तहत उल्लिखित सभी पहलुओं के करीब कटु, अनावश्यक रूप से आलोचनात्मक, शैतानी भाषण के लिए जिम्मेदारी से बच सकते हैं।

34. भारत के प्रत्येक नागरिक को सचेत रूप से बोलने में संयम बरतना चाहिए, और अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग केवल उसी अर्थ में करना चाहिए जिस अर्थ में संविधान निर्माताओं ने इसका प्रयोग करने का इरादा किया था। यह अनुच्छेद 19(1)(ए) की वास्तविक सामग्री है जो नागरिकों को ऐसे बयान देने की बेलगाम स्वतंत्रता नहीं देती है जो कटु, अपमानजनक, अनुचित हैं, जिनका कोई उद्धारक उद्देश्य नहीं है और जो किसी भी तरह से विचारों के संचार के बराबर नहीं हैं। अनुच्छेद 19(1)(ए) एक बहुआयामी

> अधिकार प्रदान करता है, जो राज्य द्वारा हस्तक्षेप से वाक् और अभिव्यक्ति की कई किस्मों की रक्षा करता है। हालांकि, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मानवाधिकार आधारित लोकतंत्र में वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार किसी नागरिक द्वारा दिए गए ऐसे बयानों की रक्षा नहीं करता है जो किसी साथी नागरिक की गरिमा पर प्रहार करते हैं। बंधुत्व और समानता, जो हमारी संवैधानिक संस्कृति का मूल आधार है और जिन पर अधिकारों का ढांचा निर्मित है, ऐसे अधिकारों का इस प्रकार उपयोग करने की अनुमति नहीं देते कि किसी अन्य के अधिकारों पर आक्रमण हो।

श्रीमद्भगवद गीता के अध्याय 17 के श्लोक 15 में बताया गया है कि वाणी का अनुशासन या 'वाङ्मय तप:'

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङमयं तप उच्यते ॥

जो शब्द कष्ट उत्पन्न नहीं करते, सत्य, अहानिकर, सुखदायक और लाभकारी होते हैं, उन्हें वाणी के अनुशासन में शामिल किया जाता है और उनकी तुलना वैदिक शास्त्रों के नियमित पाठ से की जाती है।

35. ऊपर प्रस्तुत चर्चा संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) की विषय-वस्तु तथा उक्त अनुच्छेद के अंतर्गत गारंटीकृत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार से संबंधित अन्य प्रासंगिक मुद्दों पर कुछ विचारों को पुनः जागृत करने के उद्देश्य से थी। हालाँकि,

जहाँ तक प्रश्न संख्या 1 के सारगर्भित विश्लेषण का प्रश्न है, मैं माननीय न्यायाधीश रामसुब्रमण्यम द्वारा प्रस्तावित तर्क और निष्कर्षों से सम्मानपूर्वक सहमत हूँ।

प्रश्न संख्या 2 के संबंध में: क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के अधीन किसी मौलिक अधिकार का दावा "राज्य" या उसके "तंत्रों" के अतिरिक्त अन्य के विरुद्ध किया जा सकता है ?

36. सभी मनुष्यों को जन्म के समय कुछ अविभाज्य अधिकार प्राप्त होते हैं और ऐसे अधिकारों में जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार शामिल है, जिसमें विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी शामिल है। मानव व्यक्तित्व के सर्वोच्च मूल्य को ध्यान में रखते हुए इन अधिकारों को अविभाज्य अधिकारों के रूप में मान्यता दी गई है। संयोग से, ऐसे कुछ अधिकारों को भारत के संविधान के भाग III के तहत संवैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। मौलिक अधिकारों को उन अधिकारों में से चुना गया था जो पहले प्राकृतिक अधिकार थे और बाद में उन्हें सामान्य कानून अधिकार कहा गया। हालाँकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि संविधान का भाग III ऐसे अधिकारों का एकमात्र भंडार नहीं है। ऐसे कुछ अविभाज्य अधिकारों को भारत के संविधान के तहत मौलिक अधिकारों के रूप में संवैधानिक रूप से मान्यता दिए जाने के बाद भी, सामान्य कानून या प्राकृतिक कानून के तहत संगत अधिकारों को समाप्त नहीं किया गया है। इसका यह भी अर्थ है कि सामान्य कानून में उपलब्ध संगत उपचार भी समाप्त नहीं हुए हैं। संविधान के तहत कुछ प्राकृतिक और सामान्य कानून अधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में बढ़ाने का उद्देश्य उन्हें राज्य और उसकी एजेंसियों के खिलाफ न्यायालयों के माध्यम से

विशेष रूप से लागू करने योग्य बनाना था। इन टिप्पणियों को **परम पावन केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य, (1973) 4 एससीसी 225 (केशवानंद भारती)** में मैथ्यू, जे. के फैसले से वैधता मिलती है, जिसमें उनके प्रभुत्व ने संविधान के उद्देश्य को मान्यता दी थी कि मान्यता प्राप्त प्राकृतिक अधिकारों को राज्य के लिए लागू घोषित किया जाए। रोस्को पाउंड की सुरम्य भाषा को अपनाते हुए, निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं:

> "1514. प्राकृतिक अधिकारों पर चर्चा करते हुए, रोस्को पाउंड ने अपने न्यायशास्त्र के खंड I के पृष्ठ 500 पर लिखा है:
>
> > "अदालतों, कानून और संविधानों के प्रति शत्रुता को पैदा करने और बढ़ावा देने में शायद किसी और चीज ने इतना योगदान नहीं दिया जितना कि न्यायालयों की इस अवधारणा ने कि वे राज्य और समाज के खिलाफ व्यक्तिगत प्राकृतिक अधिकारों के संरक्षक हैं; कानून को इन व्यक्तिगत प्राकृतिक अधिकारों की घोषणा करने वाले सिद्धांत के अंतिम और निरपेक्ष निकाय के रूप में समझना; **संविधानों का यह सिद्धांत कि वे आम-कानून सिद्धांतों की घोषणा करते हैं, जो प्राकृतिक-कानून सिद्धांत भी हैं, राज्य से पहले के हैं और राज्य के प्राधिकार द्वारा अधिनियमित किए गए कानूनों से बेहतर वैधता रखते हैं; संविधानों का यह सिद्धांत कि उनका उद्देश्य सरकार और उसकी सभी एजेंसियों के खिलाफ व्यक्तियों के प्राकृतिक अधिकारों की गारंटी देना और उन्हें**

> **बनाए रखना है।** वास्तव में, इसने कानूनी पेशे के स्वीकृत पारंपरिक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदर्शों को एक सुपर-संविधान के रूप में स्थापित किया, जो न्यायिक निर्णय के अलावा किसी भी एजेंसी की पहुंच से परे है।

1515. मैं इस संबंध में सी. मरियम द्वारा अमेरिकी राजनीतिक सिद्धांतों के इतिहास में निहित और अविभाज्य अधिकारों पर एक अंश का भी उल्लेख कर सकता हूँ: बाद के विचारकों द्वारा यह विचार कि मनुष्य के पास राजनीतिक या अर्ध-राजनीतिक चरित्र के निहित और अविभाज्य अधिकार हैं जो राज्य से स्वतंत्र हैं, आम तौर पर त्याग दिया गया है। यह माना जाता है कि इन प्राकृतिक अधिकारों का नैतिक मूल्य के अलावा और कुछ नहीं हो सकता है, और राजनीति में इनका कोई उचित स्थान नहीं है। बर्गेस कहते हैं, 'इस धरती पर और मनुष्यों के बीच राज्य संगठन के बाहर कभी कोई स्वतंत्रता नहीं थी, और न ही कभी हो सकती है।' इसलिए, प्राकृतिक अधिकारों की बात करते समय, यह याद रखना आवश्यक है कि इन कथित अधिकारों का कोई राजनीतिक बल नहीं है, जब तक कि राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त और लागू न किया जाए। विलोबी द्वारा यह दावा किया गया है कि 'प्राकृतिक अधिकारों' का कथित 'प्रकृति की स्थिति' में नैतिक मूल्य भी नहीं हो सकता है; वे वास्तव में बल के बराबर होंगे और इसलिए उनका कोई नैतिक महत्व नहीं है। (पृष्ठ 310 देखें)।"

xx xx xxx

"1522. मेरा यह भी मानना है कि मौलिक अधिकारों से संबंधित संविधान के प्रावधानों को संशोधित करने की शक्ति को मौलिक अधिकारों को प्राकृतिक अधिकार या मानव अधिकार बताकर नकारा नहीं जा सकता। **मनुष्य की बुनियादी गरिमा मौलिक अधिकारों के संहिताकरण पर निर्भर नहीं करती और न ही ऐसा संहिताकरण सम्मानजनक जीवन जीने के लिए कोई शर्त है। 26 जनवरी, 1950 से पहले मौलिक अधिकारों के लिए कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं था और फिर भी क्या यह कहा जा सकता है कि 15 अगस्त, 1947 और 26 जनवरी, 1950 के बीच की अवधि के दौरान भारतीयों के लिए सम्मानजनक जीवन जीने की स्थितियाँ मौजूद नहीं थीं।** संविधान के भाग III सहित अन्य प्रावधानों को पूर्वव्यापी प्रभाव दिए जाने की दलील को इस न्यायालय ने खारिज कर दिया है। मौलिक अधिकारों के लिए प्रावधान करने वाला अनुच्छेद 19 उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होता जो भारत के नागरिक नहीं हैं। क्या इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि गैर-नागरिक भारत में रहते हुए सम्मानजनक जीवन नहीं जी सकते? मेरी राय में, यह कहना सही दृष्टिकोण नहीं होगा कि मौलिक अधिकारों को कम करने या छीनने से संबंधित संविधान संशोधन का प्रभाव मानव की बुनियादी गरिमा को छीनने जैसा होगा और इसके परिणामस्वरूप जीवन के आवश्यक मूल्य समाप्त हो जाएंगे।

> **[मेरे द्वारा जोर दिया गया]**

37. इस प्रस्ताव को **अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला, ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 1207("ए. डी. एम. जबलपुर ")** में न्यायमूर्ति, एच. आर. खन्ना, जे. की प्रबुद्ध अल्पसंख्यक राय में और उजागर किया गया था, जिसमें इस विचार को स्वीकार करने से इनकार करते हुए कि जब अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार को लागू करने का अधिकार निलंबित कर दिया जाता है, तो परिणाम यह होगा कि राज्य द्वारा किसी व्यक्ति के प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से वंचित होने के खिलाफ कोई उपाय नहीं होगा, भले ही ऐसा अभाव कानून के अधिकार के बिना हो, यह कहा गया कि अनुच्छेद 21 जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का एकमात्र भंडार नहीं था कि इस तरह के अधिकार संविधान के अधिनियमन से पहले ही पुरुषों में पैदा हुए थे, एवं पहली बार संविधान को लागू करके नहीं बनाए गए थे। यह भी माना गया कि यद्यपि अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार के उल्लंघन के लिए अनुच्छेद 32 के तहत संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त उपचार उपलब्ध नहीं हो सकता है क्योंकि आपातकाल की घोषणा के कारण उक्त अधिकार निलंबित या काल्पनिक रूप से आत्मसमर्पण कर दिए गए थे, फिर भी संविधान के प्रभाव में आने से पहले लागू कानूनों के तहत उपचार यह सुनिश्चित करने के लिए काम करेंगे कि किसी भी व्यक्ति को कानून के अनुसार के अलावा उसके जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है।उस संदर्भ में, यह माना गया था कि अनुच्छेद 21 के तहत संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त अधिकार 'उच्च मूल्यों' का प्रतिनिधित्व करते हैं जो किसी भी सभ्य

राज्य के लिए प्राथमिक थे एवं इसलिए जीवन एवं स्वतंत्रता की पवित्रता का पता केवल संविधान में ही नहीं लगाया जा सकता था।उनके प्रभुता के निर्णय के प्रासंगिक भागों को नीचे उपयोगी रूप से निकाला जा सकता हैः

"152. अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी भी न्यायालय में जाने के अधिकार के निलंबन का प्रभाव, मेरी राय में, यह है कि जब किसी न्यायालय में याचिका दायर की जाती है, तो न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि आपातकाल की अवधि का साहस करते हुए न्यायालय से राहत प्राप्त करने के लिए उस अनुच्छेद पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है।तब सवाल उठता है कि क्या यह नियम कि कानून के अधिकार के बिना किसी को भी जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा, इस अवधि के दौरान बना रहेगाःअनुच्छेद 21 में निहित अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी भी न्यायालय में जाने के अधिकार को निलंबित करने वाले राष्ट्रपति के आदेश के बावजूद आपातकाल। इस प्रश्न का उत्तर इस प्रश्न के उत्तर से जुड़ा हुआ है कि क्या अनुच्छेद 21 प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार का एकमात्र भंडार है।

इस मामले पर गंभीरता से विचार करने के बाद, मेरी राय है कि अनुच्छेद 21 को जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का एकमात्र भंडार नहीं माना जा सकता है। प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार कानून के शासन द्वारा शासित सभ्य समाजों में स्वतंत्रता मनुष्य का सबसे मूल्यवान अधिकार है। कई आधुनिक संविधानों में कुछ

मौलिक अधिकार शामिल हैं, जिनमें दैहिक स्वतंत्रता से संबंधित अधिकार भी शामिल हैं।"

"155. जब संविधान का प्रारूप तैयार किया गया था, तब प्राण एवं स्वतंत्रता की पवित्रता कोई नई बात नहीं थी।यह उच्च मूल्यों के एक तथ्य का प्रतिनिधित्व करता है जिसे मानव जाति ने दाँत एवं पंजे की स्थिति से सभ्य अस्तित्व में अपने विकास में संजोना शुरू कर दिया।इसी तरह, यह सिद्धांत कि कानून के अधिकार के बिना किसी को भी जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा, संविधान का उपहार नहीं था। यह प्राण एवं स्वतंत्रता की पवित्रता से संबंधित अवधारणा का एक आवश्यक परिणाम था; यह संविधान के लागू होने से पहले मौजूद था एवं लागू था। प्राण एवं स्वतंत्रता की पवित्रता के बारे में विचार के साथ-साथ यह सिद्धांत कि कानून के अधिकार के बिना किसी को भी उसके प्राण एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा, अनिवार्य रूप से एक ही अवधारणा के दो पहलू हैं। यह अवधारणा सभ्यता के आगे बढ़ने के साथ आंतरिक आवेगों एवं महान आवेगों के जवाब में बढ़ी एवं आयाम प्राप्त किए।महान लेखकों एवं शिक्षकों, दार्शनिकों एवं राजनीतिक विचारकों ने मानव जाति की अंतरात्मा को उत्तेजित करके एवं आत्म-हित एवं व्यवस्थित अस्तित्व के लिए आवश्यक सामाजिक अनुशासन के रूप में अवधारणा की आवश्यकता के प्रति जागरूक करके अवधारणा को पोषित एवं प्रफुल्लित करने में मदद की।यहाँ तक कि सामाजिक समझौते के सिद्धांत के अनुसार, जिसके कई पहलुओं को अब बदनाम कर दिया गया है, व्यक्तियों ने बदले में या सरकार के आशीर्वाद में अपनी सैद्धांतिक रूप से

असीमित स्वतंत्रता का एक हिस्सा आत्मसमर्पण कर दिया है।उन आशीर्वादों में नागरिकों के जीवन एवं स्वतंत्रता के मामले में कुछ मानदंडों के अनुसार शासन शामिल है।इस तरह के मानदंड कानून के शासन का रूप लेते हैं।कानून के प्रति सम्मान, हमें ध्यान में रखना चाहिए, सरकार के संबंध में आपसी संबंध है।तदनुसार यह कहा गया है कि कानून के प्रति सम्मान का क्षरण सरकार के प्रति सम्मान को प्रभावित करता है।कानून के तहत सरकार का अर्थ है, जैसा कि मैकडोनाल्ड ने कहा है, कि शासन करने की शक्ति का प्रयोग केवल जनता या उनके प्रतिनिधियों द्वारा अनुमोदित संविधानों एवं कानूनों में निर्धारित शर्तों के तहत किया जाएगा । इस प्रकार कानून एक मानक के रूप में उभरता है जो सरकार द्वारा नागरिकों पर या नागरिकों द्वारा अपने साथियों पर शक्ति के प्रयोग को सीमित करता है।सैद्धांतिक रूप से सभी लोग कानून के समक्ष समान हैं एवं अपनी स्थिति, वर्ग, पद या अधिकार की परवाह किए बिना इसके लिए समान रूप से बाध्य हैं।साथ ही जब कानून कर्तव्यों को लागू करता है तो यह संप्रभु के खिलाफ भी अधिकारों की रक्षा करता है।"

158. मैं इस विचार को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि जब अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार को लागू करने का अधिकार निलंबित कर दिया जाता है, तो परिणाम यह होगा कि राज्य द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से वंचित होने के खिलाफ कोई उपाय नहीं होगा, भले ही ऐसा अभाव कानून के अधिकार के बिना हो या कानून के प्रावधानों का घोर उल्लंघन हो।कानून के अधिकार के बिना अपने जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं होने का अधिकार संविधान का निर्माण

नहीं था।संविधान लागू होने से पहले इस तरह का अधिकार मौजूद था।यह तथ्य कि संविधान निर्माताओं ने इस तरह के अधिकार के एक पहलू को मौलिक अधिकारों का हिस्सा बनाया, इस तरह के अधिकार की स्वतंत्र पहचान को समाप्त करने एवं अनुच्छेद 21 को उस अधिकार का एकमात्र भंडार बनाने का प्रभाव नहीं पड़ा।इसका वास्तविक प्रभाव यह सुनिश्चित करना था कि एक कानून जिसके तहत किसी व्यक्ति को जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जा सकता है, उसे इस तरह के अभाव के लिए एक प्रक्रिया निर्धारित करनी चाहिए या गोपालन के मामले में न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा निर्धारित उक्ति के अनुसार, ऐसा कानून एक वैध कानून होना चाहिए जो संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करता है। **जहां तक प्राण की पवित्रता एवं दैहिक स्वतंत्रता का संबंध है, पूर्व-संवैधानिक अधिकार के एक पहलू के मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता का स्थिति की तुलना में चीजों को कम अनुकूल बनाने का प्रभाव नहीं हो सकता है, अगर ऐसे अधिकार के एक पहलू को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी, क्योंकि अनुच्छेद 359 से प्राप्त मौलिक अधिकारों की भेद्यता है।** मैं भी इस बात पर सहमत होने से असमर्थ हूँ कि जीवन एवं स्वतंत्रता की पवित्रता के मामले में राष्ट्रपति के आदेश को देखते हुए, चीजें कानून की स्थिति की तुलना में बदतर होंगी जैसा कि संविधान के लागू होने से पहले मौजूद थी।"

"162. ऊपर यह बताया गया है कि संविधान के लागू होने से पहले ही, इंग्लैंड एवं भारत दोनों में सामान्य कानून के तहत स्थिति यह थी कि राज्य किसी व्यक्ति को कानून के अधिकार के बिना जीवन एवं स्वतंत्रता से वंचित नहीं कर सकता था।भारत के दंडात्मक कानूनों के तहत भी यही स्थिति थी।भारतीय दंड संहिता के तहत, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, किसी व्यक्ति को जीवन या स्वतंत्रता से वंचित करना एक अपराध था, जब तक कि इस तरह के पाठ्यक्रम को देश के कानूनों द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया था।कानून के अधिकार के बिना किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किए जाने की स्थिति में गलत तरीके से कैद करने के लिए यातना कानून के तहत भी कार्यवाही की जा सकती थी।इसके अलावा, हमारे पास सी. आर. पी. सी. की धारा 491 थी जो कानून के अधिकार के बिना हिरासत के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण का उपाय प्रदान करती थी।संविधान के लागू होने के बाद भी अनुच्छेद 372 को देखते हुए इस तरह के कानून लागू रहे।उस अनुच्छेद के अनुसार, इस संविधान द्वारा अनुच्छेद 395 में निर्दिष्ट अधिनियमों के निरसन के बावजूद, लेकिन इस संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन, इस संविधान के प्रारंभ से तुरंत पहले भारत के राज्य क्षेत्र में लागू सभी कानून तब तक लागू रहेंगे जब तक कि किसी सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरस्त या संशोधित नहीं किया जाता है।लागू कानून, जैसा कि राशन एवं वितरण निदेशक बनाम कलकत्ता निगम एवं अन्य के मामले में संविधान पीठ के बहुमत द्वारा देखा गया है। 1960 सी. आर. आई. एल. जे. 1684 में न केवल वैधानिक कानून शामिल है, बल्कि कानून के बल को कम करने वाली प्रथा या उपयोग के साथ-

साथ इंग्लैंड का सामान्य कानून भी शामिल है, जिसे संविधान के लागू होने से पहले देश के कानून के रूप में अपनाया गया था।इस प्रकार यह स्थिति दृढ़ता से स्थापित प्रतीत होती है कि संविधान के लागू होने के समय, कानूनी स्थिति यह थी कि कानून के अधिकार के बिना किसी को भी जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता था।

163. इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के कारण, वह कानून जो पहले से ही लागू था कि कानून के अधिकार के बिना किसी को भी जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता था, मिटा दिया गया था एवं लागू रहना बंद कर दिया गया था।निर्माण व्याख्या का कोई भी नियम इस तरह के निष्कर्ष की गारंटी नहीं देता है।सी. आर. पी. सी. की धारा 491 इस तथ्य के बावजूद उस संहिता का एक अभिन्न अंग बनी रही कि उच्च न्यायालयों के पास अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट जारी करने की शक्ति निहित थी। कोई निवेदन हमेशा इस आधार पर आगे बढाया जाता था कि उक्त प्रावधान इस तथ्य के कारण लागू करने योग्य एक मृत पत्र बन गया था कि अनुच्छेद 226 को संविधान का एक हिस्सा बनाया गया था , वास्तव में ,माखन सिंह (पूर्वोक्त) गजेंद्रगढकर जे . के मामले में बहुमत के लिए बोलते हुए कहा कि संविधान के लागू होने के बाद, एक पक्षकार दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 या संविधान के अनुच्छेद 226 के उपचार का लाभ उठा सकती है। उपरोक्त टिप्पणियों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के उपचार की संवैधानिक मान्यता ने बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के वैधानिक उपचार को समाप्त या निरस्त नहीं किया।सी.

आर. पी. सी. की धारा 491 तब तक उस संहिता का हिस्सा बनी रही जब तक कि उस संहिता को नई संहिता द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया गया।हालाँकि बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट का उपाय अब नई दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत उपलब्ध नहीं है, वही उपाय अभी भी संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपलब्ध है।"

इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए, न्यायमूर्ति ने उक्त मामले में बहुमत के दृष्टिकोण को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि एक बार जब किसी अधिकार को मान्यता दी जाती है एवं संविधान में सन्निहित किया जाता है एवं इसका हिस्सा बनता है, तो इसका संविधान के अलावा कोई अलग अस्तित्व नहीं हो सकता है, जब तक कि इसे राज्य के किसी सकारात्मक कानून द्वारा वैधानिक सिद्धांत के रूप में भी अधिनियमित नहीं किया जाता है।उनके नेतृत्व ने इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया कि संविधान का इरादा प्राकृतिक कानून या सामान्य कानून के क्षेत्र में समवर्ती रूप से कुछ संरक्षित करना नहीं था; यह अन्य सभी नियंत्रणों को बाहर करना था या संविधान को मानव स्वतंत्रता के उन पहलुओं पर अंतिम नियंत्रण का एकमात्र भंडार बनाना था जिनकी गारंटी दी गई थी।

. 38. एच. आर. खन्ना, जे. की अल्पमत राय को बल बाद में **पुट्टास्वामी,** में इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया एवं पुष्टि की गई, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार 'मौलिक अधिकार' थे एवं वे उपहार नहीं थे जो राज्य द्वारा प्रदान किए गए थे एवं संविधान द्वारा बनाए गए थे। संविधान के आने से पहले भी जीवन का अधिकार मौजूद था एवं इस तरह के अधिकार

को मान्यता देने में, संविधान ऐसे अधिकारों का एकमात्र भंडार नहीं बन गया था। यह कि हमारे देश सहित प्रत्येक संवैधानिक लोकतंत्र की जड़ें इस निर्विवाद आश्वासन में निहित हैं कि कानून का शासन राज्य द्वारा किसी भी आक्रमण के खिलाफ उनके अधिकारों एवं स्वतंत्रता की रक्षा करेगा एवं यह कि न्यायिक उपाय तब उपलब्ध होंगे जब कोई नागरिक सबसे मूल्यवान अविभाज्य अधिकार से वंचित हो।

डॉ डी वाय चंद्रचूड जे. (उस समय माननीय जिस रूप में थे) ने उपरोक्त सिद्धांतों को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त कियाः

"119. **ए. डी. एम. जबलपुर** में बहुमत वाले सभी चार न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णय गंभीर रूप से त्रुटिपूर्ण हैं।जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता मानव अस्तित्व के लिए अपरिहार्य हैं।ये हैं अधिकार **केशवानंद भारती** में मान्यता प्राप्त मौलिक अधिकार हैं। वे प्राकृतिक कानून के तहत अधिकारों का गठन करते हैं। व्यक्ति के जीवन में मानवीय तत्व समग्र रूप से जीवन की पवित्रता पर आधारित है।गरिमा स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता से जुड़ी हुई है। कोई भी सभ्य राज्य कानून के अधिकार के बिना प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता पर अतिक्रमण करने पर विचार नहीं कर सकता है। न तो जीवन और न ही स्वतंत्रता राज्य द्वारा प्रदत्त उपहार हैं और न ही संविधान इन अधिकारों का निर्माण करता है।संविधान के आने से पहले भी जीवन का अधिकार मौजूद रहा है। अधिकार को मान्यता देने में, संविधान अधिकार का एकमात्र भंडार नहीं बनता है।यह सुझाव देना बेतुका होगा कि अधिकारों के विधेयक के बिना एक लोकतांत्रिक संविधान राज्य द्वारा शासित व्यक्तियों को जीने के अधिकार के अस्तित्व या अधिकार के प्रवर्तन

के साधनों के बिना छोड़ देगा।**जीवन का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अविभाज्य होने के कारण, यह संविधान से पहले मौजूद था एवं संविधान के अनुच्छेद 372 के तहत लागू रहा।न्यायमूर्ति खन्ना ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के तहत जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की मान्यता इसके अलावा उस अधिकार के अस्तित्व को नकारती नहीं है एवं न ही यह कोई भ्रामक धारणा हो सकती है कि संविधान को अपनाने में भारत के लोगों ने मानव व्यक्तित्व के सबसे मूल्यवान पहलू, जीवन, स्वतंत्रता एवं स्वतंत्रता को उस राज्य को सौंप दिया, जिसकी दया पर ये अधिकार निर्भर करेंगे।इस तरह का निर्माण कानून के शासन की मूल नींव के विपरीत है जो स्वतंत्रता से संबंधित होने पर आधुनिक राज्य में निहित शक्तियों पर प्रतिबंध लगाता है।** बंदी प्रत्यक्षीकरण पत्र जारी करने की न्यायालय की शक्ति कानून के शासन की एक बहुमूल्य एवं निर्विवाद विशेषता है।

120. एक संवैधानिक लोकतंत्र तब जीवित रह सकता है जब नागरिकों को एक निर्विवाद आश्वासन हो कि कानून का शासन राज्य द्वारा किसी भी आक्रमण के खिलाफ उनके अधिकारों एवं स्वतंत्रता की रक्षा करेगा एवं यह कि न्यायिक उपाय प्रश्न पूछने एवं ए की अपेक्षा करने के लिए उपलब्ध होंगे।

जब कोई नागरिक इन सबसे मूल्यवान अधिकारों से वंचित हो जाता है तो वह जवाब देता है।न्यायमूर्ति खन्ना द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को स्वीकार किया जाना चाहिए, एवं इसके विचारों की ताकत एवं इसके दृढ़ विश्वास के साहस के लिए सम्मान के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए।"

39. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से जो कुछ सामने आता है, उसे निम्नानुसार निकाला जा सकता हैः

i) संविधान के तहत मनुष्य के कुछ प्राकृतिक/आदिम अधिकारों को एक सुरक्षित स्थान दिया गया है ताकि राज्य के अंगों द्वारा अनुचित अतिक्रमण के खिलाफ ऐसे अधिकारों की रक्षा की जा सके।इस तरह के सामान्य कानून अधिकारों/प्राकृतिक अधिकारों को संवैधानिक स्तर पर बढ़ाने का उद्देश्य उन्हें अदालतों के माध्यम से राज्य एवं उसकी एजेंसियों के खिलाफ विशेष रूप से लागू करने योग्य बनाना था।

(ii) इसके बावजूद कि ऐसे अधिकारों को भारत के संविधान के भाग III में रखा गया है, प्राकृतिक कानून या सामान्य कानून के क्षेत्र में अधिकारों को समवर्ती रूप से संरक्षित किया जाता है।ऐसे अधिकारों को वास्तविक बनाने के लिए सामान्य कानून में उपलब्ध उपचार भी संरक्षित हैं।इसलिए अधिकारों के दो क्षेत्र हैं, एवं संबंधित उपचारःपहला, भारत के संविधान के भाग III के तहत निहित मौलिक अधिकारों से संबंधित, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 एवं अनुच्छेद 226 के तहत उपचारों के अनुरूप हैं; दूसरा, अविभाज्य/प्राकृतिक/सामान्य कानून अधिकार, जो पूर्व-संवैधानिक अधिकार हैं, एवं जिन्हें सामान्य कानून उपचारों का सहारा लेकर संरक्षित किया जा सकता है।

(iii) यद्यपि एक निश्चित सामान्य विधि अधिकार की सामग्री मौलिक अधिकार के समान हो सकती है, दोनों अधिकार दो मामलों में अलग होंगेःपहला, ऐसे अधिकार का सम्मान करने के कर्तव्य की घटना; एवं दूसरा, वह मंच जिसे ऐसे अधिकार का

सम्मान करने में विफलता पर निर्णय लेने के लिए बुलाया जाएगा।जबकि उल्लंघन किए गए अधिकार की सामग्री समान हो सकती है, उल्लंघनकर्ता की स्थिति प्रासंगिक है।

उस आधार के साथ, मैं इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ूंगा कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के तहत मौलिक अधिकारों का दावा राज्य या उसके साधनों के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ किया जा सकता है।

40. ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों एवं लोकतंत्र एवं संवैधानिक सरकार के आगमन के साथ, "राज्य" को एक संविधान के तहत एवं उसके द्वारा बनाया गया था एवं एक ऐसी स्थिति में रखा गया था जो इसे प्राकृतिक एवं सामान्य कानून अधिकारों में हस्तक्षेप करने में सक्षम बनाता है।दूसरी ओर, जैसा कि भारत के संविधान की प्रस्तावना के पाठ से स्पष्ट है, "हम भारत के लोगों ने अपने हितों की सेवा के लिए एक इकाई के रूप में राज्य का निर्माण किया।राज्य के निर्माण के प्रतिस्पर्धी प्रभावों का मिलान करने के लिए, कुछ सामान्य कानून अधिकारों को भारत के संविधान के भाग III में समायोजित करके संवैधानिक स्तर पर बढ़ा दिया गया था ताकि उन्हें अदालतों के माध्यम से राज्य एवं उसकी एजेंसियों के खिलाफ विशेष रूप से लागू किया जा सके। इसलिए संविधान के भाग III को नागरिकों एवं राज्य के बीच संबंधों को निर्धारित करने के लिए अधिनियमित किया गया था-यह भाग III का वास्तविक चरित्र एवं उपयोगिता है। इस विचार को **पुट्टास्वामी** में भी प्रतिध्वनि मिली है, जिसमें इसे निम्नानुसार देखा गया थाः

"251. संविधान उन नए राजनीतिक प्रभुत्व के उदय को संबोधित करते हैं जो वे एक ऐसे साधन के लिए प्रदान करते हैं जिसके द्वारा सभी सभ्य लोगों के लिए उपलब्ध एवं गारंटीकृत स्वतंत्रताओं पर आक्रमण करने की इसकी क्षमता से रक्षा की जा सकती है।हमारी संवैधानिक योजना के तहत, ये साधन-जिन्हें मौलिक अधिकार घोषित किया गया है-भाग III में रहते हैं, एवं क्रमशः अनुच्छेद 32 एवं 226 के तहत इस न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की शक्ति द्वारा प्रभावी बनाए गए हैं।आक्रमण से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए उपलब्ध अधिकारों के प्रकारों के प्रगतिशील विस्तार की यह कथा-प्राकृतिक अधिकारों से लेकर सामान्य कानून अधिकारों एवं अंत में मौलिक अधिकारों तक-उन अधिकारों के विकास के खाते के अनुरूप है जो संवैधानिक सिद्धांत में महत्वपूर्ण हैं।"

इसलिए, संविधान के भाग III का प्राथमिक उद्देश्य नागरिकों एवं राज्य के बीच एक नया संबंध बनाना था, जो सरकारी शक्ति का नया स्थल था।नागरिकों के बीच बातचीत का क्षेत्र, संविधान के अधिनियमन से पहले सामान्य कानून द्वारा शासित था एवं संविधान के प्रारंभ के बाद भी इस तरह से शासित होता रहा क्योंकि जैसा कि ऊपर मान्यता दी गई है, संविधान के अधिनियमन के बाद भी सामान्य अधिकारों एवं उपचारों को समाप्त नहीं किया गया था।इन अविभाज्य अधिकारों को, हालांकि बाद में संविधान के भाग III में रखा गया, लेकिन उन्होंने सामान्य कानून के क्षेत्र में अपनी पहचान बरकरार रखी एवं राज्य या उसके उपकरणों के अलावा नागरिकों एवं संस्थाओं के बीच संबंधों को विनियमित करना जारी रखा।इसलिए यह देखा गया है कि

सम्मान करने नागरिकों के संवैधानिक एवं मौलिक अधिकार का कर्तव्य राज्य पर हैं एवं संविधान राज्य द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ उपाय प्रदान करता है। ये अवलोकन मान्यता के अनुरूप हैं **इस न्यायालय द्वारा पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ, (2005) 2 एस. सी. सी. 436 ("पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज") में कि** भाग III का उद्देश्य नागरिकों को केंद्र में रखना एवं राज्य को उनके प्रति जवाबदेह बनाना है।

41. दूसरी ओर, सामान्य कानून अधिकार, नागरिकों के बीच संबंधों को नियंत्रित करते हैं।यद्यपि एक सामान्य विधि अधिकार की सामग्री एक मौलिक अधिकार के समान हो सकती है, लेकिन दोनों अधिकार अलग-अलग हैं जहाँ तक कि एक सामान्य विधि अधिकार का सम्मान करने का कर्तव्य राज्य या उसके साधनों के अलावा नागरिकों या संस्थाओं पर है; जबकि एक मौलिक अधिकार का सम्मान करने का कर्तव्य की घटना, सिवाय इसके कि जहां स्पष्ट रूप से अन्यथा प्रदान किया गया हो, राज्य पर है।राज्य द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ उपचार अनुच्छेद 32 एवं 226 के तहत संवैधानिक रूप से निर्धारित किए गए हैं; जबकि सामान्य कानून उपचार, जिनमें से कुछ वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त हैं, सामान्य कानून अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ उपलब्ध हैं।इस तरह के उपाय राज्य या उसके उपकरणों के अलावा साथी नागरिकों या संस्थाओं के खिलाफ भी उपलब्ध हैं।इस हद तक, क्षैतिजता को सामान्य कानून में मान्यता दी गई है।इसके अलावा कुछ हद तक कुछ मौलिक अधिकारों को सांविधिक रूप से मान्यता दी गई है एवं कुछ अन्य को संविधान में स्पष्ट रूप से

मान्यता दी गई है कि वे नागरिकों के बीच क्षैतिज अधिकारों के रूप में लागू होते हैं जैसे कि अनुच्छेद 15 (2), 17,23,24. निजता के अधिकार के संबंध में इसी तरह की घोषणा पुट्टास्वामी में इस न्यायालय के फैसले में पाई जाती है।उक्त निर्णय के प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैंः

"253. एक बार जब हम मौलिक अधिकारों की प्रकृति की इस समझ पर पहुंच जाते हैं, तो हम संघ के तर्क की एक मूल धारणा को समाप्त कर सकते हैंःकि एक अधिकार या तो एक सामान्य कानून अधिकार या एक मौलिक अधिकार होना चाहिए।अधिकार के दो वर्गों के बीच एकमात्र भौतिक अंतर-जिनमें से प्रकृति एवं सामग्री समान हो सकती है-अधिकार का सम्मान करने के कर्तव्य की घटना में एवं उस मंच में निहित है जिसमें ऐसा करने में विफलता का निवारण किया जा सकता है। **आम कानून के अधिकार उनके संचालन में क्षैतिज होते हैं जब उनका उल्लंघन किसी के साथी व्यक्ति द्वारा किया जाता है, तो उनका नाम लिया जा सकता है एवं कानून की एक सामान्य न्यायालय में उनके खिलाफ कार्यवाही की जा सकती है।दूसरी ओर, संवैधानिक एवं मौलिक अधिकार, 'राज्य' द्वारा मूल्यवान हित के उल्लंघन के खिलाफ उपाय प्रदान करते हैं, जैसे कि एक अमूर्त इकाई, चाहे वह कानून के माध्यम से हो या अन्यथा, साथ ही पहचान योग्य सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा, जो राज्य की शक्तियों से लैस व्यक्ति हैं।किसी ब्याज को एक साथ एक सामान्य कानून अधिकार एवं मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देना पूरी तरह से संभव है।जहां किसी मान्यता प्राप्त हित में हस्तक्षेप राज्य या अनुच्छेद 12 द्वारा मान्यता प्राप्त किसी अन्य संस्था द्वारा किया**

जाता है, वहां मौलिक अधिकार के उल्लंघन का दावा किया जाएगा।जहाँ एक समान हस्तक्षेप का लेखक एक गैर-राज्य अभिनेता है, सामान्य कानून में एक कार्यवाही एक सामान्य न्यायालय में होगी।

254. निजता की प्रकृति एक सामान्य कानून अधिकार के साथ-साथ एक मौलिक अधिकार दोनों होने की है।इसकी सामग्री, दोनों रूपों में, समान है।जो कुछ भी अलग है वह बोझ की घटना एवं प्रत्येक रूप के लिए प्रवर्तन के लिए मंच है।"

इसलिए इस न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया है कि संविधान के भाग III के तहत मान्यता प्राप्त अधिकार की सामग्री एक सामान्य कानून अधिकार के साथ मेल खा सकती है या ओवरलैप हो सकती है, लेकिन अधिकार के संबंधित रूप के उल्लंघन के खिलाफ उपलब्ध उपचार कानून के विभिन्न क्षेत्रों में काम करते हैं।अर्थात्, यद्यपि एक सामान्य विधि अधिकार एवं एक मौलिक अधिकार की सामग्री लगभग समान हो सकती है, एक सामान्य विधि अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ उपचार सामान्य कानून के तहत होगा न कि संविधान के तहत; इसी तरह, मौलिक अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ उपचार संविधान के तहत स्वयं अनुच्छेद 19 (2) के तहत राज्य के खिलाफ स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है।

42. अधिकार का उल्लंघन करने वाले की स्थिति, दोनों अधिकारों एवं संबंधित उपचारों के बीच अंतर के लिए एक आवश्यक पैरामीटर भी है।जहां किसी मान्यता प्राप्त अधिकार में हस्तक्षेप राज्य या अनुच्छेद 12 के तहत मान्यता प्राप्त किसी अन्य संस्था द्वारा किया जाता है, वहां मौलिक अधिकार के उल्लंघन का दावा संविधान के अनुच्छेद

32 एवं 226 के तहत क्रमशः इस न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष होगा।जहां राज्य या उसके उपकरणों के अलावा किसी अन्य संस्था द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है, वहां एक कार्यवाही सामान्य कानून के तहत होगी एवं इस हद तक, कानूनी योजना ऐसे अधिकारों के क्षैतिज संचालन को मान्यता देती है।

43. यद्यपि मौलिक अधिकार की सामग्री संविधान के तहत सामान्य कानून के अधिकार के साथ समान हो सकती है, लेकिन यह केवल सामान्य कानून का अधिकार है जो क्षैतिज रूप से संचालित होता है सिवाय इसके कि जब वे मौलिक अधिकार विशिष्ट अधिनियमों के तहत वैधानिक अधिकारों में परिवर्तित किया गया है या जहां क्षैतिज संचालन को संविधान के तहत स्पष्ट रूप से मान्यता दी गई है।ऐसा इसलिए है क्योंकि, निम्नलिखित कठिनाइयाँ सामने आएंगी यदि अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत निहित मौलिक अधिकारों को क्षैतिज रूप से काम करने की अनुमति दी जाती है ताकि संवैधानिक न्यायालय के समक्ष रिट याचिका के माध्यम से उपचार की मांग की जा सकेः

i) यह मान्यता नहीं दी जा सकती है कि अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत निहित मौलिक अधिकारों को क्षैतिज रूप से संचालित करने की अनुमति है, सिवाय इसके कि मौलिक अधिकार एवं समान सामान्य कानून अधिकार के बीच प्राथमिक अंतरों की अनदेखी की जाए।इस तरह की मान्यता केवल इस तथ्य की अनदेखी करके आगे बढ़ सकती है कि मौलिक अधिकार का सम्मान करने के कर्तव्य की घटना राज्य एवं उसके साधनों पर है।मौलिक अधिकारों की क्षैतिज प्रवर्तनीयता की मान्यता भी

अधिकार का उल्लंघन करने वाले की स्थिति की अनदेखी करेगी, सिवाय इसके कि जब किसी मौलिक अधिकार को किसी अन्य व्यक्ति या नागरिक के खिलाफ वैधानिक अधिकार के रूप में भी मान्यता दी जाती है।इसलिए, ऐसी मान्यता गलत है क्योंकि यह अधिकारों के दो रूपों की स्थिति में प्राथमिक मतभेदों, अधिकारों के ऐसे प्रत्येक रूप का सम्मान करने के लिए कर्तव्य की घटना एवं ऐसे प्रत्येक अधिकार का सम्मान करने में विफलता पर निर्णय लेने के लिए बुलाए जाने वाले मंच की पूर्ण उपेक्षा के साथ आगे बढ़ती है।

(ii) इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय इस बात को मान्यता देने में उसकी अनिच्छा या अनिच्छा का प्रदर्शन करते हैं कि अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत निहित मौलिक अधिकारों को क्षैतिज रूप से संचालित करने की अनुमति हैः

क) **पी. डी. शामदासानी बनाम। सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड, ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 59**, में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर एक रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया, जिसमें एक निजी संस्था के खिलाफ अनुच्छेद 19 (1) (एफ) एवं अनुच्छेद 31 (1) के तहत अधिकार को लागू करने का अनुरोध किया गया था।उस संदर्भ में, यह माना गया कि अनुच्छेद 19 की भाषा एवं संरचना एवं संविधान के भाग III में इसकी स्थापना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अनुच्छेद का उद्देश्य उन स्वतंत्रताओं को राज्य की कार्यवाही से बचाना था।इस न्यायालय ने घोषित किया कि राज्य या इसके साधन के अलावा

व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा संपत्ति के अधिकारों का उल्लंघन अनुच्छेद 19 (1) (च) के दायरे में नहीं थे।

इसके अलावा, इस न्यायालय ने अनुच्छेद 31 (1), जैसा कि वह तब था, एवं अनुच्छेद 21 के बीच तुलना की क्योंकि दोनों अनुच्छेद राज्य पर नकारात्मक कर्तव्य डालते हैं।उस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि अनुच्छेद 21 में राज्य का कोई स्पष्ट संदर्भ नहीं है, यह सुझाव नहीं दिया जा सकता है कि अनुच्छेद का उद्देश्य निजी व्यक्तियों द्वारा उल्लंघन के खिलाफ जीवन एवं स्वतंत्रता को सुरक्षा प्रदान करना था।कि "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" शब्द इस तरह के सुझाव को बाहर करते हैं कि अनुच्छेद 21 क्षैतिज रूप से काम करेगा।

उपरोक्त निर्णय इस न्यायालय की यह अभिनिर्धारित करने की अनिच्छा का उदाहरण है कि संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के तहत मौलिक अधिकार क्षैतिज रूप से काम करेंगे।यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि उपरोक्त मामले में, इस न्यायालय ने स्वीकार किया है कि शिकायत किए गए उल्लंघन के निवारण के लिए वैधानिक कानून के तहत एक उपयुक्त उपाय मौजूद है।इसलिए, जबकि यह न्यायालय इस बात को ध्यान में रखता था कि सामान्य कानून के दायरे में अधिकार, जिनमें से कुछ ने वैधानिक मान्यता प्राप्त कर ली है, क्षैतिज रूप से काम करते हैं, अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत मौलिक अधिकार, बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट की मांग के मामले को छोड़कर नहीं करते हैं।

(ख) **पारसी सहकारी आवास सोसायटी लिमिटेड बनाम जिला पंजीयक, सहकारी समितियाँ (शहरी), (2005) 5 एस. सी. सी. 632,** में याचिकाकर्ता सोसायटी अपने मूल कानून, बॉम्बे कोऑपरेटिव सोसाइटीज एक्ट के तहत अपने स्वयं के उपनियमों के साथ एक पंजीकृत सोसायटी थी। उप-कानून 7 के अनुसार, केवल पारसी समुदाय के सदस्य ही सोसायटी के सदस्य बनने के पात्र थे।इसका प्रभाव यह था कि चूंकि आवास के शेयरों को केवल सदस्यों को हस्तांतरित किया जा सकता था, प्रभावी रूप से केवल पारसी ही सहकारी समिति के तत्वावधान में भूखंड खरीद सकते थे। उपनियमो में यह प्रतिबंधात्मक वाचा इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती का विषय बन गई कि यह संविधान में निहित समानता के अधिकार का उल्लंघन करती है।इस न्यायालय ने इस तरह की चुनौती को स्वीकार करने से इनकार कर दिया एवं कहा कि सोसायटी के उप-कानून कंपनी के आर्टिकल्स ऑफ एसोसिएशन की प्रकृति के हैं एवं एक क़ानून की तरह नहीं हैं।

उप-नियम "केवल उनसे प्रभावित व्यक्तियों के बीच बाध्यकारी।"एक निजी संविदात्मक समझौता संविधान के भाग III के तहत सामान्य जांच के अधीन नहीं है।इस न्यायालय ने राज्य द्वारा पारित भेदभावपूर्ण कानून एवं समाज या संघ के भेदभावपूर्ण उप-कानूनों के बीच अंतर किया, जो 'राज्य' नहीं है।तदनुसार, इसने अभिनिर्धारित किया कि जबकि कोई विधान संविधान के भाग III की कसौटी पर चुनौती के अधीन हो सकता है, किसी सोसायटी या संघ के उपनियम नहीं हो सकते।

यह निर्णय मौलिक अधिकारों के क्षैतिज संचालन की इस न्यायालय की अस्वीकृति का भी प्रदर्शन है, जिससे वे निजी पक्षों के बीच बातचीत के लिए सीधे लागू होते हैं, चाहे वे संविदात्मक हों या अन्यथा।

iii) हालांकि मैं इस तथ्य को ध्यान में रखता हूं कि वर्षों से संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत परिभाषित "राज्य" की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है।अपने न्यायशास्त्रीय श्रम के माध्यम से, इस न्यायालय ने कई सिद्धांत एवं सिद्धांत तैयार किए हैं, ताकि नागरिक न केवल "राज्य" के खिलाफ अपने मौलिक अधिकारों को लागू कर सकें, जैसा कि सख्त अर्थ में "सरकार की एजेंसी" के रूप में परिभाषित किया गया है, बल्कि सार्वजनिक चरित्र से ओत-प्रोत संस्थाओं के खिलाफ भी, या अधिकार जो ऐसे कार्य करते हैं जो सरकारी कार्यों से निकटता से मिलते-जुलते हैं। **[देखिएःप्रदीप कुमार विश्वास बनाम भारतीय रासायनिक जीव विज्ञान संस्थान, (2002) 5 एस. सी. सी. 111; ज़ी टेलीफिल्म्स लिमिटेड बनाम।भारत संघ, (2005) 4 एस. सी. सी. 649; जेनेट जयपॉल बनाम एस. आर. एम. विश्वविद्यालय, (2015) 16 एससीसी 530]**

इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 12 के दायरे का उत्तरोत्तर विस्तार किया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि एक निजी संस्था, जो एक सार्वजनिक कर्तव्य/कार्य करती है एवं इसलिए हमारे राष्ट्रीय जीवन को सूचित करती है, केवल इसलिए स्कॉट-फ्री न हो क्योंकि यह "राज्य" स्ट्रिक्टो सेंसु नहीं है।इस तरह के

अधिकार उनके द्वारा किए गए सार्वजनिक या वैधानिक कार्यों के कारण संवैधानिक दायित्वों से भरे हुए हैं।इस मोड़ पर, इस धारणा के बीच के अंतर पर विचार करना आवश्यक है कि मौलिक अधिकारों को किसी निजी संस्था के खिलाफ उसके कार्यों की सार्वजनिक प्रकृति के कारण लागू किया जा सकता है, जैसा कि सार्वभौमिक संचालन के विपरीत है।

एक निजी निकाय, जो निजी क्षमता में कार्य करता है, एक निजी कार्य को पूरा करता है, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के दावों के लिए स्वयंसिद्ध रूप से उत्तरदायी नहीं हो सकता है।

रामकृष्ण मिशन बनाम कागो कुन्या, (2019) 16 एस. सी. सी. 303 में इस न्यायालय का निर्णय

भी अत्यधिक निर्देशात्मक है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के लिए निजी संस्थाओं की कार्रवाइयों की सुविधा के मुद्दे पर निर्देशात्मक।उक्त मामले में, इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या याचिकाकर्ता मिशन द्वारा संचालित अस्पताल एक सार्वजनिक कार्य करता है जो इसे अनुच्छेद 226 के तहत रिट अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी बनाता है।इस न्यायालय ने पाया कि अस्पताल एवं मिशन अनुच्छेद 226 के तहत रिट अधिकार क्षेत्र के लिए उत्तरदायी नहीं थे क्योंकि अस्पताल चलाना एक सार्वजनिक कार्य नहीं होगा।इस न्यायालय ने आगे इस बात पर प्रकाश डाला कि जब कोई निजी संस्था सार्वजनिक कार्य करती है, तब भी न्यायालय को यह जांच करने की आवश्यकता होगी कि क्या

उक्त संस्था द्वारा प्राप्त सहायता अनुदान में उसके खर्च का एक महत्वपूर्ण हिस्सा शामिल है।इस न्यायालय ने यह घोषणा की कि एक क़ानून द्वारा एक निजी निकाय का विनियमन इसे सार्वजनिक कार्य का रंग नहीं देता है।एक सार्वजनिक समारोह वह माना जाता था जो "उन कार्यों से निकटता से संबंधित होता है जो राज्य द्वारा अपनी संप्रभु क्षमता में किए जाते हैं।" तदनुसार, यह अभिनिर्धारित किया गया कि अस्पताल एक सार्वजनिक कार्य नहीं कर रहा था क्योंकि इसके द्वारा किए गए कार्य केवल राज्य अधिकारियों द्वारा किए गए कार्यों के समान नहीं थे।" यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चिकित्सा सेवाएं निजी एवं साथ ही राज्य संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती हैं एवं इसलिए, चिकित्सा सेवाओं की प्रकृति ऐसी नहीं थी कि उन्हें केवल राज्य प्राधिकरणों द्वारा किया जा सके।

इस प्रकार, रामकृष्ण मिशन में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार, राज्य द्वारा कानून के माध्यम से या अन्यथा विनियमन; राज्य से अल्प राशि की सहायता की प्राप्ति; राज्य द्वारा रियायतों की प्राप्ति; संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालयों के रिट अधिकार क्षेत्र के लिए एक निजी संस्था को उत्तरदायी नहीं बनाते हैं।

इस प्रकार, नागरिकों के बीच मौलिक अधिकारों के एक क्षैतिज दृष्टिकोण को मान्यता देना निर्थक होगा एवं मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के दावों का मनोरंजन करने के उद्देश्य से "राज्य" की पहचान करने के लिए इस न्यायालय द्वारा बनाए गए सभी परीक्षणों एवं सिद्धांतों को निरर्थक बना देता है।यदि इस न्यायालय का इरादा अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत अधिकारों सहित मौलिक अधिकारों को क्षैतिज रूप से

संचालित करने की अनुमति देना होता, तो यह न्यायालय अनुच्छेद 12 के तहत परिभाषित "राज्य" के सही अर्थ एवं दायरे को निर्धारित करने के लिए परीक्षणों को विकसित करने एवं परिष्कृत करने में संलग्न नहीं होता।यह न्यायालय रिट याचिकाओं की स्थिरता के रूप में मौलिक प्रश्नों पर विचार-विमर्श किए बिना सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं के खिलाफ मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के दावों पर विचार करता।यद्यपि इस न्यायालय ने अनुच्छेद 12 के तहत परिभाषित "राज्य" के दायरे का काफी विस्तार किया है, लेकिन ऐसा विस्तार विचाराधीन इकाई द्वारा किए गए कार्यों की प्रकृति एवं राज्य द्वारा उस पर प्रयोग किए गए नियंत्रण की मात्रा जैसे विचारों पर आधारित है।यह अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत मौलिक अधिकारों की क्षैतिजता को मान्यता देने से काफी अलग है, सिवाय बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट की मांग के।इस तरह की मान्यता संविधान के अनुच्छेद 12 के दायरे के रूप में इस न्यायालय द्वारा विकसित न्यायशास्त्र की अवहेलना के बराबर होगी।

(iv) एक अन्य पहलू जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि एक रिट न्यायालय सामान्य रूप से उन मामलों में रिट जारी करने का निर्णय नहीं करता है जहां सामान्य कानून या वैधानिक कानून के तहत वैकल्पिक एवं प्रभावी उपचार मौजूद हैं, विशेष रूप से निजी व्यक्तियों के खिलाफ।इसलिए, यदि अनुच्छेद 19/21 के तहत मौलिक अधिकारों के क्षैतिज संचालन को मान्यता दी जाती है, तो भी ऐसी मान्यता का कोई फायदा नहीं होगा क्योंकि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का एक रिट न्यायालय के समक्ष दावा इस आधार पर विफल हो जाएगा कि समान सामान्य

कानून अधिकार जो मूल अधिकार की सामग्री में समान है, को सामान्य कानूनी उपायों का सहारा लेकर लागू किया जा सकता है।इसलिए, इस आधार पर कि सामान्य कानून में एक वैकल्पिक एवं प्रभावी उपाय मौजूद है, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए क्षैतिज दावा एक रिट न्यायालय के समक्ष विफल हो जाएगा।

इसे एक चित्रण के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।मैं तर्क के उद्देश्य से मान लेता हूं कि अनुच्छेद 19 (1) (ए) सहपठित अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार को अनुच्छेद के साथ पढ़ा जाता है।

क्षैतिज रूप से काम करने की अनुमति है। एक व्यक्ति तब ऐसे अधिकार के उल्लंघन के लिए किसी अन्य निजी व्यक्ति या संस्था के खिलाफ रिट याचिका दायर करने का पात्र होगा।उदाहरण के लिए उल्लंघन पीड़ित व्यक्ति पर मौखिक हमला हो सकता है, जिसका प्रभाव ऐसे व्यक्ति की गरिमा या प्रतिष्ठा को कम करने का हो सकता है।गरिमा एवं प्रतिष्ठा अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के आवश्यक पहलू हैं; साथ ही, उन्हें सामान्य कानून अधिकारों के रूप में भी मान्यता दी जाती है क्योंकि वे मानव व्यक्तित्व के मौलिक गुण हैं जिन्हें सामान्य कानून में सर्वोच्च मूल्य माना जाता है।घोषणाओं, निषेधाज्ञाओं एवं नुकसान सहित सामान्य कानूनी उपचार, गरिमा एवं प्रतिष्ठा के अधिकार सहित सामान्य कानूनी अधिकारों को किसी भी नुकसान के निवारण के लिए उपलब्ध हैं।इस तरह के उपचारों को विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 एवं भारतीय दंड संहिता के तहत भी वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त है।इसलिए, सामान्य कानून के तहत एक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के कारण, न्यायालय अनुच्छेद 226

या 32, जैसा भी मामला हो, के तहत एक रिट याचिका पर विचार करने के लिए अनिच्छुक होंगे।

v) इसके अलावा, यह सामान्य बात है कि रिट अदालतें तथ्य के विवादित प्रश्नों के निर्णय में प्रवेश नहीं करती हैं।लेकिन, एक निजी संस्था द्वारा अनुच्छेद 19/21 के तहत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के बारे में प्रश्नों में हमेशा तथ्य के विवादित प्रश्न शामिल होंगे।इसलिए, यह एक और कठिनाई है जिसे एक रिट कार्यवाही में ऐसे अधिकारों के क्षैतिज संचालन का निर्धारण करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। हालाँकि, इस मामले का एक और पहलू है जिस पर चर्चा करने की आवश्यकता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट एक आदेश है जो उस व्यक्ति को निर्देश देता है जिसने किसी अन्य को हिरासत में लिया है कि वह हिरासत में लिए गए व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष पेश करे ताकि न्यायालय यह पता लगा सके कि उसे किस आधार पर या किस कारण से कैद किया गया है, एवं अगर हिरासत के लिए कोई कानूनी औचित्य नहीं है तो उसे रिहा कर दिया जाए।बंदी प्रत्यक्षीकरण की एक रिट को एकमुश्त न्याय प्रदान किया जाता है एवं आवेदक को केवल प्रथम दृष्टया, अपने या किसी अन्य व्यक्ति के गैरकानूनी निरोध का प्रदर्शन करना चाहिए।यदि निरोध के लिए कोई औचित्य नहीं है एवं यह गैरकानूनी है, तो अधिकार के रूप में एक रिट जारी की जाती है **भारत बनाम पॉल माणिकम, (2003) 8 एस. सी. सी. 342 के अनुसार**। बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट का महत्तव यह है कि एक संवैधानिक न्यायालय का कर्तव्य है जो अवैध एवं मनमाने ढंग से हिरासत में लिए जाने के खिलाफ एक

नागरिक की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए रिट जारी करता है।मेरे विनम्र विचार में, एक अवैध हिरासत संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है, चाहे हिरासत राज्य द्वारा हो या किसी निजी व्यक्ति द्वारा।

इसलिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष होगी, न केवल जब व्यक्ति को राज्य द्वारा हिरासत में लिया गया हो, बल्कि तब भी जब उसे किसी निजी व्यक्ति द्वारा हिरासत में लिया गया हो।**मोहम्मद.इकराम हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1964 एस सी 1625 1630** में। मेरे विचार में, संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत ऐसी याचिका अनुच्छेद 32 (2) के संदर्भ में बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट की मांग के लिए इस न्यायालय के समक्ष भी होगी।ऐसी रिट न केवल उस राज्य के खिलाफ जारी की जा सकती है जिसने किसी व्यक्ति को अवैध रूप से हिरासत में लिया हो, बल्कि किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ भी जारी की जा सकती है।इसलिए, अवैध निरोध के संदर्भ में, अनुच्छेद 21 निजी व्यक्तियों के खिलाफ भी क्षैतिज रूप से काम करेगा।इस तरह का त्याग करना पड़ता है, हालांकि मौलिक अधिकार आम तौर पर संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत राज्य के खिलाफ लागू किए जाते हैं।अन्यथा, बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के माध्यम से उपचार अधूरा हो जाएगा यदि संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ उक्त उपाय उपलब्ध नहीं है।इसलिए अवैध हिरासत के संदर्भ में, यहां तक कि एक निजी व्यक्ति द्वारा भी, मेरा मानना है कि अनुच्छेद 21 क्षैतिज रूप से काम करेगा एवं बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट एक निजी व्यक्ति के खिलाफ जारी की जा सकती है जैसे

संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत, उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण के खिलाफ ऐसी रिट जारी कर सकता है।लेकिन संविधान के अनुच्छेद 32 (2) के संदर्भ में भी, उक्त उपाय को केवल राज्य के खिलाफ प्रतिबंधित करना उचित नहीं हो सकता है, लेकिन इसे निजी व्यक्तियों के खिलाफ भी उपलब्ध कराया जा सकता है, जिस स्थिति में इस न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई शक्ति मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 142 (1) के अनुसार हो सकती है।संदर्भ की सुगमता के लिए अनुच्छेद 142 (1) को निम्नानुसार निकाला जा सकता हैः

vi) "142. उच्चतम न्यायालय की फरमानों एवं आदेशों का प्रवर्तन एवं जब तक कि खोज आदि के बारे में न हो-(1)

उच्चतम न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसी डिक्री पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जो उसके समक्ष लंबित किसी भी मामले या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो, एवं इस तरह से पारित कोई डिक्री या आदेश भारत के पूरे क्षेत्र में उस तरीके से लागू किए जा सकते हैं जो संसद द्वारा बनाई गई किसी कानून द्वारा या उसके तहत निर्धारित किया जा सकता है एवं जब तक कि उस संबंध में प्रावधान इस तरह से नहीं किया जाता है, तब तक ऐसी तरीके से लागू किया जा सकता है जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्धारित करे।"

इसलिए, इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी की जा सकती है, न केवल संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत परिभाषित 'राज्य' के खिलाफ बल्कि एक निजी व्यक्ति के खिलाफ भी।ऐसा इसलिए है क्योंकि एक

निजी व्यक्ति द्वारा अवैध रूप से हिरासत में रखना एक यातना है एवं एक संवैधानिक यातना के समान प्रकृति का है।ऐसा कहने का कारण यह है कि किसी राज्य या किसी निजी व्यक्ति द्वारा अवैध रूप से हिरासत में लिए जाने का बंदी पर प्रत्यक्ष एवं समान प्रभाव पड़ता है।बंदी अपनी स्वतंत्रता खो देता है एवं उसकी जान को खतरा हो सकता है।

इस न्यायालय द्वारा पिछले अवसरों पर निजी व्यक्तियों के खिलाफ, विशेष रूप से अपहरण, बाल अभिरक्षा आदि के मामलों में बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट की प्रकृति में निर्देश जारी किए गए हैं। **[उदाहरण के लिए देखें -निर्मलजीत कौर (2) बनाम पंजाब राज्य (2006) 9 एस. सी. सी. 364]** ऐसे मामलों में, पुलिस थाने के समक्ष आपराधिक मामला दर्ज करने की प्रक्रिया का सहारा लेना व्यर्थ साबित हो सकता है क्योंकि ऐसे मामलों में त्वरित कार्यवाही समय की आवश्यकता है।अनुच्छेद 226 के साथ-साथ संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट, एक त्वरित उपाय है, एवं इस तरह के उपाय को एक निजी व्यक्ति के खिलाफ भी उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।

यह उचित है कि संबंधित उच्च न्यायालय से पहले संपर्क किया जाए, जिसके अधिकार क्षेत्र में अवैध रूप से हिरासत में लिया गया है।संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय की अधिकारिता को लागू करने के लिए सीधे इस न्यायालय से संपर्क करने के लिए, याचिकाकर्ता को यह दिखाना होगा कि संबंधित उच्च न्यायालय से संपर्क क्यों नहीं किया गया है।ऐसे मामलों में जहां उच्च न्यायालय का रुख करना

व्यर्थ होगा, एवं जहां इस संबंध में संतोषजनक कारण बताए गए हैं, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने की मांग करने वाली याचिका पर विचार किया जा सकता है।हालाँकि, ऐसी परिस्थितियों के अभाव में, संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत याचिका दायर करने को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए, **भारत संघ बनाम पॉल माणिकम, (2003) 8 एस. सी. सी. 342।**

ऊपर उल्लिखित न्यायिक पूर्ववर्ती उपरोक्त चर्चा के साथ संरेखित हैं। उपरोक्त चर्चा के आलोक में, प्रश्न संख्या 2 का उत्तर इस प्रकार दिया गया हैः

"सामान्य कानून के दायरे में अधिकार, जो अनुच्छेद 19/21 के तहत मौलिक अधिकारों के समान या समान हो सकते हैं, क्षैतिज रूप से काम करते हैंःहालाँकि, अनुच्छेद 19 एवं 21 के तहत मौलिक अधिकार, ए के समक्ष क्षैतिज रूप से न्यायसंगत नहीं हो सकते हैं। संवैधानिक न्यायालय उन अधिकारों को छोड़कर जिन्हें वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है एवं लागू कानून के अनुसार।हालाँकि, वे सामान्य कानूनी उपचारों की तलाश के लिए आधार हो सकते हैं।लेकिन बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के रूप में एक उपाय, यदि संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर किसी निजी व्यक्ति के खिलाफ मांगा जाता है, तो संवैधानिक न्यायालय के समक्ष किया जा सकता है, यानी उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के माध्यम से या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 142 के साथ पठित अनुच्छेद 32 के 789 कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। [बी. वी. नागरत्ना, जे.]

बी.माध्यम से।"

रीःप्रश्न संख्या 3: ***क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत किसी नागरिक के अधिकारों की सकारात्मक रूप से रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है, भले ही किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से किसी नागरिक की स्वतंत्रता को खतरा हो?***

44. इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, उन परिस्थितियों पर विचार करना विवेकपूर्ण हो सकता है जिनके तहत इस न्यायालय ने पहले कहा है कि राज्य निम्नलिखित निर्णयों से प्रत्येक मनुष्य के जीवन एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए बाध्य हैः

(i) **पं. परमानंद कटारा बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 2039**, इस न्यायालय का सामना इस सवाल से किया गया था कि क्या एक डॉक्टर का पेशेवर दायित्व है कि वह प्रक्रियात्मक आपराधिक कानून के अनुपालन के बहाने बिना किसी देरी के चिकित्सा उपचार के लिए लाए गए व्यक्ति को तुरंत अपनी सेवाएं प्रदान करे। इस न्यायालय ने घोषणा की कि जीवन की रक्षा के लिए उचित विशेषज्ञता के साथ अपनी सेवाओं का विस्तार करने के लिए एक डॉक्टर का दायित्व सर्वोपरि एवं निरपेक्ष था एवं प्रक्रिया का कोई भी कानून जो इस दायित्व के निर्वहन में हस्तक्षेप करेगा, संविधान के अनुच्छेद 21 के विरोधी होगा।यह भी देखा गया कि जहां चिकित्सा पेशेवरों की ओर से आपात स्थितियों में उपचार करने में देरी होती है, वहां राज्य की कार्यवाही हस्तक्षेप कर सकती है।

(ii) **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बनाम अरुणाचल प्रदेश राज्य, (1996) 1 एस. सी. सी. 742** में, यह न्यायालय चकमाओं को अरुणाचल प्रदेश राज्य से बाहर निकालने के

लिए अखिल अरुणाचल प्रदेश छात्र संघ द्वारा दी गई धमकियों से संबंधित संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर एक रिट याचिका पर विचार किया गया।यह याचिकाकर्ता का मामला था कि बड़ी संख्या में चकमा, जो पूर्ववर्ती पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) के थे, को 1964 में कप्तान जलविद्युत परियोजना द्वारा विस्थापित कर दिया गया था। उन्होंने असम एवं त्रिपुरा में शरण ली थी।उनमें से अधिकांश इन राज्यों में बस गए एवं समय के साथ भारतीय नागरिक बन गए।चूंकि बड़ी संख्या में शरणार्थियों ने असम में शरण ली थी, इसलिए राज्य सरकार ने उन सभी के पुनर्वास में असमर्थता व्यक्त की थी एवं कुछ अन्य राज्यों से इस संबंध में सहायता का अनुरोध किया था। पूर्वोत्तर राज्यों के बीच इस तरह के परामर्श के परिणामस्वरूप, अरुणाचल प्रदेश में चकमाओं की कुछ आबादी रहने लगी।यह भी कहा गया कि ऐसे कई व्यक्तियों ने नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 5 (1) (ए) के तहत नागरिकता देने के लिए अभ्यावेदन दिया था, हालांकि, इस संबंध में कोई निर्णय नहीं दिया गया था।अंतरिम में, अरुणाचल प्रदेश में रहने वाले नागरिकों एवं चकमाओं के बीच संबंध बिगड़ गए एवं उन्हें राज्य से जबरन निष्कासित करने के उद्देश्य से दमनकारी उपायों के अधीन किया जा रहा था।उस पृष्ठभूमि में, एक रिट याचिका दायर की गई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, शत्रुतापूर्ण स्थिति को नियंत्रित करने के लिए राज्य की ओर से अनिच्छा का आरोप लगाया गया।इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ अरुणाचल प्रदेश राज्य को यह सुनिश्चित करने का निर्देश देते हुए एक आदेश जारी किया कि राज्य में रहने वाले प्रत्येक चकमा के जीवन एवं स्वतंत्रता की

रक्षा की जाए, एवं संगठित समूहों द्वारा उन्हें राज्य से बाहर निकालने या बाहर निकालने के किसी भी प्रयास को, यदि आवश्यक हो, तो अर्धसैनिक या पुलिस बल की सेवा की मांग करके विफल कर दिया जाए।यह भी निर्देश दिया गया कि चकमाओं द्वारा नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 5 (1) (ए) के तहत नागरिकता देने के लिए किए गए आवेदन पर विचार किया जाए एवं इस तरह के विचार के लंबित रहने तक किसी भी चकमा को राज्य से बेदखल नहीं किया जाएगा।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त मामले में, इस न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का हवाला देते हुए राज्य को निजी अभिनेताओं द्वारा खतरों से चकमा के अधिकारों की रक्षा करने का निर्देश दिया।उक्त निर्देश शत्रुतापूर्ण स्थिति को नियंत्रित करने के लिए उपलब्ध तंत्र को जुटाने में राज्य की निष्क्रियता की पृष्ठभूमि में जारी किए गए थे एवं इस तरह की निष्क्रियता का प्रभाव चकमाओं को उनके जीवन के अधिकार एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने पर पड़ा था या हो सकता था।यह उस संदर्भ में था कि इस न्यायालय ने घोषणा की कि राज्य प्रत्येक मनुष्य के जीवन एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए बाध्य है, चाहे वह नागरिक हो या अन्यथा।

iii) **गौरव कुमार बंसल बनाम भारतीय संघ, (2015) 2 एस. सी. सी. 130**, इस न्यायालय ने आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 की धारा 12 को देखते हुए कोविड-19 महामारी के कारण जान गंवाने वाले मृतकों के परिवारों को अनुग्रह राशि प्रदान करने का निर्देश देते हुए संविधान के अनुच्छेद 21 पर भरोसा किया।

iv) इसी तरह, **स्वराज अभियान बनाम भारत संघ, (2016) में 7 एस. सी. सी. 498**, इस न्यायालय ने सूखे के कारण प्रभावित देश के कुछ हिस्सों में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा, 2013 को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए भारत संघ को आदेश पत्र जारी करने में संविधान के अनुच्छेद 21 पर भरोसा किया।

उपरोक्त मामले स्पष्ट करते हैं कि इस न्यायालय ने कहा है कि राज्य निम्नलिखित संदर्भों में प्रत्येक मनुष्य के जीवन एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए बाध्य हैः

क) जहां राज्य की ओर से निष्क्रियता, निजी कर्ताओं के बीच शत्रुतापूर्ण स्थिति को रोकने के लिए, व्यक्तियों को उनके जीवन एवं स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव डाल सकती थी;

ख) जहां राज्य किसी कानून या नीति या योजना के तहत अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रहा था, एवं ऐसी विफलता का प्रभाव व्यक्तियों को उनके जीवन एवं स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित करने का हो सकता था।

ग) इसलिए यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 21 के तहत राज्य के कर्तव्य की इस न्यायालय की स्वीकृति, केवल एक नकारात्मक कर्तव्य से संबंधित है जो किसी व्यक्ति को कानून के अनुसार छोड़कर, उसके जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित नहीं करती है।इस न्यायालय ने किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कृत्यों या चूक से नागरिक की स्वतंत्रता को खतरे से बचाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत राज्य की ओर से एक सकारात्मक कर्तव्य को मान्यता नहीं दी है।बेशक, ऐसे कई कानून हैं जो राज्य एवं उसकी मशीनरी पर निजी अभिनेताओं के बीच शत्रुतापूर्ण

स्थितियों को रोकने का दायित्व डालते हैं; निजी अभिकर्ताओं द्वारा किसी भी कार्यवाही को पीछे हटाने के लिए जो अन्य व्यक्तियों आदि के प्राण एवं स्वतंत्रता को कमजोर करेगा।

इस न्यायालय ने कई मौकों पर राज्य के अधिकारियों को इस तरह के वैधानिक दायित्वों को पूरा करने का निर्देश देते हुए आदेश पत्र जारी किए हैं।ऐसा निर्देश देते हुए, इस न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लेख किया होगा।हालांकि, अनुच्छेद 21 के इस तरह के संदर्भ को किसी अन्य नागरिक या निजी एजेंसी के कार्यों या चूक से नागरिक की स्वतंत्रता को खतरे से बचाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत राज्य की ओर से एक सकारात्मक कर्तव्य की न्यायालय द्वारा स्वीकृति के रूप में नहीं माना जाना चाहिए।यह देखते हुए कि अनुच्छेद 21 केवल एक नकारात्मक कर्तव्य को लागू करता है, इसका उल्लंघन केवल तभी होगा जब राज्य एक क़ानून या योजना को लागू करके एक दायित्व निभाता है, लेकिन इसे पूरा नहीं करता है।इस प्रकार, उल्लंघन केवल तभी होगा जब कोई योजना शुरू की गई हो, लेकिन उसे उचित रूप से लागू नहीं किया जा रहा हो, जैसा कि पूर्व उल्लिखित मामलों में उल्लेख किया गया था।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, प्रश्न संख्या 3 का उत्तर इस प्रकार दिया गया हैः

"अनुच्छेद 21 के तहत राज्य पर डाला गया कर्तव्य एक नकारात्मक कर्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति को कानून के अनुसार छोड़कर उसके जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित न करे।संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार पर

आधारित वैधानिक एवं संवैधानिक कानून के तहत अपने ऊपर लगाए गए दायित्वों को पूरा करने का राज्य का सकारात्मक कर्तव्य है।इस तरह के दायित्वों के लिए राज्य द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है जहां एक निजी कर्ता के कार्य किसी अन्य व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता को खतरे में डाल सकते हैं।किसी नागरिक के अधिकारों की रक्षा के लिए वैधानिक कानून के तहत राज्य को दिए गए कर्तव्यों का पालन करने में विफलता, एक नागरिक को उसके जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित कर सकती है।जब कोई नागरिक अपने जीवन के अधिकार एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता से इतना वंचित होता है, तो राज्य ने अनुच्छेद 21 के तहत उस पर लगाए गए नकारात्मक कर्तव्य का उल्लंघन किया होगा।"

रीःप्रश्न संख्या 4:क्या किसी मंत्री द्वारा दिए गए बयान, जिसका पता राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा के लिए लगाया जा सकता है, का श्रेय अप्रत्यक्ष रूप से सरकार को दिया जा सकता है, विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए?

45. एक मंत्री दो क्षमताओं में बयान दे सकता हैःपहला, अपनी व्यक्तिगत क्षमता में; दूसरा, अपनी आधिकारिक क्षमता में एवं सरकार के प्रतिनिधि के रूप में।

यह कोई समझदारी की बात नहीं है कि बयानों की पूर्व श्रेणी के संबंध में, किसी भी प्रतिनिधित्व दायित्व का श्रेय स्वयं सरकार को नहीं दिया जा सकता है।बयानों की बाद की श्रेणी राज्य के किसी भी मामले में पता लगाने योग्य हो सकती है या सरकार की रक्षा के लिए की जा सकती है।यदि ऐसे बयान अपमानजनक या अपमानजनक हैं एवं

न केवल व्यक्तिगत मंत्री के व्यक्तिगत विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि सरकार के विचारों को भी मूर्त रूप देते हैं, तो ऐसे बयानों का श्रेय सरकार को ही दिया जा सकता है, विशेष रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को देखते हुए।दूसरे शब्दों में, यदि ऐसे विचारों का समर्थन न केवल एक व्यक्तिगत मंत्री द्वारा दिए गए बयानों में किया जाता है, बल्कि वे सरकार के रुख को भी दर्शाते हैं, तो ऐसे बयानों का श्रेय अप्रत्यक्ष रूप से सरकार को दिया जा सकता है।हालाँकि, यदि ऐसे बयान किसी व्यक्तिगत मंत्री के भटके हुए विचार हैं एवं सरकार के विचारों के अनुरूप नहीं हैं, तो उनका श्रेय व्यक्तिगत रूप से मंत्री को दिया जाएगा, न कि सरकार को।

अतः प्रश्न संख्या 4 का उत्तर इस प्रकार दिया गया हैः

"यदि किसी मंत्री द्वारा दिए गए बयान का पता राज्य के किसी भी मामले में या सरकार की रक्षा के लिए लगाया जा सकता है, तो सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत का आह्वान करके सरकार को अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जब तक कि ऐसा बयान सरकार के दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है।यदि ऐसा कथन सरकार के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है, तो इसका श्रेय व्यक्तिगत रूप से मंत्री को दिया जा सकता है।"

रीःप्रश्न संख्या 5:क्या किसी मंत्री का बयान, जो संविधान के भाग तीन के तहत किसी नागरिक के अधिकारों से असंगत है, ऐसे संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन है एवं 'संवैधानिक अपकृत्य' के रूप में कार्यवाही योग्य है?.

46. जबकि सार्वजनिक कानून एवं निजी कानून को सिद्धांत रूप में, विश्लेषणात्मक रूप से अलग माना जाता है, व्यवहार में, दोनों क्षेत्रों के बीच विभाजन अक्सर धुंधला हो जाता है।नतीजतन, एक क्षेत्र के विचार, अवधारणाएं एवं उपकरण दूसरे को प्रभावित करते हैं।इस तरह के मिश्रण ने क्षैतिज प्रभावों के सिद्धांत को जन्म दिया है जैसा कि यहां ऊपर चर्चा की गई है, जिसमें एक संवैधानिक निर्देश या मानदंड (मौलिक अधिकार) की व्याख्या अदालतों द्वारा व्यक्तियों के बीच लागू करने के लिए की जाती है।

47. एक अन्य अवधारणा जिसका पता सार्वजनिक कानून एवं निजी कानून के बीच बातचीत से लगाया जा सकता है, वह है संवैधानिक अपकृत्य, जो संक्षेप में राज्य के अभिकर्ता जो किसी व्यक्ति या समूह के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन के कृत्यों एवं चूक के लिए राज्य पर प्रतिनिधि दायित्व का आरोप लगाता है।

एक संवैधानिक अपकृत्य सरकार के एक प्रतिनिधि द्वारा अपने संवैधानिक अधिकारों, विशेष रूप से मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, जो अपनी आधिकारिक क्षमता में कार्य करता है।कथित संवैधानिक उल्लंघन कार्यवाही का एक कारण बनाता है जो किसी भी अन्य उपलब्ध राज्य यातना उपचार से अलग है।हालाँकि, यह अपने साथ अपकृत्य कानून का आवश्यक तत्व रखता है, जो एक सक्षम न्यायालय द्वारा मौद्रिक प्रतिकर प्रदान करके नुकसान या उपहतिका निवारण करना चाहता है।

लेखन याचिकाःप्रक्रिया के सिद्धांत

48. आम तौर पर उच्चतम न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 या उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 को लागू करने वाली रिट याचिका दायर करने के लिए एक असाधारण उपाय का सहारा लिया जाता है।उच्च न्यायालय की विशेषाधिकार शक्तियों का प्रयोग पक्षों के निजी अधिकारों को लागू करने के लिए नहीं किया जाता है, बल्कि यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से किया जाता है कि सार्वजनिक प्राधिकरण कानून की सीमाओं के भीतर कार्य करें।इस प्रकार लिखित उपचार बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट को छोड़कर कोई निजी कानूनी उपचार नहीं है।इस प्रकार, रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत परिभाषित स्थानीय प्राधिकरणों एवं अन्य प्राधिकरणों सहित राज्य के खिलाफ होगी, जो एक समावेशी परिभाषा है जो इसके दायरे में आती है एवं सभी वैधानिक निकायों के साधनों एवं प्राधिकरणों या व्यक्तियों को सार्वजनिक कार्यों या सार्वजनिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए आरोपित या अपेक्षित करती है।उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के तहत संविधान के भाग 3 द्वारा गारंटीकृत किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए एक रिट याचिका दायर की जा सकती है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत, उच्च न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से अधिक व्यापक है क्योंकि उक्त अनुच्छेद को मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए भी लागू किया जा सकता है "।

अपकृत्य दायित्वः

49. भारत में, सरकार को अपने कर्मचारियों के यातनापूर्ण कृत्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है एवं कानूनी गलती के परिणामस्वरूप पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकर देने का आदेश दिया जा सकता है।संविधान का अनुच्छेद 295 (बी) घोषित करता है कि केंद्र सरकार या राज्य का दायित्व सरकार "किसी भी अनुबंध से या अन्यथा" उत्पन्न हो सकती है। अन्यथा इस शब्द का तात्पर्य है कि उक्त दायित्व यातनापूर्ण कृत्यों के लिए भी उत्पन्न हो सकता है।अनुच्छेद 300 इस तरह के दायित्व को लागू करने के लिए सरकार के खिलाफ उचित कार्यवाही की स्थापना को सक्षम बनाता है।

50. संविधान के प्रारंभ से पहले भी, अपने सेवकों या एजेंटों के यातनापूर्ण कृत्यों के लिए सरकार का दायित्व था प्रायद्वीपीय और ओरिएंटल स्टीम नेविगेशन कंपनी बनाम द्वारा मान्यता प्राप्तसिकरी।राज्य का, (1868-69) 5 बम एच. सी. आर. ऐप 1.इसके बाद संविधान के प्रारंभ में, ऐसे कई मामले सामने आए हैं जिनमें भारत संघ एवं राज्य सरकारों को उनके कर्मचारियों, सेवकों एवं एजेंटों के यातनापूर्ण कृत्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था।वे सभी मामले आवश्यक रूप से सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के रिट अधिकार क्षेत्र का उपयोग करके नहीं थे।हालाँकि, सरकार अपने अधिकारियों, सेवकों या कर्मचारियों के यातनापूर्ण कृत्यों के लिए उत्तरदायी है, आम तौर पर, इस तरह के दायित्व को रिट न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है।पीड़ित पक्ष को देश के कानून के अनुसार नुकसान या मुआवजे की मांग करने के लिए सक्षम न्यायालय या प्राधिकरण से संपर्क करने का अधिकार है।

51. लेकिन यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है, एवं यदि न्यायालय संतुष्ट है कि याचिकाकर्ता की शिकायत अच्छी तरह से आधारित है, तो वह किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकार को लागू करके राहत दे सकता है।इस तरह की राहत आर्थिक प्रतिकर/नुकसान के रूप में हो सकती है।उदाहरण के लिए ***ऐसे मामले हैं रुदुल साह बनाम बिहार राज्य, (1983) 4 एस. सी. सी. 141; सेबेस्टियन एम. होंगरे बनाम भारत संघ, (1984) 3 एस. सी. सी. 82; भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (1985) 4 एस. सी. सी. 677; पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम पुलिस आयुक्त, (1989) 4 एस. सी. सी. 730; सहेली बनाम पुलिस आयुक्त, (1990) 1 एस. सी. सी. 422; महाराष्ट्र राज्य बनाम रविकांत एस. पाटिल, (1991) 2 एस. सी. सी. 373; कुमारी बनाम तमिलनाडु राज्य, (1992) 2 एस. सी. सी. 223; शकुंतला देवी बनाम दिल्ली विद्युत आपूर्ति उपक्रम, (1995)।***

52. अनुच्छेद 21 ने सरकार के यातनापूर्ण दायित्व पर कानून को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।इस न्यायालय ने जोर देकर कहा है कि संप्रभु कार्य की अवधारणा, जो यातनापूर्ण दायित्व को आकर्षित करने के लिए एक अपवाद के रूप में कार्य करती है, वहीं समाप्त होती है जहां अनुच्छेद 21 शुरू होता है।इसलिए, यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करते हुए राज्य की अराजकता के खिलाफ व्यक्तियों के जीवन एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए तैयार रहा है कि जहां अनुच्छेद 21 का उल्लंघन किया जाता है, राज्य को प्रतिकर देना पड़ता है एवं इस क्षेत्र में संप्रभु कार्य की अवधारणा प्रबल नहीं है।

53. इस प्रस्ताव का पता विशेष रूप से प्रारंभिक जनहित याचिकाओं से लगाया जा सकता है, जो भारत में 1980 के दशक में शुरू हुई थी, मुख्य रूप से उन मामलों में जहां राज्य के अधिकारियों, जैसे कि जेल अधिकारियों ने कैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया था। भारत में जनहित याचिका का पहले चरण का ध्यान राज्य की एजेंसियों, विशेष रूप से पुलिस, जेल एवं अन्य अभिरक्षा अधिकारियों द्वारा दमन का खुलासा करने पर केंद्रित था।

ये प्रारंभिक जनहित याचिकाएं अनिवार्य रूप से संवैधानिक अपकृत्य कार्यवाही थीं जो राज्य के अधिकारियों की ओर से किए गए कृत्यों या चूक के परिणामस्वरूप संरक्षित मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आरोपों से संबंधित थीं।इसलिए, इस न्यायालय द्वारा पी. आई. एल. के तहत संवैधानिक कानून एवं अपकृत्य कानून का विलय किया गया एवं इस न्यायालय ने सफल याचिकाकर्ताओं को अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए राज्य से मौद्रिक नुकसान की वसूली करने की अनुमति देना शुरू कर दिया।ऐसे मामलों में, व्यक्तियों के वैधानिक अधिकार भी हो सकते हैं जो तब विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकारों के एक पहलू का प्रतिपादन होगा।

54. **रुदुल साह बनाम बिहार राज्य, (1983) 4 एस. सी. सी. 141**, वाई. वी. चंद्रचूड़, सी. जे. ने चौदह साल तक गैरकानूनी कारावास के पीड़ित को नकद प्रतिकर देकर राज्य की अराजकता से निपटने के लिए मौलिक अधिकारों को और गति दी।यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उक्त मामले में उनके लॉर्डशिप ने राज्य के खिलाफ रिट याचिका/पी. आई. एल. कार्यवाही में वादी को हर्जाने की मांग करने की अनुमति देने में दुविधा पर ध्यान

दिया।उनके लॉर्डशिप ने नोट किया कि इसका प्रभाव सामान्य नागरिक कार्यवाही के विकल्प के रूप में उच्च न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय के रिट अधिकार क्षेत्र को लागू करके नियमित आधार पर सामान्य नागरिक कार्यवाही को दरकिनार करने का हो सकता है।हालाँकि, यह माना गया कि इस तरह के उपचार देने से पी. आई. एल. के वाहन की वैधता बढ़ेगी। इसलिए, रुदुल साह में इस न्यायालय ने अंततः उल्लंघनकर्ताओं को 'मल्ट' करने के साथ-साथ पीड़ितों के लिए 'उपशामक' की पेशकश करने के लिए मौद्रिक हर्जाना देने का फैसला किया।रुदुल साह में निर्णय के बाद, मौलिक अधिकारों को निरस्त करने से जुड़े कई मामलों में 'सार्वजनिक शक्ति को सभ्य बनाने' के साधन के रूप में क्षतिपूर्ति राहत दी गई है, [उदाहरण के लिए देखें, सबस्तियन एम **होंगरे बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1984 एससी 1026; भीम सिंह, विधायक बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य, ए. आई. आर. 1986 एससी 494।]55. नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (1993) 2 एस. सी. सी. 746 में,** इस न्यायालय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के तहत किसी कार्यवाही में मुआवजे का अधिनिर्णय मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए सख्त दायित्व के आधार पर सार्वजनिक कानून में उपलब्ध एक उपाय है।इस तरह के कार्यों के संबंध में, संप्रभु प्रतिरक्षा का सिद्धांत लागू नहीं होता है, हालांकि यह यातना पर आधारित कार्यवाही में एक निजी कानून में बचाव के रूप में उपलब्ध हो सकता है।निजी एवं सार्वजनिक कानून के तहत कार्यवाही के बीच अंतर करते हुए, यह देखा गया कि एक सार्वजनिक कानून कार्यवाही एक निजी कानून कार्यवाही की तुलना में एक अलग उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है।

लोक विधि की कार्यवाही राज्य द्वारा नागरिकों के बुनियादी एवं अविभाज्य अधिकारों की गारंटी के उल्लंघन के लिए सख्त दायित्व की अवधारणा पर आधारित होती है। सार्वजनिक कानून का उद्देश्य न केवल सरकारी शक्ति को सभ्य बनाना है बल्कि नागरिकों को यह आश्वस्त करना भी है कि वे एक ऐसी कानूनी प्रणाली के तहत रहते हैं जो उनके हितों की रक्षा करने एवं उनके अधिकारों को संरक्षित करने के लिए लाभप्रद है।इसलिए, जब न्यायालय मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन या संरक्षण की मांग करने वाले संविधान के अनुच्छेद 32 एवं अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में प्रतिकर देकर राहत देता है, तो वह सार्वजनिक कानून के तहत अत्याचार के कानून के तत्वों को नियोजित करके एवं राज्य पर दायित्व तय करके ऐसा करता है जो लापरवाही करता रहा है एवं नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के अपने सार्वजनिक कर्तव्य में विफल रहा है।ऐसे मामलों के तहत मुआवजे के भुगतान को नहीं समझा जाना चाहिए क्योंकि इसे आम तौर पर निजी कानून के तहत नुकसान के लिए दीवानी कार्यवाही में समझा जाता है, लेकिन व्यापक अर्थों में सार्वजनिक कर्तव्य के उल्लंघन के कारण की गई गलती के लिए मौद्रिक राशि का भुगतान करने का आदेश देकर राहत प्रदान करने के लिए, जिसका नागरिकों के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का प्रभाव होगा।संवैधानिक न्यायालयों द्वारा रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में नुकसान का ऐसा अनुदान पीड़ित पक्ष को यातना पर आधारित कार्यवाही में निजी कानून के तहत मुआवजे का दावा करने के लिए उपलब्ध अधिकारों से स्वतंत्र है।इसलिए, कानून की एक सक्षम न्यायालय में एक

मुकदमा दायर किया जा सकता है या दंडात्मक कानून के तहत अपराधी पर मुकदमा चलाने के लिए कार्यवाही शुरू की जा सकती है।

56. हालांकि,**डी.के बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1997) 1 हिंदुस्तान पेपर में एस. सी. सी. 416** मौद्रिक प्रतिकर दिया गया था।

निगम लिमिटेड बनामअनंत भट्टाचार्जी, (2004) 6 एस. सी. सी. न्यायालय ने आगाह किया कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रतिकर का भुगतान करने का निर्देश एक सार्वजनिक कानून उपचार के रूप में अनुमत है एवं इसका सहारा केवल तभी लिया जाता है जब राज्य या उसके एजेंटों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार का आधिकारिक क्षमता में उल्लंघन किया जाता है, एवं अन्यथा नहीं।यह भी कहा गया कि यह संविधान या कानून के प्रावधानों का हर बार उल्लंघन नहीं है जो न्यायालय को प्रतिकर देने का निर्देश देने में सक्षम बनाएगा। सार्वजनिक कानून में प्रतिकर देने की न्यायालय की शक्ति सीमित है। इसलिए, आम तौर पर यातनापूर्ण दायित्व के मामले में, पीड़ित व्यक्ति को अपनी शिकायतों को उजागर करने के लिए दीवानी न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ता है एवं वह उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के रिट अधिकार क्षेत्र का आह्वान नहीं कर सकता है।हालाँकि, यदि कर्तव्य का उल्लंघन सार्वजनिक प्रकृति का है या प्राधिकरण की ओर से किसी कार्य या चूक से मौलिक अधिकार का उल्लंघन या उल्लंघन या उल्लंघन होता है, तो यह उस पक्ष के लिए खुला है जिसे "विधिक त्रुटि" का सामना

करना पड़ा है, वह रिट मामला दायर करके सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान कर सकता है।

उस मामले में, न्यायालय अपनी असाधारण अधिकारिता एवं विवेक का प्रयोग करते हुए व्यक्ति जिसके साथ अन्याय हुआ है, को राहत प्रदान कर सकता है किसी विशेष मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निजी कानून के तहत उपलब्ध उपचार का लाभ उठाने के लिए अवहेलना किए बिना , जो कि उसे अन्यथा निजी विधि के अंतर्गत उपलब्ध होता ।

57. ***अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड बनाम चंद्रिमा दास, (2000) 2 एस. सी. सी. 465***,में इस न्यायालय को सरकारी स्वामित्व वाले रेलवे स्टेशन पर कथित रूप से रेलवे कर्मचारियों द्वारा किए गए बलात्कार के एक विदेशी राष्ट्रीय-पीड़ित की ओर से एक नागरिक अधिकार वकील द्वारा दायर एक रिट याचिका में कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक आदेश के खिलाफ एक अपील के साथ प्रस्तुत किया गया था। विचाराधीन घटनाएँ तब हुईं जब कर्मचारी ड्यूटी से बाहर थे, लेकिन सरकार (रेलवे) के स्वामित्व एवं संचालित परिसर में मौजूद थे।व्यक्तियों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के अलावा नियोक्ता के खिलाफ रिट याचिका दायर की गई थी।पीड़ित के लिए आर्थिक प्रतिकर के लिए रिट याचिका में एक विशिष्ट प्रार्थना की गई थी, जो सरकार द्वारा देय थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि पीड़ित की रक्षा करने एवं अपराध को रोकने में इसकी विफलता ने पीड़ित के मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया है।उच्च न्यायालय ने एक करोड़ रुपये की

राशि का आदेश दिया। बलात्कार की पीड़िता को मुआवजे के रूप में 10 लाख, क्योंकि यह राय थी कि अपराध रेलवे से संबंधित इमारत (रेल यात्री निवास) में किया गया था एवं रेलवे कर्मचारियों द्वारा किया गया था। उक्त फैसले के खिलाफ इस न्यायालय में अपील की गई थी।

58. इस न्यायालय ने अपील को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि जहां सार्वजनिक पदाधिकारी शामिल हैं एवं मामला मौलिक अधिकारों के उल्लंघन या सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रवर्तन से संबंधित है, तो उपचार सार्वजनिक कानून के तहत उपलब्ध होगा, इसके बावजूद कि निजी कानून के तहत हर्जाने के लिए मुकदमा दायर किया जा सकता है। चूँकि बलात्कार का अपराध संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत पीड़ित के जीवन के अधिकार का उल्लंघन है, इसलिए इस न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि एक सार्वजनिक कानून उपचार पूरी तरह से उचित था।

59 . **रुदुल साह एवं चंद्रिमा दास** के निर्णयों से यह स्थापित होता है कि मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए आर्थिक प्रतिकर की मांग करने वाली सार्वजनिक कानूनी कार्यवाही अब एक निजी कानून के दावे के बदले में एक कार्यवाही नहीं थी, बल्कि एक स्वतंत्र एवं अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य को पूरा करने के लिए थी। हालाँकि, इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि ऐसे मामलों में प्रतिकर देने के न्यायालयों के निर्णय, निम्न साक्ष्य मानकों के आधार पर आगे बढ़ते हैं, जैसे -इस न्यायालय ने **कुमारी बनाम तमिलनाडु राज्य, (1992) 2 एस. सी. सी. 223 में उल्लेख किया।**

60. तमिलनाडु विद्युत बोर्ड बनाम सुमति दास, (2000) 4 एस. सी. सी. 543 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि रिट अधिकारिता का प्रयोग जहां तथ्य के विवादित प्रश्न थे जिन्हें पर्याप्त साक्ष्य के माध्यम से प्रमाण की आवश्यकता हो , अनुचित होगा। हालाँकि, यह स्पष्ट किया गया है कि प्रतिबंध केवल अनुच्छेद 32 एवं 226 के तहत उच्च न्यायपालिका के रिट अधिकार क्षेत्र पर लागू होता है, एवं यह कि यह अनुच्छेद 142 के तहत मामले को संबोधित करने की इस न्यायालय की शक्ति को प्रतिबंधित नहीं करता है, जो इस न्यायालय को किसी भी कारण या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक कोई भी आदेश पारित करने की अनुमति देता है।' इसलिए, इस न्यायालय ने माना है कि तथ्यात्मक विवाद किसी मामले को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में कार्यवाही योग्य मानने की अदालतों की क्षमता पर एक सीमा के रूप में काम कर सकते हैं, लेकिन फिर भी कुछ मामलों में संभवतः उन मामलों के स्पष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करके आर्थिक प्रतिकर का आदेश दिया है।

61. विद्वानों के विचार बताते हैं कि संवैधानिक अपकृत्य की अवधारणा अपराधी को अपने कार्यों की लागत को आंतरिक बनाने के लिए मजबूर कर के विभिन्न प्रकार के सामाजिक रूप से हानिकारक व्यवहार को रोकने के लिए कानून की क्षमता को चुनौती देती है। हालांकि, एक संवैधानिक अपकृत्य कार्यवाही के मामले में, लागत से भरी इकाई, उस इकाई के समान नहीं है जिसे रोका जाना है। इस बेतुकेपन को सुधारात्मक न्याय विचार के लिए खतरा बताया गया है जो अपकृत्य कानून में सम्मिलित है। दूसरे

शब्दों में, उपहति पहुँचाने वाले व्यवहार को बदलने की एक कर्ता की प्रत्यक्ष क्षमता अपकृत्य कानून की नींव के लिए महत्वपूर्ण है। हालाँकि, यह देखते हुए कि संवैधानिक अपकृत्य की एक कार्यवाही अधिकार का उल्लंघन करने वाले के अलावा किसी अन्य संस्था पर नुकसान का बोझ लगाती है, सुधारात्मक न्याय के वाहन के रूप में सेवा करने में इसकी प्रभावशीलता पर संदेह किया गया है।.

62. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, यह देखा गया है कि उन सभी मामलों को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में लेना विवेकपूर्ण नहीं है जहां एक सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा दिए गए बयान के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है।हर मामले में परिणामी नुकसान या हानि की प्रकृति का ध्यान रखा जाना चाहिए।इसके अलावा, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यहां ऊपर वर्णित मामलों में भी किसी कार्य या चूक को केवल संवैधानिक अपकृत्य के रूप में मानने की अनुमति दी गई है, जहां ऐसे कार्य या चूक के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है। इसलिए कार्य या चूक एवं मौलिक अधिकारों के परिणामी उल्लंघन के बीच आकस्मिक संबंध, संवैधानिक अपकृत्य की किसी भी कार्यवाही के निर्धारण के लिए केंद्रीय है।

63. **दिल्ली जल बोर्ड बनाम सीवरेज़ और संबद्ध श्रमिकों के सम्मान और अधिकारों के लिए राष्ट्रीय अभियान**, **(2011) 8 एस. सी. सी. 568** में, इस न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा एक रिट याचिका में पारित एक अंतरिम आदेश के खिलाफ एक मामले पर विचार करने से इनकार कर दिया, जिसमें याचिकाकर्ता बोर्ड को सीवेज

कर्मचारी के परिवार के पक्ष में, जिसकी अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मृत्यु हो गई थी, प्रतिकर जमा करने का निर्देश दिया गया था।

इस मामले को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि चूंकि मृतक की मृत्यु राज्य तंत्र की ओर से अपने कर्मचारियों की सुरक्षा एवं कल्याण के प्रति असंवेदनशीलता के कारण हुई थी, इसलिए राज्य मृतक के परिवार को प्रतिकर देने के लिए उत्तरदायी होगा। इस न्यायालय ने देय मुआवजे की राशि को बढ़ाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 142 को लागू किया।

64 इस स्तर पर, मौलिक अधिकारों के समर्थन के साधन के रूप में आर्थिक प्रतिकर देने में न्यायालयों के दृष्टिकोण के संबंध में सावधानी बरतना उचित हो सकता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पूर्व निर्णय पर आधारित एक स्पष्ट, ठोस एवं व्यापक कानूनी ढांचे के अभाव में, जो यह स्पष्ट करेगा कि संवैधानिक अपकृत्य के रूप में क्या नुकसान या उपहति कार्यवाही योग्य है, इस तरह के उपकरण का सहारा केवल उन मामलों में लिया जाना चाहिए जहां मौलिक अधिकारों का क्रूर उल्लंघन होता है, जैसे कि **रुदुल साह एवं चंद्रिमा दास** में शामिल उल्लंघन। इस न्यायालय ने ***सेबेस्टियन एम. होंगरे*** में इस तरह के दृष्टिकोण को स्वीकार किया है, यह देखते हुए कि उक्त मामले में "यातना, पीड़ा एवं मानसिक उत्पीड़न" के संबंध में प्रतिकर दिया जा रहा था, जिसे पीड़ित के परिवार को एक मुठभेड़ में उसकी मृत्यु के कारण सहना पड़ा था। इसी तरह, इस न्यायालय ने ***भीम सिंह*** मामले में कहा कि पुलिस की अराजकता के "विचित्र कृत्यों" पर ध्यान देते हुए प्रतिकर दिया था। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है,

दिल्ली जल बोर्ड में अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करके प्रतिकर दिया गया था। इस प्रकार, प्रदान किया गया उपचार न्यायिक आदेश के माध्यम से संवैधानिक अपकृत्य की अवधारणा के विकास पर मामले-दर-मामले के आधार पर है।

65. हालांकि यह सच है कि अदालतों को विशेष रूप से चरम एवं खतरनाक स्थितियों से निपटने के लिए अपने उपकरणों को ढालना चाहिए, एवं इस तरह से ही एक 'संवैधानिक अपकृत्य' का उपकरण विकसित हुआ है, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि किसी कार्यवाही को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में मानने के उपकरण का उपयोग केवल उन उदाहरणों में नहीं किया जाना चाहिए जहां राज्य की अराजकता एवं प्राण के अधिकार एवं दैहिक स्वतंत्रता के प्रति उदासीनता ने भारी पीड़ा पैदा की है। विशेषाधिकार रिट जारी करने के अलावा अन्य मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के संबंध में इस संबंध में कानून विकसित करना होगा।

66. इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वर्तमान में राज्य की एजेंसियों के कार्यों एवं चूक को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में मानते हुए, हर्जाना देने के लिए रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान एक नियम के बजाय एक अपवाद होना चाहिए। किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष या आपराधिक कानून के तहत उपचार, किसी भी मामले में मौजूदा कानूनी ढांचे के अनुसार उपलब्ध है।

उपरोक्त चर्चा के आलोक में, प्रश्न संख्या 5 का उत्तर इस प्रकार दिया गया हैः

"उन कृत्यों या चूक को परिभाषित करने के लिए एक उचित कानूनी ढांचा आवश्यक है जो संवैधानिक अपकृत्य के बराबर होगा एवं जिस तरह से पूर्व निर्णय के आधार पर इसका निवारण या सुधार किया जाएगा। विशेष रूप से, उपरोक्त प्रश्न संख्या 4 को दिए गए उत्तर के संदर्भ को छोड़कर, उन सभी मामलों को संवैधानिक अपकृत्य के रूप में लेना विवेकपूर्ण नहीं है जहां किसी सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा दिए गए बयान के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति/नागरिक को नुकसान या हानि होती है।"

67. उपरोक्त चर्चा के साथ-साथ निर्दिष्ट प्रश्नों के दिए गए उत्तरों के आलोक में, निम्नलिखित अन्य निष्कर्ष निकाले गए हैंः

क) अनुच्छेद 19 (2) के सख्त मानदंडों को ध्यान में रखते हुए एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) के तहत स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए, नागरिकों एवं सार्वजनिक कार्यकर्ताओं, विशेष रूप से, साथी नागरिकों के खिलाफ अपमानजनक या कटु टिप्पणी करने से रोकने के लिए एक कानून या संहिता लागू करना संसद का विवेक है।इसलिए, मैं इस संबंध में कोई दिशानिर्देश जारी करने के लिए इच्छुक नहीं हूं, लेकिन यहां ऊपर की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखा जा सकता है।

ख) यह संबंधित राजनीतिक दलों के लिए भी है कि वे अपने कार्यकर्ताओं एवं सदस्यों के कार्यों एवं भाषण को विनियमित एवं नियंत्रित करें। यह एक

आचार संहिता के अधिनियमन के माध्यम से हो सकता है जो संबंधित राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं एवं सदस्यों द्वारा अनुमेय भाषण की सीमा निर्धारित करेगा।

ग) कोई भी नागरिक, जो किसी भी माध्यम से भाषण/अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप, किसी भी प्रकार के हमले से पूर्वाग्रहित है, जो उसके खिलाफ भाषण द्वारा लक्षित किया जाता है जो 'घृणित भाषण' या उसकी किसी भी प्रजाति का गठन करता है, चाहे वह हमला या भाषण किसी सार्वजनिक पदाधिकारी द्वारा हो या अन्यथा, आपराधिक एवं नागरिक कानूनों के तहत न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है एवं उचित उपचार की मांग कर सकता है। जब भी अनुमति हो, घोषणात्मक उपचारों, निषेधाज्ञाओं के साथ-साथ आर्थिक नुकसान की प्रकृति में नागरिक उपचार संबंधित कानूनों के तहत निर्धारित किए जा सकते हैं।

हालाँकि, प्रश्न संख्या 4 एवं 5 के लिए दिए गए उत्तरों का असर सरकार के सामूहिक उत्तरदायित्व एवं संवैधानिक अपकृत्य के संदर्भ में हो सकता है।

रिट याचिका (सीआरएल.) 2016 की No.113 एवं 2017 की डायरी No.34629 वाली विशेष अनुमति याचिका (सिविल) को भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के आदेशों की मांग के बाद एक उपयुक्त पीठ के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है।

निर्देश का जवाब दिया।